श्री चन्द्रशेखर सिंह सामन्त कृत

सिद्धान्त दर्पण

(भूमिका, मूल तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

भाग १

अनुवादक

अरुण कुमार उपाध्याय

SIDDHANTA-DARPANA

(1899 A.D.)

English Translation with Mathematical Explainations and Notes

Vol. I

Arun Kumar Upadhyay, IPS

M.Sc., AIFC

सिद्धान्त दर्पण दो प्रकार से उपयोगी है। इसमें पाठ्यपुस्तक की तरह अब तक के सभी ज्योतिष ग्रन्थों का संकलन है तथा विवादित मतों का समाधान है। अतः एक ही ग्रन्थ पढ़ने से सभी ग्रन्थों के पढ़ने का लाभ होगा। दूसरा लाभ यह है कि इसके लेखक श्रीचन्द्र शेखर सामन्त ने यद्यपि सभी गणनाओं की व्याख्या नहीं की है पर उनमें संशोधन की विधि बतायी है। इसके अतिरिक्त चन्द्र गति में उन्होंने जो संशोधन किया है वह शुद्धता में आधुनिक गणित के समकक्ष है।

हिन्दी अनुवाद का उद्देश्य- सिद्धान्त दर्पण- उड़िया लिपि के संस्कृत श्लोकों में होने के कारण अभी तक इस ग्रन्थ के बारे में प्रायः कोई नहीं जानता है। उड़ीसा में भी इसे समझने वाले कोई नहीं हैं। हिन्दी अनुवाद से इसका आधा उद्देश्य पूर्ण होगा। मूल ग्रन्थ में क्या था, इसकी जानकारी होगी तथा पूरे भारत में इसका प्रचार होगा। इसी के साथ प्रो. योगेश चन्द्र राय की अंग्रेजी भूमिका भी दी जा रही है क्योंकि आधुनिक ज्योतिष पर इस ग्रन्थ में जो तर्क हैं उनकी बातचीत के ही आधार पर हैं। ग्रन्थ में प्रयुक्त गणितीय शब्दों के अर्थ अलग दिये हैं।

१. नाम - अरुण कुमार उपाध्याय, पिता श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय तथा माता श्रीमती जगतारिणी देवी (दोनों का जन्म १९०५ में) की कनिष्ठ सन्तान।

२. जन्म - ३०/३१-८-१९५२ ईस्वीय सन् ठीक अर्धरात्रि अर्थात विक्रम सम्वत् २००९ भाद्रशुक्ल एकादशी, जन्म स्थान - आरा, जिला भोजपुर (बिहार) अक्षांश २५° ३६' उत्तर, देशान्तर- ८४° ४२' पूर्व।

३. शिक्षा - १९६१ में रेलवे स्कूल जमालपुर (मुंगेर) बिहार में कक्षा ६ से विद्यालय शिक्षा आरम्भ।

१९६३ से १९६६ तक उच्च विद्यालय शिक्षा तेनु अज (विक्रम गंज) रोहतास जिला में। इस अवधि में स्वाध्यायी छात्र के रूप में कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रथमा और मध्यमा परीक्षा। पिता द्वारा संस्कृत और ज्योतिष का शिक्षण।

पटना विश्वविद्यालय की जातिवादी राजनीति के कारण भौतिक विज्ञान अध्ययन में बाधा, अतः १९७४ में भारतीय वन सेवा, पंजाब संवर्ग में योगदान, पर अध्ययन का निश्चय और दृढ़।

१९७६ में भारतीय पुलिस सेवा, उड़ीसा संवर्ग में प्रवेश। १९८१ में भुवनेश्वर निवास में चार मास तक गणित का स्वाध्याय एवं उत्कल विश्वविद्यालय से गणित स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण। अभी कटक में पदस्थापित।

४. ग्रन्थ की प्रेरणा तथा समर्पण

गणित के अध्ययन क्रम में ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त का अध्ययन। १९९१ के बाद अकर्मिक पदों पर रहते समय सिद्धान्त दर्पण का अनुवाद एवं वैज्ञानिक व्याख्या। परिवार परम्परा में संस्कृत एवं संस्कृति की ज्योति प्रज्वलित रखने की प्रेरणा पिता और गुरु श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय से मिली, जिनकी अपूर्ण इच्छा की पूर्ति के रूप में यह व्याख्या लिखी गयी। अतः उन्हीं को समर्पित।

भूमिका

उद्देश्य-ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है । इसके बिना वेदों और प्राचीन शास्त्र का काल नहीं जाना जा सकता है । बिना काल जाने उनकी चर्चा समयानुकूल नहीं हो पायेगी अतः उसे समझना असम्भव है ।

भारतीय इतिहास की विडम्बना यह है कि वर्तमान स्वीकृत इतिहास सिर्फ भारत विरोधियों द्वारा लिखा गया है जिनका पिछले एक हजार वर्ष से एकमात्र उद्देश्य भारत को पराधीन बनाये रखना था । अतः उन्होंने यथा सम्भव भारतीय सभ्यता का आरम्भ सिकन्दर के आक्रमण काल से दिखाने की कोशिश की । इस खींचातानी में यह प्रयत्न हुआ कि वेद पुराण आदि मिस्र या ग्रीक सभ्यता की देन है, अतः उनका वास्तविक स्वरूप नहीं समझा जा सका । चीन कभी पराधीन नहीं हुआ अतः उनके इतिहास का काल क्रम ठीक है । फलतः भारत में स्वीकृत बुद्ध के जन्म समय से प्रायः ६०० वर्ष पहले वहाँ बौद्ध विहार बन चुके थे । इस प्रकार भ्रष्ट काल क्रम का कोई भी निष्कर्ष सही नहीं हो सकता ।

दूसरा भ्रम यह है कि मेगास्थनीज मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र में आया था जिसके बाद ही इतिहास लेखन आरम्भ हुआ । पर मेगास्थनीज ने 'पलिबोथ्रा' की जो स्थिति दी है वह दिल्ली और मथुरा के बीच यमुना किनारे का एक नगर था सम्भवत प्रभद्रक गण) । अतः बिना काल मान तथा भूगोल जाने इतिहास लिखने की चेष्टा हुयी है वह अनधिकार एवं पागलपन मात्र है ।

खेद यह है कि आज भी किसी तथा कथित इतिहासकार ने वेद पुराण तो दूर, विक्रम और शक सम्वत् जानने की कोशिश नहीं की है । उनके अनुसार या तो ये सम्वत् बिना किसी राजाज्ञा के प्रचारित हो गये, या उन राजाओं ने अपने बदले किसी पूर्ववर्त्ती राजा का सम्मान बढ़ाने की कोशिश की । पर देखने में आता है कि किसी वर्ष जन्माष्टमी या होली की छुट्टी कब होगी वह भी सरकारी आदेश से ही निर्धारित हो सकता है । पर २००० वर्ष तक जारी कैलेण्डर के लिये सरकारी आदेश की जरूरत नहीं पड़ी । पुरानी जगहों का नया नाम देकर लोग पूर्वजों के काम से अपना नाम करने की कोशिश करते हैं, पर इतिहासकारों का मत है कि भारत में लोगों ने अपने परिश्रम से पूर्वजों की कीर्ति बढ़ाने की कोशिश की ।

विक्रम पूर्व की घटनायें कलि सम्वत् में लिखी गयी हैं । कलि आरम्भ से पहले की घटनायें सिर्फ ग्रह स्थिति द्वारा सूचित की गयी हैं । अतः भारतीय इतिहास की घटनाओं का समय जानने के लिए यह जरूरी है कि कलि आरम्भ की गणना समझी जाय, न कि उसे बिना समझे काल्पनिक कहा जाय । ग्रह स्थिति की गणना विधि जानने से किसी समय को सूचित किया जा सकता है जबकि प्रचलित कैलेण्डर

२०००-२५०० वर्षों से ज्यादा नहीं चलते हैं । इस उद्देश्य से भारतीय ज्योतिष की सम्पूर्ण जानकारी का संग्रह आवश्यक है ।

सिद्धान्त दर्पण क्यों ? भारत में आर्यभट्ट से ज्योतिष का आरम्भ माना जाता है । वस्तुत: पुस्तक से पता चलता है कि वह ज्योतिष अध्ययन के पतन का आरम्भ है । ज्योतिष अध्ययन सदा से खर्चीला है । बिना तात्कालिक लाभ का है अतः राज कोष से ही इसका खर्च चल सकता है । जैसे वर्तमान युग में केवल अमेरिका की सरकारी संस्था 'नासा' ही इसमें खोज कर रही है । इस प्रकार भारत या विश्व के सबसे बड़े और धनी राज्य मगध की राजधानी में ही 'खगोल' अध्ययन के लिये वेधशाला उपलब्ध थी, जहाँ उस काल में आर्य भट्ट आचार्य थे । उस नगर का नाम पुष्पपुर या कुसुमपुर था, जिसका वर्तमान फारसी रूपान्तर फुलवारी शरीफ है । 'खगोल' वेधशाला का स्थान अभी भी खगोल गांव कहा जाता है जो उसी के निकट है । हूण आक्रमण में वेधशाला, पुस्तकालय आदि नष्ट होने पर आर्यभट्ट ने वहां के संचित ज्ञान को केवल स्मरण रखने के लिये सूत्ररूप में लिखा है । यह स्कूल या कालेज की पाठ्यपुस्तक नहीं है; जिसमें रेखाचित्रों तथा गणित विधियों से विज्ञान पढ़ाया जा सकता है । उन्होंने स्वयं लिखा है—

आर्य भटस्त्विह निगदति सत्यम्
कुसुमपुरे भ्यर्चितं ज्ञानम्

अर्थात् आर्यभट्ट कुसुमपुर में अर्चित ज्ञान कह रहे हैं । इसके बाद वाराहमिहिर तथा भास्कर आदि सभी ने पुराने अर्चित ज्ञान को ही लिखा है । किसी ने यह नहीं समझाया कि ग्रह गति के मान सम्बन्धी संख्याओं का स्रोत क्या है ।

इस सम्बन्ध में सिद्धान्त दर्पण दो प्रकार से उपयोगी है । इसमें पाठ्यपुस्तक की तरह अब तक के सभी ज्योतिष ग्रन्थों का संकलन है तथा विवादित मतों का समाधान है । अतः एक ही ग्रन्थ पढ़ने से सभी ग्रन्थों के पढ़ने का लाभ होगा । दूसरा लाभ यह है कि इसके लेखक श्रीचन्द्र शेखर सामन्त ने यद्यपि सभी गणनाओं की व्याख्या नहीं की है पर उनमें संशोधन की विधि बतायी हैं । इसके अतिरिक्त चन्द्र गति में उन्होंने जो संशोधन किया है वह शुद्धता में आधुनिक गणित के समकक्ष है ।

भारतीय परम्परा के गणितज्ञों में चन्द्रशेखर तथा बाल गंगाधर तिलक को अन्तिम माना जा सकता है । तिलक ने आधुनिक गणित तथा अंग्रेजी का भी अध्ययन किया था । पर चन्द्रशेखर इनसे अनभिज्ञ थे । कटक के प्रोफेसर योगेश चन्द्र राय ने उन्हें आधुनिक गणित के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया कि पृथ्वी सूर्य केन्द्रित कक्षा में है । भारतीय ज्योतिष में इसके दो मत हैं । पृथ्वी गति शील होने के कारण इसे 'जगत' कहा गया है । पर चन्द्र शेखर ने इसे 'स्थिरा' मानकर

इसके पक्ष में तर्क दिये हैं । यद्यपि उनका मत सही नहीं था पर उनके तर्कों का उत्तर १८९९ ई. में जब किताब प्रकाशित हुयी थी, आधुनिक ज्योतिष में नहीं था । उनका एक तर्क था कि यदि सभी तारा सूर्य के समान प्रकाश मान हैं तथा सभी दिशा में समान रूप से फैले है, तो रात्रि कैसे होती है । इसे आल्बर विरोधाभास कहा जाता है । इसका उत्तर १९३० में मिला जब ब्रह्माण्ड के फैलने का पता चला, जिसके कारण दूरवर्त्ती सूर्यों का कम प्रकाश आता है । ब्रह्माण्ड शब्द का अर्थ भी फैलने या बढ़ने वाला है, अत श्री नार्लीकर इसे भारतीय मत मानते हैं । यह एक चमत्कार है कि चन्द्रशेखर ने उस समय के गलत उत्तरों का सही खण्डन किया है । उनका दूसरा तर्क यह था कि यदि सभी ग्रह अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं तो बड़े ग्रह गुरू का तेज भ्रमण क्यों होता है । तथा चन्द्र का अक्ष भ्रमण क्यों नहीं होता (उसका एक ही हिस्सा पृथ्वी से दीखता है) । इन दोनों प्रश्नों का उत्तर अभी भी ज्ञात नहीं है । अत चन्द्रशेखर ने गलत मान्यता रखकर भी तर्क सही दिये थे । यहां यह द्रष्टव्य है कि सभी गतियां सापेक्ष हैं, सूर्य स्थिर नहीं है । सूर्य को स्थिर केन्द्र मानकर गणना करने से सिर्फ गणित क्रिया में सरलता होती है । पर पृथ्वी को स्थिर मानने से भी गणना में कोई सैद्धान्तिक भूल नहीं होती ।

हिन्दी अनुवाद का उद्देश्य- सिद्धान्त दर्पण- उड़िया लिपि के संस्कृत श्लोकों में होने के कारण अभी तक इस ग्रन्थ के बारे में प्राय: कोई नहीं जानता है । उड़ीसा में भी इसे समझने वाले कोई नहीं हैं । हिन्दी अनुवाद से इसका आधा उद्देश्य पूर्ण होगा । मूल ग्रन्थ में क्या था, इसकी जानकारी होगी तथा पूरे भारत में इसका प्रचार होगा । इसी के साथ प्रो. योगेश चन्द्र राय की अंग्रेजी भूमिका भी दी जा रही है क्योंकि आधुनिक ज्योतिष पर इस ग्रन्थ में जो तर्क हैं उनकी बातचीत के ही आधार पर हैं । ग्रन्थ में प्रयुक्त गणितीय शब्दों के अर्थ अलग दिये हैं ।

आधुनिक व्याख्या - वर्तमन गणित संकेतों द्वारा अंग्रेजी में जा रहा है । अतः इसके दूसरे खण्ड में अंग्रेजी अर्थ तथा आधुनिक गणित द्वारा इसके सूत्रों का प्रमाण दिया जायेगा । खेद है कि किसी भारतीय विश्वविद्यालय में आधुनिक गणित ज्योतिष की पढ़ाई नहीं हो रही है ।अत प्राय ५० पृष्ठों में आधुनिक गणित के आधार पर भारतीय ज्योतिष का सारांश लिख रहा हूँ जो प्राय पूर्ण हो चुका है । इसे मैट्रिक तक गणित पढ़ा हुआ कोई भी व्यक्ति समझ सकता है ।

मेरी भगवान से प्रार्थना है कि ज्योतिष शिक्षा के लिये श्रीचन्द्रशेखर का स्वप्न इस ग्रन्थ के माध्यम से पूर्ण हो । मेरा स्वार्थ है कि इतिहासकार भारतीय कालमान तथा भूगोल समझें ।

अरुण कुमार उपाध्याय

२३.९.९५

महालया

गणित क्रिया शब्द

१. योग- मूल शब्द रूप-

(१) अस्, सम् उपसर्ग के साथ)- मिलाना या जोना- समस्त, समास, समासित

(२) इ-सम्बन्धित करना, मिलाना या जोड़ना, अनु उपसर्ग-अन्वित
उप- उपेत
सम- समन्वित, समवेत, समेत
सह-सहित

(३) कल् - जोड़ना, एकत्र करना-सम् उपसर्ग -संकलन, संकलित

(४) क्षिप् (फेंकना या जोड़ना), क्षिप, क्षिप्त, क्षिप्तम्, क्षिप्त्वा, क्षिपेत्, क्षिप्यते, क्षिप्यन्ते, क्षेप, क्षेप्यम्, क्षेप्या, परिक्षिप्य, परिक्षिप्यन्ते, प्रक्षिपेत्, प्रक्षिप्त प्रक्षिप्य, प्रक्षिप्यते, प्रक्षिप्यन्ते, प्रक्षेप, विनिक्षिपेत् संक्षेप ।

(५) चि - (बढ़ना)-उपचय, उपचित, उपचीयन्ते, उपचीयमान

(६) दा (देना)- दात्वा, दातव्य, दीयते, दीयन्ते, देय, देया

(७) पिण्ड (मिलाना)-पिण्डित, संपिण्ड्य

(८) प्रे (जोड़ना, जुड़ना, मिलना या मिलाना) - सम्पर्क

(९) मिश्रइ मिलाना, जोड़ना) मिश्रित, सम्मिश्र

(१०) वृध् (बढ़ना) वर्धते, विवर्धते, वृद्धि

(११) यु (एक करना, जोड़ना या मिलाना)-युत, युति, संयुत, संयुति

(१२) युज् (जोड़ना)- नियोज्य, युक्त युक्ति, युक्त्या, योग, योजयितव्यम्, योजयेत्, योजिता योज्यम्, योज्य, योज्यते योज्यन्ते, योज्य विनियोज्य, संयुक्त, संयोग संयोजित संयोज्य, संयोज्यमान

(१३) अन्य शब्द - अधिक, आढ्या (विहीना का विपरीत) एकीकृत, कल्प (योग), धन (योग), उदय (योग) ।

२. घटाव -

(१) अस् (फेंकना, छोड़ना)- अपास्य

(२) इ (छोड़ना-अपाय)

(३) ऊन (कम करना)-ऊन, ऊनकम्

(४) ऋ (छोड़ना)- ऋण

(५) क्षि (नष्ट होना, कम होना) क्षय

(६) ग्रह (छीनना)- प्र गृ ह्य

(७) चि (कम करना)- अपचय, अपचयात्मक, अवचीयते, अपचीयन्ते

(८) त्यज (छोड़ना)- त्यक्त्वा, त्यजेत्, त्यज्यन्ते

(९) नि (लेना)- अपनयन, अपनयेत, अपनीते, अपनीय, अपनीयते अपनीयन्ते, समपनीय

(१०) पत् (गिरना)- निपातित, निपात्य, पतित, पातयित्वा, पातित, पात्यते

(११) युज (जोड़ना) वियोग, वियुक्ति

(१२) रह् (छोड़ना)-रहित विरहित

(१३) वृ (खोलना)- विवर, विवरकम्

(१४) वृज (बाहर करना) वर्जित, विवर्जित

(१५) शिष् (बाकी रखना) अवशिष्ट, अवशेष, विशिष्ट, विशिष्यते, विशेष, विशेषण, विशेषित, विशेष्यते, शिष्ट, शिष्यते, शेष शेषयेत् ।

(१६) शुध् (धोना, साफ करना)- परिशुद्ध, परिशोध्य, प्रविशुद्ध, प्रविशोधयेत्, प्रविशोध्य, विशुद्ध, विशोधयेत्, विशोध्यन्ते, विशोध्या, शुद्धम्, शुद्ध, शुद्धि, शुद्धे, शुद्धयति, शुद्धयन्ति, शुद्धध्यन्ते, शुद्धेयेत्, शोधित, शोधनम् शोधनीयम्, शोधयित्वा, शोधयेत, शोध्यम् शोध्य, शोध्यते शोध्या, संशुद्धि, संशुद्धि

(१७) श्लिष् अलग करना)- अविश्लिष्ट, विश्लिष्ट, विश्लेष, विश्लेषित

(१८) हा (घटाना, कम करना)- परिहीन, विहीन, हित्वा, हीन

(१९) ह्रस् (कम होना)- ह्रास

(२०) अन्य शब्द-अग्र (शेष), अन्तर

३. गुणा -

(१) अस् (दुहराना,) अभ्यस्त, अभ्यस्य, समभ्यस्त, समभ्यस्य

(२) क्षुद् (कुचलना, मारना) क्षुण्ण, संक्षुण्ण

(३) गुण् (गुणा करना)- गुण, गुणक, गुणकार, गुणना, गुणयित्वा, गुणयेत्,

गुणित, गुण्या, गुण्यते, गुण्या, गुण्यात्, संगुण, संगुणय्य, संगुणा, संगुणित, संगुणा, संगुण्य

(४) ताड् (पीटना)- अभिताड़ित, ताड़ित

(५) वृत् (बार बार करना) उद् वर्त ना

(६) हन् (वध करना, मारना), अभिनिघ्न, अभिहत, अभिहत्य, आहत, आहत्य, आहन्यात्, घात, घ्न, निघ्न, निहत, निहत्य, प्रणिघ्न, प्रणिहत्य, विसंहति, संहति, संहत्य, संहन्यात्, समाहत, हत, हतम्, कृत्वा, इतहित्वा ।

४. भाग -

(१) खण्ड (तोड़ना) खण्ड्यात्

(२) छिद् (काटना, तोड़कर अलग करना, बांटना) -छित्वा, छिद्यते, छिन्द्यात् छेद, छेद्य, संछेद

(३) भज् (बांटना, भाग करना)- प्रविभजेत्, भक्त, भक्ते, भक्तव्या, भक्त्वा, भजन, भजित, भजेत्, भाग, भागहार, भागे हृते, भाजयेत, भाजित भाज्यम, भाज्य, भाज्या विभक्त, विभजेत्, विभजेत, विभज्य विभज्यते विभाजित विभाजयेत्

(४) भञ्ज् (फाड़ना, टुकड़ों में तोड़ना)- भंक्त्वा

(५) वृत् (अपने साथ)- अपवर्तन

(६) हृ (छीनना, बांटना)- अपहृत, आहरेत्, उद्धृत, उपाहर, विहृत, संहृतम्, संहृत, संहृता, समद्धृत, हरतु, हरेत, हर्तव्या हृत, हृति, हृते, हृत्वा, ह्रियते, ह्रियमाण

५. **वर्ग-कृति, याव, वर्ग, वर्गितम्, वर्गणा**

६. **वर्गमूल-द्विगतमूल, पद, मूल, वर्गमूल**

७. **घन-धन, त्रिगत, वृन्द, सदृश, त्र्याभ्यास**

८. **घनमूल-घनमूल, त्रिगतमूल**

आत्मा के पर्याय-रूप

२. द्वि - जोड़ा के पर्यायवाची-युग्म, द्वितय, यमल, यम, उभ जोड़ा । अश्विनी कुमार (२) के पर्यायवाची-अश्विन, दस । आंख (२) के पर्यायवाची शब्द-अक्षि, ईक्षण, दृक्, चक्षु, दृक्, नेत्र, नयन, चक्षुष, लोचन, विलोचन । हाथ के पर्यायवाची- बाहु, भुज, पंख या पक्ष (शुक्ल और कृष्ण)-पक्ष

३. (त्रि) गुण (सत्व, रज और तम) के पर्यायवाची- गुण । राम (परशुराम, रामचन्द्र और बलराम)-राम । अग्नि (दावाग्नि, जठराग्नि, बड़वाग्नि) अग्नि, ज्वलन, वह्नि, दहन, ऋतुभुक् पावक, हुताशन, शिखि, अनल । अन्य-त्रि, त्रितय

४. चतुर, तुरीय (चेतना की चतुर्थ अवस्था-सुषुप्ति, जाग्रत, स्वप्न, समाधि), चातुर्य

वेद (ऋक्, साम, यजुर, अथर्व) के अर्थ में -वेद । कृत (सत्ययुग जिसमें धर्म के ४ चरण थे), निगम, श्रुति । समुद्र (जल, लवण, क्षीर और श्वेत) के अर्थ में-अब्धि, पायोधि अम्भोधि, कूपार, वारिधि, रत्नाकर रत्नभण्[ार), अम्भोनिधि, समुद्र अम्बुनिधि, उदधि, अहम्बुधि, पयोधि, अर्णव सागर, अम्बुराशि सिन्धु, वार्द्धव

५. (पञ्च)- अर्थ (शब्द के पांच प्रकार के अर्थ होते हैं, संपत्ति पांच प्रकार की है) के पर्याय अर्थ । इन्द्रिय (पांच कर्म या ज्ञान की इन्द्रियाँ) अर्थ में - इन्द्रिय, विषय । बाण (कामदेव के पंचबाण) अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका, नीलोत्पल) के पर्यायवाची-शर, बाण, मार्गण, इषु, अक्ष, आशु, आशुग, विशिख, शिलीमुख, पृषत्क, सायक, पत्रिण । तन्मात्रा (५ तन्मात्राए, या ५ मूल स्वरमात्राए-अ,इ,उ,ऋ, लृ)-अर्थ में- तत् (३ अध्याय ।५४ श्लोक)

६. षड़, रस (६ रस भोजन के तिक्त, मधुर, लवण, काषाय, समअम्ल) । अंग (५ कर्मेन्द्रिय और मन), ऋतु (ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त, शिशिर, शरत् वसन्त) तर्क (षड् दर्शन)

७. सप्त । घोड़ों के अर्थ में (सूर्यकिरण के सात रंग सूर्यरथ के सात घोड़ों के समान है)- वाजि, अश्व, हय, तुरंग । मुनि (सप्तर्षि)-मुनि दिति । स्वर (संगीत के सात स्वर-षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद), सर । पर्वत (भारत के सप्त पर्वत)-महीध्र, महीधर, भूमिधर,

सिद्धान्त दर्पण में प्रयुक्त अंकों के पर्याय शब्द

अंकों को शब्द में लिखने के अतिरिक्त गणित ज्योतिष में उन्हें दो और प्रकार से व्यक्त किया जाता है । सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि तथा ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में किसी अंक के लिए वैसे अर्थ के शब्द का प्रयोग हुआ है जिनकी गिनती उतनी होती है । आर्य भट्ट ने अक्षरों की स्थान संख्या के अनुसार उनका अंकीय मान दिया है, दशमलव पद्धति में उनका स्थान दिखाने के लिए उनके साथ उपयुक्त स्वर वर्ण लगाये हैं ।आर्य भट्ट की तरह 'कटपयादि' विधि केरल में प्रचलित है जिसमें 'कट' से आरम्भ (आदि) कर क वर्ग और च वर्ग के अक्षरों का अर्थ से ० तक है । इसी प्रकार 'ट' आदि ट वर्ग, त वर्ग का १-१० अर्थ है । प वर्ग का अर्थ १-५ य से ह तक १-८ हैं ।

शब्द पर्याय द्वारा संख्या लिखने पर शब्दों का क्रम बायें से दाहिने होता है पर उनके द्वारा निर्दिष्ट अक्षरों का क्रम दाहिने से बायें होता है । (इकाई से आरम्भ) होता है । 'कट पयादि' अक्षरों का क्रम दाहिने से बायें होता है । आर्य भट्ट में सिर्फ सार्थक अंक (शून्य नहीं) लिखे जाते हैं जिनके साथ लगे स्वर के अनुसार उनका दशमलव पद्धति में स्थान निश्चित होता है ।

शब्दों की तालिका इस प्रकार है-

० (शून्य)- आकाश तथा उसके पर्याय खाली स्थान में कुछ नहीं या शून्य होता है)-ख, अभ्र, नभ, गगन, अम्बर, वियद्, व्योम आदि ईश्वर अनन्त या पूर्ण अर्थ)-पूर्ण, अनन्त, विष्णुपद वामन के पद द्वारा नापा था, या विष्णु अर्थात् सूर्य का मार्ग), पुष्कर

१/४ - पाद, अघ्रि
सपाद या सांघ्रि +१/४, आप्त, आ्य आदि उपसर्ग और प्रत्यय भी लगते है)
व्यघ्रि -१/४ (ऊन, हीन आदि प्रत्यय भी लगते हैं ।

१/२ अर्द्ध, दल (इसे जोड़ने के अर्थ में स, प्राप्त और आय् शब्द लगते हैं, घटाने के अर्थ में ऊन, हीन आदि लगते हैं ।

१. एक - पृथ्वी के पर्याय वाची शब्द-भुव, भू, क्षिति, कु, धरणी, स्थिरा, वसुधा, भूमि, क्ष्मा, वसुन्धरा, महीधरा । चन्द्रमा के पर्याय वाची-चन्द्र, शीतग, क्षपेश, इन्दु, अब्ज, विधु, सुधांशु, शशधर, शशि, शीतकर, शीतभानु, सितांशु, निशानाथ, सितभानु, रजनीश

भूभृत्, कुभृत क्ष्माभूत्, गिरि, ग्रौ, मग, अग, अद्रि, इभ, शैल, पर्वत, वाद्धर्वग, शिखरि ।

८. अष्ट, हाथी अर्थ में (आठ दिग्गज आठ दिशाओं को धारण किये हुए है)- स्तम्भे रमा, दन्ति, द्विप, गज, मतंगज, कुञ्जरु द्विरद । सर्प अर्थ में (आठ दिशाओं के सर्प)- नाग, भुजंग, फणभृत, व्याल, अहि, सर्प । वसु (आठ वसु थे)-उनमें एक के अवतार भीष्म थे । रूसी भाषा में यह शब्द अभी तक व्यवहार होता है)

९. नव, अंक (१ से ९ तक अंक होते है), रन्ध्र छिद्र-(शरीर में छिद्र हैं- दो आंख, दो कान, दो नाक, मुंह, मलद्वार, मूत्रद्वार) गो, नन्द नन्द (नवीं निधि या सम्पत्ति है)

१० दिशा (दस दिशायें, चार दिशा, चार कोण, ऊपर नीचे), अर्थ में- दिश आशा ३ ।५० तथा २ ।३ में), दिक्, काष्ठा, २ ।२ तथा ३ ।४९ में), हरित ३ ।२३ में ।

११. ११ रुद्र प्रसिद्ध हैं अतः शिव के पर्याय वाची शब्द-रुद्र, गिरिश ईश, शिव, भव, हर, ईश्वर, शंकर, पिनाकी

१२. अदिति के १२ पुत्र आदित्य (सबसे छोटे वामन या उपेन्द्र थे) । आदित्य का अर्थ सूर्य भी होता है अत: सूर्य के पर्याय वाची शब्द-अर्क, आदित्य, सहस्रांशु, सूर्य, रवि, प्रभाकर, तपन

१३. विश्व

१४. ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु या इन्द्र होते हैं अत: उनके पर्यायवाची शब्द-मनु, इन्द्र, शक्र, त्वाष्ट्र

१५. तिथि (एक पक्ष में १५ तिथि होती है ।)

१६. भूप (आठ लोक पाल और आठ दिकपाल-पृथ्वी या भू के १६ पालने वाले है) नृप (भूप का पर्याय) अष्टि (आठ आठ)

१७. घन (कम्पास द्वारा वृत्त के भीतर सबसे ज्यादा इतनी भुजाओं का समक्षेत्र बन सकता है), अत्यष्टि (अष्टि या १६ से ज्यादा)

१८. धृति

१९. अतिधृति

२०. नख

२१. वैश्व (६ ।६२)

२२. आकृति, वैष्णव (६ ।६२), विष्णु

२३. धनि (७ ।८९)- धनिष्ठा नक्षत्र अश्विनी से २३ वां है ।

२४. सिद्ध, जिन, प्रचेतस् (२४ जैन तीर्थकर, २४ प्रचेता के पुत्र थे)

२५. तत्व (महत्तत्व, तन्मात्रा, इन्द्रिय और पंचभूत कुल २५ हैं)

२७. भ (२७ नक्षत्र हैं)

३२. दन्त, रद (दांत ३२ हैं)

३३ देवताओं के अर्थ में (देवता ३३ या ३३ कोटि हैं)- सुर, निर्जर, देव, गीर्वाणा

४९. मरुत् (४९ पवन हैं)

Introduction[1]

In his Brihat Samhita, Varaha-mihira enumerates the requisite qualifications of an astronomer. According to him, an astronmer should be able to explain the differences in the various Siddhantas, to demonstrate with the help of instruments the moment of the Sun's turning to the north or to the south, and of his entering the prime vertical and the meridian, and to make calculation agree with observation.

Unfortunately, the true science of astronomy has been ousted by the pseudo-science of astrology, whose votaries are to be found in almost every town

---

1. Tycho Brahe (1546-1601 A.D.), a Dane, born at Knudsthrop, near the Baltic, three years after Copernicus (1473-1543 A.D.) teminated his career. The fame of Tycho has been obscured by his rejection of the Copernican doctrine, and the construction of a system of his own, combining the elements of the Ptolemaic and Copernican theories. He maintained the earth to be the immovable centre of the universe, but supposed the planets to revolve round the Sun, and to be carried with their centre in revolution round the earth. Samanta Chandrasekhar, contrary to Tycho's university education royal favour, was conserevative and well versed in Hindu - Astronomy by the study of Siddhantas without any royal patronage and was far from modern education even in 19th century i.e. 300 years after Tycho. But strangely enough Chandrasekhar adopts the planets' orbit as conceived by Tycho, who was usually deemed discreditable in those days for his hypothesis. Despite this late Prof. Jogesh Ch. Roy, an admirer of Chandrasekhar, however finds pleasure in comparing with Tycho.

and village of India at the present day. No doubt, there are men who have committed to memory some stray couplets from Siddhantạs, and can perhaps compute an almanac with the aid of tables. But, as Bhaskara has well said, an astronomer without a knowledge of spherics is what food is without clarified butter, a monarchy without its monarch, and an assembly without a speaker.

Astronomy as a science is not cultivated by those whose business it should be to do so. They would rather learn to read the thoughts of simple persons and pretend to predict future events, than dive into the mysteries of Kalpas and Yugas, for less observe the heavens. Those that have a desire to study the science have no means of doing it, while those that have the means have no desire to watch the movements of the planets. Our students of the English colleges are busy in cramming the answers to expected questions and our university men are too busy to have leisure to think about the revival of the indigenous sciences and arts of the country. It is not strange therefore that the mathematical science of astronomy has been relegated to the halfread, illiterate, fortune-tellers who are not ashamed to assume the title of mathematician. For, the name mathematician (गणक) has been degarded to mean only an astrologer.

In this state of indigenous sciences, it is singular to find a man born and brought up in the recesses of the hills of Orissa, far removed from all educational activity and the influence of imported western civilization, silently trading his way into such a difficult science as mathematics. It is a unique experience in the department of national development to find a man really striving after

knowledge for its own sake, under difficulties whose magnitude is no less startling than the boldness of his attempt.

This is my apology for bringing before the public, a Sanskrit work written entirely in the way of our ancient Siddhantas and never meant to see the light. It is the life-long labour of Chandrasekhara Simha Samanta of Orissa, written in a language which few men care to study in these days of English education.

Modern Europe boasts of discoveries, one of which alone would have been the glory of the past. The science of astronomy has been developed to so great an extent as to shed a lustre on the bright records of original and patient researches in the domain of Physical Science. The telescope, the spectroscope, and last but not the least, the art of photography, have gone hand in hand in the service of dillgent workers. In these days of "scopes" and "meters", it may be thought useless to put forward the poor work of a Hindu whose education is in no way superior to that of an astronomer of pre-telescopic Europe. And there are men, too, who have thought that much nonsense has already been written about him.

Let them but calmly take stock of the present state of Hindu astronomy. Let them find out a couple of mathematicians, brought up wholly in sanskrit studies, who can intelligently attack the intricate calculations of a solar eclipse. Nor is there any noticeable endeavour to revive the science. What with natural apathy, and what with want of encouragement by endowments, no addition to the stock of the world's knowledge has been made by my countrymen for many a long year. If in these

circumstances something, however poor, is laid before us, something, however crude, is evolved from within, we should rejoice over it.

Whatever may be thought of the merits of the work, I regard it as a misfortune that the author has not found a man to introduce his work, better qualified than myself, whose daily avocations run in a different groove. For my part, I shall deem my efforts amply rewarded, if my countrymen, to whom original researches are as yet a thing of the future, find in the life and doings of my author a living example of what patient inquiry after truth and diligent struggle after knowledge can achieve. But I caution them again against high hopes. To apperciate the man, one must compare his work with others produced under similar conditions. It will be unfair to expect anything new in the work which will be useful to those who have studied European Science. Let me therefore briefly recount a few bright names from the annals of our ancient astronomy that the present work may be taken and its true worth.

Not to dive into the antiquity of Hindu astronomy, which is as old as the Vedas and regarding which abler men have measured swords, let me begin the story from the point where we tread on the firm ground of history. It begins with *Aryabhatta* of *Kusumapura* (Pataliputtra), the Andubarius of the Greeks, the *Arjabhara* of the Arabs, and the Indian founder of the theory of the earth's daily rotation. He was born in the Saka year 398 (A.D.476) and wrote his famous work at the age of twenty-three. It was he in whose work we find, as far as our present knowledge goes the first successful attempt to solve indeterminate equations

of the first degree. He enjoyed a wide reputation which can only be explained by supposing that he was an original observe and made improvements upon older astronomy.

Hindu astronomy was then passing through the state of childhood, and a few years later, we find *Varaha-mihira* of *Avanti* (Ujjayini), adoring the court of Vikramaditya the Great, about whom many a tale of adventure and narrow escape from death has been recounted. Varaha's encyclopaedic knowledge made him famous. But he is remembered more as a compiler than as an original worker. His astronomical compilation, named Panchasiddhantika was written about the Saka year 427 (505 A.D.)

Next, the name of *Brahmagupta,* son of Jishnu, introduces an important chapter in the history of Sanskrit astronomy. He wrote his work, Brahmasphuta-siddhanta in Saka 550 (628 A.D.) at the age of thirty, somewhere near Rewa. He was a practical astronomer, and made several corrections in the older astronomy. Indeed, the form in which we find Hindu astronomy at the present day, dates from him. He was a consummate algebraist, from whom the Arabs got their knowledge of the science. An indeterminate equation of the second degree, of which he gives solution, was a prize problem in Europe as late as the 17th century.

But the fame of *Bhaskar* born in the Saka year 1036 (1114 A.D.), near the Sahyadri (Western Ghats), threw all his predecessors into the shade. He is a glory to us, a wonder among Europeans. His great work Siddhanta-Siromani, is one of the standard treaties of the present day. He appears to have made use of the Differential Calculus.

With the death of Bhaskara, the living breath of mathematical science parted from India. Repeated invasions by a barbarous nation poured forth an abundance of calamities and in the troubled times the sacred muse of learning fled and hid herself among a herd of commentators in the Deccan. In the dark ages that followed, amidst the petty dissensions of a host of semi-indepndent States, we find intellectual effort at a stand-still; men were content to chew the cud of what their predecessors had thought and done. At last, one name of this period is worth mentioning. This is *Ganesa* of Nandigrama who wrote his Graha-laghava in Saka 1442 (1520 A.D.), a work which has been employed as an easy hand-book of astronomy in some parts of the country. Arab influence and, latterly, the contact with Europeans did not benefit the science much. It was during the reign of Jayasimha of Jayapura so late as the 17th century, that the Arabic Almagest and Euclid were translated into Sanskrit, and it was he at whose instance five observatories were built at various places in Northern India.

The long chain of astronomers was snapped asunder for a period of at least four hundred years. No doubt, there were astronomers, as there are now, and some of them may have for a time enjoyed a reputation, however local in character. But they have hardly left any permanent mark on the progress of the science.

Will it be estimating this work too highly if we regard Chandrasekhara as forming a link in the long chain ? Be that as it may, it is a most gratifying thing that Chandrasekhara has not laboured in vain. His work has already exercised an influence upon Hindu astronomy, and hence upon Hindu society.

I say upon Hindu society, to which a correct knowledge of the ever-changing positions of the heavenly bodies is neither a matter for the inquisitive, nor one which may be safely let alone. For, Hindu life is nothing if not a routine of religious practices, due observance of which necessitates a knowledge of the positions of the planets and the stars. Indeed, a correct almanac is an indispensable equipment of every Hindu household. All religious observances and rites are regulated by the almanac, and some of these require very accurate determinations. For instance, a Hindu must know the exact moment when a particular position ends and another begins.

It has, however, been observed that no two current almanacs agree in their computations. A fierce controversy is going on between the conservatives and the liberals in Hindu India about the correction of almanacs, and therefore about the data of the Siddhantas. The orthodox of the Hindu community refuse to believe in the existence of errors that have crept into the figures of the old Siddhantas in course of time. To use the foreign Nautical Almanac to regulate the religious observances is out of the question. Any correction, if necessary, must come from within, from a Hindu uninfluenced by foreign education. It is not for Europe, with all her brilliant scientific discoveries and wonderful inventions of labour-saving machinery, to take the place of the old Rishis, whose hallowed names are associated with every department of useful knowledge. Europe may be our guide in matters temporal, but must not dictate a work in matters spiritual. Materially, a Hindu is

hardly of old days, though spiritually, I believe, he is still the same.

The value of the Siddhanta-darpana, the work of an orthodox Hindu, showing errors in our current almanacs, cannot thus be over-rated. Here is a man who has practically tested the elements hitherto followed, and found reasons for correction. And he has authority for doing so from the honoured Rishis, who have given their sanction to the adoption of such corrections as may be necessary for the purpose of making calculation agree with observation.

The influence which Chandrasekhar's work has already exerted upon society is not inconsiderable. Some twenty-three years ago a meeting of learned Panditas and Hindu astronomers was called at Puri to select an almanac according to which the numerous daily rites of worship were to be conducted in the temple. The meeting decided in favour of the almanac computed after this work. One of the Chandrasekhar's pupils has been computing an almanac every year, which is used not only at Puri but throughout the greater part of Orissa. Another pupil of his publishes a Bengali almanac which has a by no means insignificant sale. Thus Chandrasekhara has already gained a foot-hold in Hindu society and has inaugurated silently but effecually an advance upon the current almanacs. At any rate, he has silenced all opponents, and has made the question of correction possible in the near future.

To fully apperciate him, it is necessary to say a few words on his early life and education. Some four years ago, I first made his acquaintance, and from conversation with him on astronomical

subjects, I was surprised to find in him a man of genius and extraordinary merit. Since then I have looked into his work, Siddhanta-darpana, written on palm leaves in Oriya character, the result of his life-long labour in the field of astronomical research. Two years ago[1] he was honoured by Government with the title of Mahamahopadhyaya, a title hitherto enjoyed only by Brahman versed in Sanskrit lore. Chandrasekhara however, is not a Brahman but a Kshattriya by caste.

He was born in the Saka-year 1757 (1835 A.D.)[2] in the small village of Khandapara, some 50 or 60 miles West of Katak, amidst the hills and jungles for which Western Orissa is famous. It is the chief town of the Raja of Khandapara - one of the tributary chiefs of Orissa. Chandrasekhara belongs to the Raj family, the present Raja, Natabara Mardaraj, Bhramaravara Ray being a son of Chandrasekhara's eldest cousin. The full name of the author is Chandrasekhara Simha Samanta Harichandana Mahapatra. Harichandana and Mahapatara are mere titles bestowed by the Raja of Puri, whose influence upon the destinies of the Rajas of Orissa is still as unbounded as was that of the Pope of Rome on the vassals of medieval Europe. He is styled Samanta as befits a member of the Raj family. In Orissa, however he is best

---

1. The sanad conferring the Mahamahopadhyaya to Samanta Chandrasekhar bears the date 3rd June, 1893. Hence this portion was written by late Prof. Jogesh Ch. Ray in the year 1895 and the article was complete and printed finally in the year 1899.
2. Prof. Jogesh Ch. Roy has simply added 78 to the Saka era 1757 to get the A.D. But actually the date of birth when calculated comes to be 11th January, 1836 A.D.

known by the familar name of Pathani Saanta (corrupted from Pathan and Samanta), a nickname given him by his parents on account of their first two children having died in infancy.

At an early age Chandrasekhara received instruction in Sanskrit. For sometime he studied Sanskrit Grammar, Smritis and Puranas, logic and medicine, and read all the important Kavyas in the original. His education has thus been varied and many sided. But it has stood him in much better stead than the modern elaborately arranged curriculum of the English schools, through which he would have been thrust, had he lived nearer a town.

At the age of ten, one of his uncles[1] taught him a title of astrology. He shewed the young Chandrasekhar some of the stars a satisfy his curiosity so natural in young children and thus gradually initiated him into the mysteries of astrology. At this age, his extraordinary desire to test for himself the position of the stars as they changed night after night was predominant. The determination of lagnas is a very frequent necessity in horoscopy; and the varying position of the planets among the stars, without a knowledge of which astrological predictions could not be made, led him to watch their movements. This idle curiosity exhibited in star-gazing developed into the habit, of a really fruitful study of astronomy. There was, however, no teacher who could instruct him in the science, and he was quite ignorant of any language save Sanskrit and his mother-tongue

1. It was his father but not uncle according to the biographer Pt. Chandrasekhar Mishra of Khandapara.

Oriya. He found, however, a few Sanskrit Siddhantas in the family library, and applied himself diligently to master them with the help of commentaries.

At the age of fifteen, when he came to learn the meaning of lagna and the rules for calculating ephemerides of planets, he was surprised to find that neither did the stars apear on the horizon at the right moment, nor could the planets be seen in their right places. Again and again, he measured with a graduated rod the relative distances of the heavenly bodies in the vain hope of finding an agreement between calculation and observation, and, again and agian his hopes were dashed to the ground. Was it possible that the rules and the figures of the famous Siddhantas were not accurate enough, or was it possible that he had made errors in his daily observations? Correct observation was the only test to settle the question. There were no mathematical instrument-makers to supply him with the requisite instruments. The old Siddhantas give brief instructions for constructing them, and he had no other alternative than to make for himself, a few primitive instruments for measuring time and angular distance.

Some of my readers may be desirous of knowing something of his observatory. It was the clear, blue vault of the heavens that was his observatory; and its equipment consisted of an armillary sphere and a vertical wheel as substitutes for modern transit and alta-azimuth, and the time-honoured clepsydra took the place of the sidereal clock. Of course, the all-useful gnomon found a place in the observatory, and I am informed, he had also a self-revolving instrument

made of the pericarps of the Bottle-Gourd (Lagenaria Vulgaris) with water and mercury. But it was more of the nature of a curiosity than of much practical use. The instrument, of which he made constant use, was one devised by himself. This, which he is fond of calling his Manayantra (measuring instrument), may be properly called a tangent-staff, it consists of a thin rod of wood, twenty-four digits long, at one end of which is fixed another rod at right angles in the form of a T. The cross-piece is notched and also pierced with holes at distance equal to the tangents of the angles formed at the free extremity of the other rod. Of course, such a rude instrument did not admit of being so divided as to enable him to measure a degree with any accuracy.

But it is a real pleasure to see him handling his Manayantra with a precision marvellous to behold. Constant practice has given him such facility with it, that he would not care to have recourse to his other instruments although better suited for measurement of vertical angles. Indeed, in most cases, mere inspection is often sufficient to enable him to hit the angle to the nearest degree.

One instance of the perfection he has attained by practice came before us when I saw him for the first time. Some of my friends doubted his pretensions to practical astronomy, and were desirous of testing his knowledge. One evening when Mars and Venus were about 6° apart in the western sky, he was requested to show, if he could, with the help of any improvised instrument the actual distance between the planets. After a moment's pause, he made his manyantra out of a stick 42 digits long, attaching a crosspiece of 4-1/2

digits to one end. The trigonometrical functions of sines and cosines were all committed to his memory. The necessary calculations were mentally made, and his instrument was ready in a few minutes.

On this occasion, he saw a telescope for the first time. He had heard of its wonderful powers, but had no idea of its performances. He requested me to show him the planets through one. Unfortunately, I had with me then a telescope no bigger than a refractor of 3-1/2" diameter. This was adjusted for him with a power of 80. The keen delight with which he looked at the varied and picturesque appearance of the moon, absorbing him for sometime can better be imagined than described. When the novelty of the aspect had abated a little, he wanted to know the magnifying power. He was told to find it out for himself, if he could. The question is itself puzzing, and I did not expect any answer. But he startled me by saying that the instrument magnified about one hundred diameters. He had measured the enlarged image of the moon as seen through the telescope and had compared it with the appearant to diameter well-known to him.

The planet jupiter was next shown through the telescope. I should rather say that he directed the instrument to the planet and saw it himself. The apparent motion of the planet quickened by about a hundred times through the instrument, was followed by him for sometime till he could see the belts and the satellites to his heart's content. It was at this moment that he gave vent to his bitter regret that he had not the advantage of such instruments in his younger days.

Next morning we had a talk about *tithis*. I said

that the almanac-makers of Bengal would not be believe in any variation in accepted duration of the tithis. Hearing this, he was silent for a minute or two, as if he doubted the fact. Being pressed for his opinion, he quoted a line from his work, meaning that arguments can never defeat the results of direct observation.

He had read in a vernacular text book that the sun sometimes exhibited dark spots on his radiant orb, and was anxious to see if it was really so. I asked him to accept the fact as true; but he said he would not believe it unless he saw spots with his own eyes. To this I retorted by asking if he had ever believed in the existence of the seven atmospehrs of the Siddhantas. His reply was that the statement was to be taken at what it was worth, and he had no opinion of his own to give. The minimum sun-spot period had been passing; but a few that he saw made him reflect upon them a long while.

None can read his life without gaining a fresh insight into the marvellous thoroughness with which our ancestors devoted themselves to their studies, our universitymen being only surface-deep in subjects more than one. The living breath of science has departed from India with the departure of men whom Chandrasekhara had made his ideal. He is an adherent of truth obtained by direct observation, and with all his respect for the ancients, would not hesitate to denounce a Sastric authority, if a proof to the contrary were obtained. Were he placed in a well-equipped observatory of modern days, I doubt not he would enrich science with his assiduous labour and valuable observations.

Unaided and surrounded, as he was by practical difficulties, what patient labour he must have undergone in his early days to observe and workout practically the astronimical elements of the planets. What numberless observations must he have made to test every figure used in the Siddhantas, in order to see if it remained true or not. Night after night passed away in the all-absorbing business of star-measurement. An eclipse of the sun or of the moon was an event in his life never to be forgotten.

Thus it was that his early days passed. To the uninitiated, his was frivolous work fit for children in want of better employment. Those who cared to understand his business failed to appreciate it. What if the planets moved out of their path ? Besides, was it not the work of professional astrologers ? And was it not unbecoming one in his position ? He began to be called by the people Raj-Jyotishi as a sort of nickname. The Raja of the State considered himself degrated by the profession of his uncle, and could never countenance his pursuits. Thus his relations with the Raja have become far from cordial, and the later has been unable to appreciate the utility of his work.

At the age of twenty-three, Chandrasekhar began to note down systematically the results of his observations and three years later the idea of embodying them in a work flashed into his mind. By this time, his mastery over Sanskrit had become so complete that he could compose elegant verses in it impromptu. Indeed, the composition of his work had begun in his mind long before it was written on palm-leaf. In this way, between observation and measurement and composition his days were divided. He was increasantly engaged

with his work for the full period of six years, and the first copy was not ready before he was thirty.

This constant strain upon his body which had never been strong began to undermine his system. He contracted a disease which has been his constant companion. Besides, the privations he had to bear, consequent upon his scrupulous adherence to the Sastric injunctions of strict vegetarianism, proved too much for his naturally weak system. Dyspepsia with its attendant colic has impaired his health. At times it becomes so painful that he is compelled to break off conversation and roll down on the ground till the attack is over. Full meals, frugal as they are, he has not enjoyed for the last thirty years, and has seldom permitted himself the indulgence of even half meals twice a day. The study of astronomy has been a passion with him, and any medicine you may prescribe for him, must neither contain any forbidden ingredient, nor, what is more important, interfere with his daily work. Even in his present invalid stale he would willingly sit up a whole night if it were for anything connected with his favourite subject. When he came here to receive the title of honour conferred upon him, he could not be persuaded to stay a single day after the Durbar, as an eclipse of the Sun was to occur a few days later. And how could he stay away from his observatory, and allow such a momentous event to pass by unnoticed ?

His naive simplicity and unassuming manners have rather been a drawback than an advantage to him. The common people, who do not understand the difference between astrology and astronomy, pester him so much with questions on their destiny, that it is only his amiable disposition that makes

him endure the constant infliction. Even those who might be expected to know better will not scruple to ply him with absurd questions and waste the few moments left to him between the beginning of one series of daily devotions and the end of another.

If he is a practical mathematician, no one is so unpractical in worldly matters as he is. Simple as a child, he depends upon his servants for his guidance. Neither is he well off, in the sense of possessing a competency in life; and, related as he is to a Raja, he is unable to make both ends meet. A retinue of attendant hereditarily maintained in his family has to be supported in the usual manner. The small income of Rs.500 a year from a few small villages, and a quantity of food grains from his tenants, are hardly sufficient in these days of high prices. Poverty has pinched him in his old age and has compelled him to incur a large debt.

The general public does not care to know his incomings and outgoings, his privations and star-gazings. "What has he done after all ?" - asks the impatient critic. To him, I would say, is it not enough to find in this man a true lover of science who regardless of other peoples unfavourable opinion of his work their taunts and dissusions, has devoted his whole life to the one pursuit of knowledge; who has shown the way to original research amidst difficulties serious enough to dishearten men in better circumstances who has employed his time usefully, instead of frittering it away like the usual run of men of his rank, on a work which guides the daily routine of millions of his countrymen ?

I do not pretend to express any opinion on the literary merits of his work but it appears to me that

the metrical composition alone, apart from its value as a contribution to Hindu astronomy is such as to entitle him to a high place among the writers of Sanskrit verse of the present day. It contains, as he tells us at the end of the work, 2,500 slokas of various poetical metres. Of these 2,284 verses have been composed by him and the remaining 216 quoted from the old Siddhantas. Of the latter, the Surya-Siddhanta and the Siddhanta-Siromani have been very largely drawn upon. Indeed, as Bhaskara has Brahmagupta for his guide, when writing his Siromani, Chandrasekhara has, in the main, followed in the footsteps of Bhaskara.

But Chandrasekhara has not been a blind follower of his master. The elements of the planets, given by Bhaskara, have not been accepted by his disciple, and for the simple reason, that they are not correct for the present day. Bhaskara's elements are not accurate, though there is no reason for doubting the accuracy of his observations. This fact is, he had to depend upon his predecessors - probably Brahmagupta was his main guide - for the positions of the planets and was thus led to erroneous results.

Chandrasekhara had the advantage of Bhaskara's observations. The latter has, of course, nowhere recorded his observations. But given his date and his elements, it is easy to find the positions of the planets as he must have observed them. For the elements if employed to calculate the positions of the planets after a long interval, may lead us to wrong results; but, it employed for places nearer his time, will be in accordance with his observations. Thus, furnished with one set of position at a given date, Chandrasekhara himself supplied the other

set required, and the result obtained is what Chandrasekhara has given us in the present work. For easy reference, the sidereal periods as he ascertained them, are given below side by side with those of European astronomy, the Surya-Siddhanta and the Siddhanta-Siromani. It is not my object to criticise how far the constant employed in these two Siddhantas were true when they were observed, though it will be clear from the comparison that they are certainly erroneous for the present time. It is easy to follow when someone has led the way; but it needed the art of a rural Pandit, guiltless of western "fire" to prove their incorrectness and to pave the way for further progress in this department. (See table 1)

It will be seen from the above that Chandrasekhara has practically assumed the sidereal periods of the Sun and the Moon, as given in the Surya-Siddhanta, but has materially advanced upon it as regards the periods of the other planets. Having regard to the comparatively slow motion of Jupiter and of Saturn, and the nature of the instruments used, it would have been a surprise if closer approximation to their true periods were made.

Let us now compare the mean inclinations of the orbits of the planets to the ecliptic.(See Table 2)

On account of the difference in the planetary theories and in the method of calculation between modern astronomy and our Siddhantas, the eccentricities of the planetary orbits cannot be compared with advantage. But as they made no difference in the case of the Sun and the Moon, their greatest equations are given here for comparison. (See Table 3)

(TABLE I)
SIDERAL PERIODS IN MEAN SOLAR DAYS

Planets	European Astronomy (1)	Surya Siddhanta + Difference (2)			Siddhanta-Siromani+Difference (3)			Siddhanta Darpana+Difference (4)		
Sun	365.25637	365.25875	+	.00238	365.25843	+	.00206	365.25875	+	.00238
Moon	27.32166	27.32167	+	.00001	27.32114	-	00052	27.32167	+	.00001
Mars	686.9794	686.9975	+	.0181	686.9979	+	.0185	686.9857	+	.0063
Mercury	87.9692	87.9285	-	.0107	87.9699	+	.0007	87.9701	+	.0009
Jupiter	4332.5848	4332.3206	-	.2642	4332.2408	-	.3440	4333.6278	+	.0430
Venus	224.7007	224.6985	-	.0022	224.9679	-	.0028	224.7023	+	.0016
Saturn	10759.2197	10765.7730	+	6.5533	10765.8152	+	6.5955	10759.7605	+	.5408

TABLE 2

		Eng.Ast.			Surya S.		Siromani		Darpana	
Mercury*	...	7°	0′	8″	5°	55′	6°	55′	7°	2′
Venus*	...	3	53	35	2	46	3	6	3	23
Mars	...	1	51	2	1	30	1	50	1	51
Jupiter	...	1	18	41	1	0	1	16	1	18
Saturn	...	2	29	40	2	0	2	40	2	29
Moon	...	5	8	48	4	30	4	30	5	9
Obliquity of the Ecliptic	...		23	27	24	0	24	0	23	30

The inclination given in the Siddhantas is reduced to the geocentric system. The general reader may be reminded *that the inclinations are all subject to variation* and that the old Siddhanta values were not so far wide of the truth as they appear from the table.

TABLE 3

		English Astronomy			Surya-Siddhanta**			Siddhanta Darpana**		
Sun	...	1°	55′	19″	2°	10′	31″	1	55′	33″
Moon	...	6	3	41	5	2	46	5	1	10

** According to Siromoni, the Sun's equation is the same as is shown under Surya-Siddhanta and the Moon's equation is slightly less.

It will be needless to compare the rates of motion of the nodes and apsides. It is possible for modern European astronomy, with instruments enabling it with ease to measure the three thousand and six hundredth part of a degree and with its engines of higher methematics to handle intricate problems, unheard of before, to deduce the elements of orbits from a very few observations made at no distant dates. But it requires the lapse of years - nay centuries - to do the same with primitive instruments and equally primitive mathematics. The motions of the nodes and apsides are so slow that Bhaskara despaired of ever measuring them. Chandrashekhara was equally in despair in these cases. But as the positions of the Moon's nodes and perigee are often required, and their motions comparatively rapid, I quote their side-real period in mean solar days.

	Eng. Ast.	Surya S.	Siromani	Darpana
Node	6798.279	6794.395	6792.254	6792.644
Perigee	3232.575	3232.094	3232.734	3232.657

The reader will notice that Chandrasekhara has devised a correction to be applied to the Mandochcha of the planets, Mercury, Mars and Saturn. He has called it Parochcha and the greatest amounts are 11′ 20′, 7° 30′ and 5° for the three planets respectively (Siddhanta Darpan V.76).

It is, however, in computing the Moon's place that Chandrasekhara has discovered some original correction, - original in the sense of their having been unknown to the ancient astronomers of our country. It is curious to note that they failed to discover the perturbation, known as *Evection* which is said to have been detected by Hipparchus about

150 years B.C. It is an irregularity which may put the Moon forward or backward over a degree. Pandit Sudhakar Dwivedi informs us in his excellent manual, called Ganaka-Tarangini, that Munjala (A.D.933) had something like "evecation' in his karana named Laghumanasa. He appears to have been the oldest Hindu astronomer who detected the irregularity, through curiously enough, his successors including Bhaskara left it unnoticed.

The next large irregularity of the Moon, called *"variation,"* has a period of one month, and a maximum of 39'31". This inequality does not affect the time of an eclipse, and the fact sufficiently explains its absence in Sanskrit Siddhantas.[1] It is said to have been detected by an Arbian astronomer, Aboul Wefa about the year 975 A.D., and rediscovered by Tycho Brahe in the 16th century. The last large inequality of the Moon's place is called *"annual equation,"* and has the maximum amount of 11'9". This was also discovered by Tycho Brahe.

It is singular that Chandrasekhara is the only Indian astronomer who has detected all the three important irregularities of the Moon. As has been said before, he did not know English and had not means of knowing of the existence of the irregularities from any foreign source; and the methods of applying the corrections together with discrepancies between his values and those of Europe leave no doubt in our mind that he must be credited with their discovery. He has named the

---

1. From Dwivedi's Ganaka-tarangini, it appears that Nityananda in 1639 A.D. used a correction called Pakshika. But it is not clear from the name alone, if it had any connection with "variation".

inequalities, *Tungantara*, *Pakshika* and *Digamsa*, with the maximum amounts of 2°40′, 38′12″, and 12′ respectively (S.D.VI.7).

For those who may be inclined to compare his corrections, his method of applying them is briefly described here. After the equation of centre (maximum amount 5° 1′ 10″) has been applied to the mean Moon, call the result Ist Moon M_1 Then add to, or subtract from it, according as the anomaly happens to be within the first six or the second six signs.

$$\frac{160' \times \text{Sin}[A - (0+3)]}{R} \times \frac{\text{Sin}(M_1 - 0)}{R} \times \frac{\text{Ist Moon motion}}{\text{mean motion}}$$

where A stands for the Moon's apogee, and 0 for the true Sun. The two signs (±) are to be taken in the case of the light and dark halves of each lunar month respectively. The result obtained is called the 2nd Moon, M_2.

To apply the Pakshika correction, take

$\frac{M_2 - 0}{3} = a + \frac{b}{3}$ (say). Subtract $\frac{b}{3}$ from 3 (Signs)

and take the less of two quantities, a and

$(3 - \frac{b}{3})$ and say, it is y. Then $\frac{\sin 2y}{90}$ is the

corection required. It should be noted that the denominator (90) is not constant, but can be obtained. The correction is to be added to, or substracted from the 2nd Moon, as the latter lies within the first or the second quadrature. Call the Moon thus corrected, the third Moon, M_3-

Now, take 1/10 of the Sun's equation and mutiply by the first Moon's motion, dividing by its mean motion. Add the result to the 3rd Moon, when the Sun's equation is subtractive, and subtract from it when the Sun's equation is additive. After this, the other corrections (such as Bhujantara), common to all the planets, are to be applied before the Moon's place becomes apparent.[1]

On a cursory view, the amount of Tungantara inequality appears double of that of evection. But if we take the Moon's greatest equation of centre into account, the apparent discrepancy vanishes. For, the amount of the greatest equation of the Moon is 6° 18′, and the maximum evection 1° 20′ making the total of 7°38′. Chandrasekhara has 5°1′ as the greatest equation and 2° 40′ as the greatest Tungantara, making the total of 7° 41′. The other inequalities discovered by Chandrasekhara are about the same as those in use in English astronomy.

The astronomical constants adopted by our India astronomers open up a large field for enquiry. It is not my purpose to discuss their bearings upon the antiquity of Indian astronomy. But I cannot but remark that it is often reiterated in season and out of season than substantiated, that the Indian astronomers borrowed largely from Greek astronomy. As far as I am aware, this assertion is based upon (1) the identity of certain Sanskrit and Greek astronomical terms, (2) the fact of Garga praising the Yavanas for their proficiency in

1. It should be noted here that the last-named inequality (Digamsa) is also applied to the Moon's node in the above-mentioned manner (S.D.VIII,33).

astronomy, and (3) the presence in Sanskrit of certain astronomical treatises words admittedly of foreign origin. This is not the place to discuss the subject throughly. But as far as my knowledge goes, these arguments, when weighed against others, are not at all convincing.

The presence of Greek terms in Sanskrit is certainly a strong presumption in favour of the theory. But when the uses of the terms are taken into consideration, it is found that with the possible exception to the word "Kendra'[1] meaning "anomaly", all the rest properly belong to astrology. Of course, when once the terms had been introduced into Sanskrit, our astronomers did not hesitate to use them freely in astronomy, side by side with pure Sanskrit terms. The passage where Garga extolled the Yavanas does not occur in an astronomical work, but in a Samhita which was rather a work on astrology than astronomy. Nor can we logically infer from the passage that the Yavanas were proficient in astronomy rather than in astrology, or that the Hindus borrowed the knowledge from them. The name Yavanacharya occurs only in connection with Samhita. Next the presence of Romaka[2] and Paulisa Siddhantas among others of purely Indian origin proves nothing beyond the bare fact of their presence and I do not see how it can be taken to imply that the Hindus had not obtained the constants of their Siddhantas

---

1. See, however Bhaskara's derivation of the word in his Siromani.
2. The Romaka-Siddhanta of Varaha-mihita is in no way superior to his Saura-Siddhanta, as was remarked by himself.

by independent observation. On the contrary, the fact of their retaining the foreign name (at least the name Romaka), shows that the foreign Siddhantas were distinct from what were Indian, and there is no proof that the Romaka or any other foreign Siddhanta was ever in use in this country, superseding the purely Indian productions. To give an analogy, a Sanskrit translation of the British Pharmacopoeia will no more prove the absence of Charaka than an English translation of the later will prove the absence of the former. All that we can logically infer is that there was intimate intercourse between the Hindus and the Yavanas, a fact otherwise known from political history. The Hindus may have been indirectly influenced by the teachings of the Yavanas. But it must be admitted that the Yavanas may have been also influenced by their presence among the Hindus.

We can safely go so far, omitting all sorts of possibilities and vague conjectures. Having regard to our ignorance of the state of astronomy and its gradual development in India anterior to Aryabhatta, and our equal ignorance of the source of the knowledge credited to Hiparchus, it is hazardous to speak of the indebtedness of the one nation to the other. If the Hindus learnt the science of astronomy from the Yavanas, how is it that the constants of sanskrit astronomy are so different from those of Ptolemy ? How is it that the early Hindu writers were unacquainted with such useful as well as remarkable facts as the precesion of the equinoxes, or the evection inequality of the Moon ? On the contrary, the constants ought to have been identical, not only becaus they are believed to have a common origin, but also because they represent

facts, as true for India as for Egypt or Greece. When one learns a science from another, it is natural to expect to find him copying not only the theory but also the practice, write or wrong. Dr. Thibaut repeats the suggestion made by Biot, that the early Hindus learnt their astronomical theories probably from Greek astrologers, and, the Doctor adds, also from almanac-makers, whose knowledge was as limited as that of there proto-types in the present day.[1] This is certainly an ingenious hypothesis; but as has been already remarked having regard to our ignorance respecting the growth and development of the science in India as well as in Egypt, we cannot but regard the hypothesis as not proven. I am inclined to believe that our knowledge of the source of Hindu astronomy has not advanced beyond the point where Colebrooke found it. All that can be safely asserted is what the illustrious oriental scholar said, that "the Hindus have certainly received and welcomed communications from other rations on topics of astrology and we add, that their indebtedness to Greece for the knowledge of scientific astronomy is still an open question.[2]

But this a digression. We have said that Chandrasekhara had made a real advance upon existing Hindu astronomy. But the best test of a theory lies in facts. For the reason given below, it is not easy, however, to satisfy oneself whether his

1. *See*, Introduction to Pancha-Siddhantika by Dr. Thibaut and Mm. Suddhakara Dwivedi.

2. It is much to be desired that some competent scholar would collect the arguments for and against the theory of indebtedness, and let us know how far, and in what-direction, Greek influence on Hindu astronomy extended.

ephemeris is correct, and how much confidence may be placed in it. For rough comparison, the places of the planets computed by him are shown below, toegther with their places, first according to the British Nautical almanac, and next according to a widely circulated Bengali almanac said to have been computed after the Surya-Sidhanta. The correction for precession in the places given in the Bengali almanac has been made by adding 20°54′ to them in accordance with the almanac. Besides these, I append ephemeris for two other days from the Nautical almanac and the Siddhanta-Darpana.

For various reasons, neither Chandrasekhara's, nor for that matter - any other Hindu almanac can coincide with the Nautical almanac. Neglecting minor corrections unknown in our almanacs, there is the determination of the exact amount of precession, without which no comparison is possible with European almanacs. To avoid it, the relative distance of the planets may be taken. It will be seen that while the Bengali almanac may be in error by as much as 4°, the error in the ephemeris by the Siddhanta-Darpana is limited to half-a-degree. The reader will, however, remember that a Hindu astromoner depends upon unaided vision, and is satisfied if the longitudes are correct to a half degree. Accepting this as our standard, the ephemerides by the Siddhanta-Darpana compare favourably with those of the N.A., while the greater discrepancies in the Bengali almanac conclusively prove how urgent has been the question of the revision of our existing almanacs in the light of observations now made. (See Table)

LONGITUDES OF PLANETS OF THE 31ST JANUARY 1893 (KATAK, 6 p.m.)

	Nautical Almanac (1)	Siddhanta-Darpana: From Fixed Aries (2)	Siddhanta-Darpana: From Vernal Equinox (3)	Bengali Almanac: From Fixed Aries (4)	Bengali Almanac: From Vernal Equinox (5)	Dec. by N.A. (6)	Dec. by S.D. (7)
Sun ...	10° 11° 54′	9° 19° 31′	10° 11° 56′	9° 19° 40′	10° 10° 34′	17° 14′ S	17° 15′ S
Moon ...	4 4 24	3 12 16	4 4 41	3 12 1	4 2 55	24 1 N	24 15 N
Mars ...	0 22 48	0 0 7	0 22 22	11 29 43	0 20 37	9 14 S	2 7 S
Mercury ...	10 0 33	9 8 23	10 0 58	9 12 16	10 3 10	21 45 S	21 15 S
Jupiter ...	0 19 27	11 26 43	0 19 8	11 27 6	0 18 0	6 32 N	6 50 N
Venus ...	9 19 19	8 26 48	9 19 12	8 27 46	9 18 40	22 7 S	22 1 S
Saturn ...	6 12 43	5 20 38	6 13 3	5 22 14	6 13 8	2 41 S	3 0 S

	20th February 1894 (Katak, 6 p.m.) N.A.	20th February 1894 (Katak, 6 p.m.) S.D.	Ist March 1894 (Katak, 6 p.m.) N.A.	Ist March 1894 (Katak, 6 p.m.) S.D.
Sun ...	11 2° 8′	11° 2° 9′	11° 11° 10′	11° 11° 11′
Moon ...	0 21 40	0 21 46	4 27 7	4 27 4
Mars ...	1 6 5	1 5 30	1 12 3	1 11 27
Mercury ...	11 5 14	11 4 57	11 22 14	11 22 39
Jupiter ...	0 22 58	0 22 34	0 24 46	0 24 21
Venus ...	10 14 16	10 12 42	10 25 28	10 25 25
Saturn ...	6 12 1	6 12 23	6 11 13	6 11 56

* It may be mentioned here that Ayanamsa on that day according to Chandrasekhara's Siddhanta Darpana was 22° 25′, while Lahiri's Ayanamsa as accepted by Govt. of India now, was 22° 21′41″ - EDITOR.

But before any reformation is attempted, an exact determination of the amount of precession becomes a question of paramount importance. The reader is a awre that in the Hindu system, the longitudes of celestial bodies are measured from a fixed point - say a star - in the ecliptic, instead of from the movable vernal equinox as is the practice in Europe. The question has therefore the same bearing upon our calculations, as the position of the so called First Point of Aries upon those of the Nautical almanac.

Unfortunately, all attempts to solve the question have been practically fruitless. The reader will hence understand the chaos into which our almanacs have sunk. The gravity of the situation, and the difficulty of escaping from it, demand a fuller discussion than our space would permit. But then this alone can give us an opportunity of ascertaining Chandrasekhara's success in this direction.

Promising, then, that we measure longitudes of planets from a fixed point in the ecliptic, the question resolves itself into a determination of the point. In other words, what is that point, or what is its longitude from the vernal equinoctical point ? Whatever and wherever that point may be, it is the starting point of our zodiac, and its longitude is known as ayanamsa, which literally means amount of solstices. For, we do not speak of the precession of the equinoxes as often as we do of the precession of the solstices. Hence, the ayana-chalanam of Sanskrit astronomy is equivalent to the precession of the equinoxes. To avoid ambiguity we shall use the term ayanamsa rather than the amount of precession.

The exact amount of the ayanamsa may be apparently determined in different ways. 1. The Siddhantas furnish a rule for computing it, which is in principle the same as the method of finding the longitude of a star at any given date by applying the amount of precession to its longitude at some other date. 2. Defining the initial with the help of other data, such as the recorded longitudes of stars, its present longitude from the equinoctial point may be ascertained. 3. Knowing the exact year when the initial point was fixed, its present longitude (ayanamsa) may be calculated from the known rate of precession. But it so happens that the results obtained by these three methods do not agree.

To begin with the **first method**, it will be seen that the different Siddhantas do not agree, either in the nature of precessional movement, or in its annual rate. According to some, the equinoxes have an oscillatory motion, turning to the right and to the left of the initial point within certain limits, and extending over a large interval of time; while others maintain their continuous motion backwards. Colebrooke compared the views of the libration and revolution theorists, and gave the rate of precession accordign to each. They are as follows:-

Liberation Theory	**Annual Rate**
Surya-Siddhanta	54″
Soma[1] Siddhanta	54″
Sakalya Siddhanta	54″
Laghu-Vasishtha Siddhanta	54″
Parasara-Siddhanta	52″.35

1. Ranganatha, in his commentary to the Surya-Siddhanta, quotes Soma-Siddhanta in support of the reading.

Liberation Theory	Annual Rate
Aryashta Satika (quoted by Munisvara)	46″.25
Manjula (quoted by Bhaskara)[1]	59″.9
Bhasvati	60″
Grahalaghava	60″

The derangement of the equinox from the intial point is 27° on either side according to the Surya-Siddhanta, and this limit was probably accepted by other libration theorists. Aryashta-Satika, however, gives the limit of 24° instead of 27′ (Colebrooke).

We are not concerned here with the theories or the limits of libration. Surya-Siddhanta and the works based upon it, are now almost universally adopted throughout India for computing an almanac, though in some places Grahalaghava occupies the field. Now from the first, we find the ayanamsa for the first day of Saka 1816[2] (13th April 1894) was 20° 55′, and from the second, 22°50′ for the same day. These amounts represent the minimum and maximum ayanamsa obtained from Siddhanta rules.

Both the Surya-Siddhanta and Siddhanta-

1. Bhaskara did not believe in the liberation theory. For, as has been shown by Chandrasekhara (VI.100), he has directed us always to add the ayanamsa and never to subtract it.
2. In common parlanac, we speak of the year being Saka 1816, though in reality we ought to say the first day of Saka 1817. The facts herein discussed were collected sometime ago, and as it immaterial which year is taken for illustration, they are not altered to suit the current year.

Siromani, the standard Siddhantas at present in use, give a rule to test the amount of ayanamsa by observation. It consists in subtracting from 12 signs the longitude of the Sun computed after the Siddhantas for the moment when the Sun crosses the vernal equinoctial point. Thus, on the 13th April 1894, the Sun's longitude for Greenwich mean noon was 23°32′7″, while an almanac gives us 1°21′25″ as the Sun's longitude for the same instant, making the ayanamsa 22°10′37″. It will be seen therefore that not withstanding the higher precessional rate of the Surya-Siddhanta, the calculated amount becomes less than the actual by nearly 1°16′, while the Grahalaghava makes it greater by about 39″.

To come to the **second method**, viz. to find the true longitude of the initial point as defined by stars. All the modern Siddhantas agree in the statement that the longitudes of all heavenly bodies are to be measured from the Star Revati situated on the ecliptic. The star has been identified with Picicum. Now, this is a star of the fifth magnitude and is barely visible to the naked eye. The question is, why was this particular star out of the many situated on the ecliptic, - some of which are larger, - chosen for marking the beginning of the zodiac? The answer has been - and there is no doubt about the accuracy of the answer - that the vernal equinox happened near the star when the present system of astronomical measurement came into vogue.

So far it is plant sailing. For, we can easily find the longitude of the star from the vernal equinoctial point and at once get the required ayanamsa. From the Right Ascension and Declination of the star, § Piscium, on the 13th April, 1894, we get 18°23′49″

as its longitude.[1] This is however, less than the amount obtained above. It is clear therefore that either the star Revati is not § Piscium, or it did not mark the initial point. No doubt exists about the identity of the star, neither can we suppose all the Siddhantas false in their assertion.

The latitudes and longitudes of thirty-four others stars are given in the Surya-Siddhanta. They were not measured in the usual way. But from the express instructions as to the method of measurement adopted, we understand that the so-called long tudes, Dhurvas, are the longitude of the Right Ascensions of the stars supposing them to be on the ecliptic, and that the latitudes (Vikshepas) are the distances, north or south, of the stars from the ecliptic, measured along the declination circles passing through the stars. Now, taking only the 27 stars of the zodiac, and comparing their reduced Dhruvas with their present longitude, we find ourselves confronted with a curious result.[2] The difference between the recorded and the present longitudes is not the same for every star. Indeed, it varies from about 18° to 24°.

Omitting Visakha, of which I am not certain, the mean difference of the longitudes of the stars of the first half of the zodiac, i.e. from Asvini to Chitra is 21°, while that of the stars of the second half amounts to 19° only. So, while the mean

---

1. The modern Surya-Siddhanta gives 359°50′ as the longitude of the star Revati. This would make the present ayanamsa greater by 10′ only.
2. I understand that Prof. Whitney has discussed the point, and regret that I have no access to his edition of the Surya-Siddhanta at present.

precession for all is about 20°, that for Asvini (*ά Arietes*) and Uttara-bhadrapada (*άAndromeda*), the two stars on either side of Revati, is about 24′ each. The question becomes more perplexing when remember that Bhaskara, who certainly made a few corrections, has given in most cases the same longitudes as we have in the current Surya-Siddhanta.

Our identfication of some of the stars may be doubtful.[1] But taking all the star-longitudes into consideration, we are forced to admit that somehow or other there were errors of observation. Possibly, these errors were partly due to the rude means of observation, increasing the errors with the increase of the zenith distance of the stars, and partly to azimuth errors. One or all of the explanations must be accepted as true, as we cannot suppose that any one having the slightest pretension to practical astronomy, however rough the instrument might be, could make such gross errors in the simple measurements required. To take the mean of the star-longitudes for a solution of our problem is, therefore, a wrong procedure, in as much as, we are entirely in the dark as to the weight to be attached to the determinations. We shall however, make use of them in another way later on.

We now proceed to consider the **third method,** which consists in analysing the dates in which there was no ayanamsa. For this purpose, we require not only the dates but also the rates of precession

---

1. Thus, if Asvini be identified with *β Arietes* and Uttarabhadrapada with *γ Pegasi*, the amount of percession deducted from them becomes nearly equal and agrees with that obtained from Magha.

assigned by the astronomers. We have already seen the various rates assigned by them. As the Surya-Siddhanta's rate of 54 seconds per year is a close approximation to the rate known at present, let us take this first for consdieration.

Apparently, the rate of 54 seconds is hihger by nearly 4 seconds than the actual. I say apparently for the rate makes the ayanamsa less, instead of increasing it in the proporiton of about 50 to 54. It must be therefore really lower than the true rate. To explain the anomaly we have to consider the Siddhanta year. The length of the sidereal year - the year used by us instead of the tropical year in use in Europe - is 365.25875 mean solar days according to the Surya-Siddhanta, and is thus greater than the true length by 0.00238 days. Now, taking the Sun's daily motion at 59′8″, we find that during the excess the Sun moves to the East through a distance of 8″.44 nearly. But the equinoctial point moves to the West. It is therefore clear that the precessional rate assigned by the Surya-Siddhanta is practically 54″-8°.44, or 45″.56 per year. It is for this reason that the ayanamsa, calculated from the Siddhanta, apparently higher rate, becomes less than the amount observed. Hence if we accept the Siddhanta's length of the year, we should make the annual precessional rate 50″ 24+8″ 44 or 58″.68. It is remarkable that the rate of 45″.56 per year is almost equal to the precessional rate in Right Asscension. Whether the Siddhanta writer meant the rate to be what we find, I cannot say, though there are certain reason favourable to our conjecture. The point may be illustrated by taking other Siddhantas. Bhaskara's year consists of 365.25843 days, and is therefore longer by 0.00206

days. Hence, accepting Bhaskara's year, we should have 50° 24+7".31 or 57",55 as the precessional rate. Bhaskara does not state in his Siromani any rate deduced by him, but evidently supports Munjala's rate of 59".9. Moreover, his adoption of the rate of 60" a year in his Karana-kutuhala leaves no doubt in our mind as to the rate he used.

Similarly, Ganesa, author of Grahalaghava, makes the year of 365.25856 mean solar days, which is thus longer by 0.00219 days. He ought to have therefore made the precessional rate 50".24+7".86 or 58".10 instead of 60" as he has done.

Chandrasekhara accepts the length of the year of the Surya-Siddhanta, and gives 57".615 as the precessional rate (S.D.VI.75). This is just less than the rate we have assumed above by 58".68-57". 62 or 1"06. I was surprised to find this close approximation, and could not but ask him the data from which he derived the rate. In reply, he said that finding the Surya-Siddhanta and the Siromani make the ayanamsa either shorter or longer than that observed, he was for some time in a fix about the rate to be followed. Fortunately, while he was studying Jata-karma-paddhati with the help of the commentary called Jatakalankara written by Suryadeva some 800 years ago, he accidentally found a passage in which the commentator recorded the ayanamsa as it was observed by him on a particular day of a particular year. This find itself is not less valuable than Chandrasekhara's rate. He gives however, 22°26' as the ayanamsa for the year we have taken for discussion.

Munjala appears to be the earliest writer who has given the date of the year of no ayanmsa, as well as the rate of precession observed by him. He

wrote his work in Saka 854,[1] and the precessional rate assigned is 59".9 in a year. We also learn from Dwivedi's Ganaka-tarangini that according to Munjala, Saka 434 was without ayanamsa. Now from 434 to 854 Saka, there were 420 years, during which at the rate of 59".9 per year, the ayanamsa had amounted to 6°59'18". However erroneous the rate given by Munjala may be it will not be wrong if we take 6°59'18" (say 7') as the ayanamsa in Saka 854. We know, however, that the rate of precession could not have been greater than 58".68 per year. Accordingly, the ayanamsa obtained above carries us back through 429 years from Saka 854, the date of Mujala's work. In other words, we find that according to Munjala's data Saka 425 was the year of no ayanamsa at the latest. From the ayanamsa obtained from Munjala and that observed in Saka 1816, we note that the rate of precession amounts to 56".8 in a year.

The next work we take is Bhasvati by Satananda,[2] which is still regard as an authority for the calculation of eclipses. He wrote his work in Saka 1021, and according to him the rate of precession is 60" per year. We also know that he regarded the Saka year 450 as the year without ayanamsa. Now, calculating the amount of

1. The date 584 in the Ganaka-tarangini seems to be a misprint, though it occurs thoughout the short notice of Munjala, excepting the passage wher Pandit Dwivedi quotes from Munjala, makign the date 854 Saka, adopted above.

2. Satananda was born in Orissa in Saka 990 (i.e., 1068 A.D.) and wrote the Bhasvati in Puri in Saka 1021.(i.e., 1099 A.D.) by adopting centmal system. Hence his name was Satananda as it was a pleasure to him to use centinals.

ayanamsa in Saka 1021 in the above manner, we find that it was 9°31′ in that year. From this, calculating backwards at 58″.68 a year, we come to Saka 437 as the year of no ayanamsa. We also note that the rate of precession reduced from the ayanamsa in 1021, amounts to 57″.295 per year.

In his Karana-kutuhala, Bhaskara has roughly given 11° as ayanamsa about Saka 1105. From this at the rate of 60″ in a year, the rate assumed by him, we are taken back to Saka 555, and, at the rate of 57″.55 which we have found before, to Saka 423. We also note that adopting his observation, the rate amounts to 56″.624 per year.

To take another example, we mention Ganesa who wrote his Grahalaghava in Saka 1442. According to him the rate of precession is 60″ in a year, and Saka 444 was without ayanamsa. These premises lead us to infer that ayanamsa amounted to 16°38′ in Saka 1442, which at the rate of 58″.1 carries us back to Saka 412, a-date which is the earliest of all that we have hitherto obtained. But, considering that the amount of ayanamsa reduced, compared to the present amount, makes the rate at low as 53″.4, we are lead to infer that his data were wrong. It is to be observed, however, that the rate of 58″.68 if adotped makes Saka 422 as the year without ayanamsa.[1]

We may almost guess the data from which Ganesa derived his rate. It is likely he accepted 11° as the amount of ayanamsa in 1105, as recorded by

1. An error in observing ayanamsa is not uncommon. One instance of it is furnished by Mahadeva who recorded 13°45′ as the amount of ayanamsa in Saka 1238 (Dwivedi's G.T.), thus making the rate since then 52″.5 in a year.

Bhaskara. From this he might have obtained the Saka year 444 as the starting year, and also the rate of 60 seconds a year, making the amount 16°37′ in Saka 1442.

It remains to notice the data 421 Saka given by some minor authors. This is obviously based upon the Surya-Siddhanta's with its annual rate of 54, making 20°55′ as the amount of present ayanamsa.

Chandrasekhara has not recorded the data which furnished him the rate, knowing howerver, his ayanamsa and rate, and calculating backwards, we arrive at Saka 415.

So far we have obtained the following figures:

	Sakabda	Rate per year
Munjala	425	56″.828
Satananda	437	57.295
Bhaskara	423	56.624
Chandrasekhar	415	57.61
Mean	425	57.09

Having regard to the nature of the data ve cannot expect a closer approximation than that shown above. We may therefore fairly take the mean of the dates, as well as the rates. On account of obvious inaccuracy in the data of Ganesa the date and rate obtained from him cannot be rightly included. Neither will his date, if corrected increase the weight to be attached to the mean to be calculated from the above figures. We might, however, include the data 421 Saka given by certain weriters. Indeed, it will be seen that dates of the starting years are of two classes; one somewhere near 450 Saka, and the other, 421 Saka. But the

dates of the former class may be reduced to those of the latter class. It will be further observed that Munjala, the earliest writer of the set, makes the closest approximation to the mean, Satananda seems to have committed an error seeing that he assigns Saka 450 as the starting year. Madhava Misra, a commentator of his, makes the same remark and suggests that the Saka year 421 ought to be taken incalculations.[1]

From what has been described above the Saka year 421 or 427 appears to mark the beginning of the fixed zodiac. It is difficult to prefer one to the other. The Saka year 421 is equivalent to the year 3600 of the Kali yuga, and the fact of its being so, goes in its favour. Besides, it is the year in which Aryabhtta composed his work, a work which enjoyed a wide reputation. Lalla, whose Tantra Bhaskara condescended to criticised adopted the year 421 Saka, and the writer of modern Surya-Siddhanta evidently held the same view while writing the ayanamsa rule.

On the other hand, the great popularity of Varaha-mihira leads us to suppose that the present system of the zodiac had its beginning in Saka 427, and I belive all the anomalies noticed before may be better explained by accepting the year. We have an authority for our view in the pancha-siddhantika itself. The often-quoted verse in which Varaha-

---

1. The copy from which the remarks are made was printed in Benares in Samvat 1942. It is full of mistakes, but the sense is clear. It is curious to note that Satananda, while basing his work on the Surya-Siddhanta, gives a higher rate than what is given by the latter Madhava Misra tries to justify this rate by altering the rule.

mihira distinctly mentions the fact that in his time the summer solstice took place at the beginning of Cancer is a complete answer to the question we have been discussing.

Dr. Thibaut, the learned editor of the Panchasidhantika, however, finds difficulty in accepting Saka 427, as the date of the composition of the work. As far as I can gather from his introduction to the work, his main objection lies in a statement of Amraja, quoted by Bhau-Daji, that "Varaha-mihira Acharya went to heaven in the 509th year of the Saka kala, i.e. A.D. 587". For if Varaha be supposed to have written the work in Saka 427, he must have lived to the good old age of eighty-two years after the composition; and supposing him to have written it at the age of twenty-years, he must have seen 102 summers.

Seeing that Varaha lived long enough to write a very large number of works, there is nothing in the statement intrinsically impossible. On the other hand, if the Saka year were not the epoch of his Karana, he defeated his own purpose. In deed, the idea of a Karana-writer using a date borrowed from some older Siddhanta, as has been supposed in this case, and thus representing a time other than that for which the work is written, is to say the least, self-contradictory. Then again as has been pointed out by Pandit Dwivedi, there is absolutely no proof of the validity of Amraja's assertion. Dr. Thibaut admits that if Saka 427 be taken as the epoch of Varaha's work, several facts, not otherwise explainable, become easy of explanation. All those considerations, together with tradition about Varaha's time point to the conclusion we have already arrived at by discussing ayanamsa.

Assuming then, that the zodiac at present in use was fixed in Saka 427, let us explain a few facts connected with it. First of all, we find that in 1389 years, which have elapsed since the date general precession has amounted to 19°-23′-7″; while, had the Surya-Siddhanta's year been in use throughout the Sun must have been in error by 3°-15′-30″, thus making the ayanamsa 22°-38′-37″ in Saka 1816 last. The amount, however, differs from the observed by 28′,- a quantity too large to be neglected. On the other hand, if Ganesa's length of the year be taken, the error in the Sun amounts to 2°-9′-54″, making the ayanamsa actually less by nearly 38′. It is remarkable that the length of the year assumed by Bhaskara makes the total 22°-12′21″, nearly the same as is observed.[1]

From the observed ayanamsa and the fact of its commencement in Saka 427, the precessional rate becomes 57″.45. This is lower than that obtained by us from the Surya-Sidhanta's year, but nearly the same as we obtained from Siromani's year. This discrepancy between the rate calculated from Surya-Siddhant and that found above can be explained by supposing that the Surya-Siddhanta's year may not have been in use throughout the large interval of 1389 years, and that the rate of precession is not known so acurately as may be sufficient for the great length of time. The fact of Varaha's Surya-Siddhanta giving a slightly shorter year (as shown

---

1. The formula 50-2411 t+0001134 t^2 is adopted for calculating the general precession. See Chauvenet's Astronomy. The precession constant appears to be a little too large, as is remarked by the author. A calculation made from Bessel's constant allowing for its variation, renders the general precession nearly 1′ less.

by Dr. Thibaut), makes no sensible difference in the result. Be the explanation what it may, it is to be observed that Chandrasekhara gives 22°-26′ as the observed ayanamsa, which is 15′ greater than what we have assumed. This fact shows that somehow or other, the length of the year in use was slightly less than what we find it in the modern Surya-Siddhanta.

At any rate, the vernal equinox in Revati did not mark the beginning of the existing zodiac. Ranganatha, a commentator of Surya-Siddhanta, supports us by saying that the equinox fell somewhere near Revati. For, the equinox fell on the star in Saka 498, and during the period since elapsed, the Sun has moved through an excess of 3°-5′-29″, thus making the ayanamsa 21°-29′-18″. Even the Siddhanta's position of the star leaves a difference of half a degree. So we must suppose that the star Revati was nearly a degree to the East of the initial point when the zodiac happened to commence its existing fixity.

If any use is to be made of the recorded Dhruvas of the stars, it appears to me to be the most reasonable course to select those stars which are situated near the ecliptic. For, as has been already pointed out, the errors of observation by means of rude appliances will increase with star-latitudes. Accordingly, the following twelve stars situated within five degrees on either side of the ecliptic are given below for composition.

Stars	Longitude in Saka 1816	Reduced longitude	Difference
Krittika (23 Tauri)	58°-14′	38°-52′	19°-22′
Rohini	68°-17′	47°-56′	20°-23′
Pushya (*δCancri)*	127°-21′	106°-0′	21°-21′
Magha	148°-21′	129°-0′	19°-21′
Chitra[1]	202°-22′	181°-23′	21°-9′
Visakha[2]			
Anuradha	241°-45′	224°-31′	17°-14′
Jyeshtha	248°-17′	230°-41′	17°-36′
Purvashadha	273°-6′	254°-30′	18°-36′
Uttarashadha	278°-43′	260°-18′	18°-25′
Satatara	340°-05′	319°-41′	20°-24′
Revati	373°-34′	359°-50′	18°-34′

The mean of the differences is 19°-18′ carrying us back to about 433 Saka. If it were possible to hit upon the stars that were taken as fundamental stars for the measurement of the Dhruvas, we could have arrived at the correct result. We might fairly take the star Magha as one of them, since it is a star of the first magnitude, situated on the ecliptic, and otherwise important in Sanskrit astronomy. It would be seen from the precession of the star that the Saka year 430 is reached.

As has been already pointed out, an allowance must be made in the amount of precession deduced from the recorded Dhruvas of stars. Still, the mean general precession furnishes approximately the date of their measurement. Dr. Thibaut has employed the method to determine the "beginning of the scientific period of Hindu astronomy". From Prof. Whitney's discussion of the star-longitudes given in

1. Bhaskar's Dhruva of the star is assumed.
2. I am not certain of Visakha. If it be identified with *α* Libra the difference amounts to 22°-46′.

the modern Surya-Siddhanta Dr. Thibaut places the period somewhere in the fifth century A.D. It is, however, strange that he has omitted to discuss the bearing of the Dhruvas of the seven stars he has found in the old Surya-Siddhanta. Omitting Aslesha which I cannot identify with certainty, the mean general precession of the remaining six amounts to about 24°. This implies, then, that astronomy as a science began to be cultivated in India in the second century A.D. at the latest.

We have already dwelt rather too long on the determination of the starting point. But considering the importance of the question in settling one of the fundamental preliminaries to any possible revision of on current almanacs, a word or two more on the subject may be excused.

Chandrasekhara gives two methods for determining the starting point. One is based upon a verse of the modern Surya-Siddhanta, which he takes to mean that the declination-circle passing through the pole-star marks the junction between Aries and Pisces (XII.61). He further cites his authority for thus interpreting the verse from Brahma-Jamala.

I am inclined to believe that he is mistaken in thus interpreting the sloka of the Surya-Siddhanta, though I have not seen Brahma-jamala, nor have I an opportunity of doing so now. Taking, however, the rule for granted it will be seen that the Dhruva of the star was 21°-42′ in Saka 1816. But from the annual variation in the star's R.A. the change in its Dhruva is nearly 3-3/4 minutes in a year. This fact alone demolishes Chandrasekhar's view.

The other method suggested is an inverse

application of the Sun's place, calculated after the Surya-Siddhanta (S.D.VI.89). Assuming his calculated place to be correct, it is easy to find the beginning of the starting point of measurement. In the absence of a better method, this remains the only feasible course of procedure, and it is by this method that we have got the present ayanamsa.

It will be noticed (S.D.XII.10) that Chandrasekhara gives 5°N. as the polar latitude of Revati. The fact is, he has given up the Revati of our ancient astronomy for the simple reason that the Siddhanta Revati is hardly recognisable, and therefore practically useless. His Revati is not ζ (zeta) but η (eta) Piscium. How far this innovation will be acceptable to the public, remains to be seen.

Instances of giving old names to new stars are not rare, and this appears to be one of the main difficulties in identifying stars of different Siddhantas. For example, the star Pushya of Varaha-mihira's Surya-Siddhanta must have been a different star from the one receiving the same name in the current Surya-Siddhanta. For Pushya of old appears to have been Proesepe of the Greeks, while modern Pushya is δ Cancri.

It may be useful to knwo the stars to which Chandrasekhara applies the Siddhanta names. For this purpose I got a chart of the stars made by him from which the following list is prepared.

1.	Asvini	α Arietes
2.	Bharani	41 Arietes
3.	Krittika	Tauri (Pleides)
4.	Rohini	α Tauri (Aldebaran)
5.	Mrigasira	λ Orionis

6.	Ardra	α Orionis
7.	Punarvasu	Geminorum
8.	Pushya	Proesepe (in Cancer)
9.	Aslesha	- Hydrae
10.	Magha	Leonis (Regulus)
11.	Purvaphalguni	δ Leonis
12.	Uttaraphalguni	Leonis
13.	Hasta	δ Corvi
14.	Chitra	α Virginis (Spica)
15.	Svati	α Bootis (Arcturus)
16.	Visakha	α Libra
17.	Anuradha	δ Scorpionis
18.	Jyeshtha	α Scorpionis (Antares)
19.	Mula	γ Scorpionis
20.	Purvashadha	δ Sagittarii
21.	Uttarashadha	Sagittarii
	Abhijit	Lyri (vega)
22.	Sravana	γ Aquiloe (Altair)
23.	Dhanishtha	β Delphinii
24.	Satataraka	γ Aquarii
25.	Purvabhadrapada	β Pegasi
26.	Uttarabhadrapada	α Andromeda
27.	Revati	ξ Piscium
	Agni	β Tauri
	Brahmahridaya	Aurigae (Capella)
	Prajapati	Aurigade
	Ilvaka	Orion's belt
	Lubdhaka	Sirius 8
	Agastya	Canopus 9

Kratu	Ursa majoris
Pulaha	Ditto
Pulastya	Ditto
Atri	Ditto
Angira	Ditto
Vasishtha	Ditto
Marichi	Ditto
Apayavasu	5°N. of Spica; 5th mag.
Apamvatsa	6°N. of Apaya; 5th mag.

The polar longitude and latitude of Chandraskhara's Revati , as given in the work, are slightly incorrect. In a letter to me, he gave 359°10′ and 5°30′N. as the corrected longitude and latitude. Accordingly, the precession of the star amounted to 22°20′-41″ in Saka 1816. These correction were thought necessary by him in order that the observed ayanamsa might agree with the precession of the star as he ascertained it. But we cannot but admit that he has confounded ayanamsa (or sun-precession) with star-precession.[1] For, it is obvious the amount of ayanamsa we observe by the Sun affects only the Sun's place in finding moment of his crossing the equinoctial points, while the general precession of the stars remains unaffected by the slight increase assumed in the length of the year. But credit must be given him for his consistency in the view, however wrong it may be in the light of the facts disclosed.

Another important improvement made by

1. An instance of an error of this kind is currnt in our Bengali almanacs in which the equinoxes are puttwo days later on account of the ayanamsa being taken at 20°55′.

Chandrasekhara is in the Sun's parallax. The history of his attempts at determining it is no less interesting than the results he actually obtained. The ancient astronomers of India were satisfied with taking for the parallax of each planet, 1/5th part of its mean daily motion. Accordingly, the Sun's horizontal parallax was considered to be 3′56″, and that of the Moon 52′ 42″. With rough instruments at their disposal, the ancient observers could not but assign wrong values. But awkwardly enough, the parallaxes of the Sun and Moon come into every prediction of their eclipses. So while modern astronomy increases the distance of the Sun to something like 400 times the distance of the Moon, our ancient astronomers placed him no farther than 14 times this distance. Chandrasekhara has removed him to a distance of about 154 times the mean distance of the Moon.

Chandrasekhara told me that before he got the parallax, he had passed many an unhappy day. He was then very young, but was anxious to know the Sun's distance. He could not even imagined how the distance could ever be known. The ancient works were dogmatic in their assertions, and did not say a word about the method employed. By his failure in approaching the problem, he became disheartened. One day thus dejected in mind, while he was coming home, he noticed an image of the Sun projected through a narrow aperture in a fence of palm leaves close to his house. This phenomenon well known to every tyro in physical science made him reflect, and he thought that he had got a solution of his problem. Could he but get the Sun's real diameter. This similar triangles on the two sides of the aperture, with their bases formed by the Sun

met with sneers from his equals in position, because he shook off the aristocratic prejudice against star-gazers and fortune-tellers. He had no one to encourage him in his pursuit, and no notice was taken of his work. Our Government could only confer upon him an empty title which he had never coveted. Geniuses are liek declicate plants, never plentiful anywehre and depend upon tender care for growth and development and fertility. Let me therefore hope that the past neglect of his countrymen may yet be compensated, and that better days may yet dawn upon our old and crippled observe of heavenly bodies.

Jogesh Chandra Roy[1]

1. The above article reproduced is the introduction written in Feb' 1899 at Katak (presently Cuttack) by Late Professor Jogesh Chandra Roy to the book 'Siddhanta-darpana' of Samanta Chandrasekhara, published for the first time in devanagari script.

श्री कृष्णाय नमः

अविघ्न मस्तु

सिद्धान्त दर्पणः

मध्यमाधिकारः

प्रथमः प्रकाशः

काल वर्णनम्

श्री भूमाधव चक्र चक्र्यवनिभृत्तद्राभिरभ्युज्ज्वलं
श्री कण्ठ प्रमुखाखिला मरशिखा जुष्टांघ्रि पीठोपलम्
श्री नीलाचल मौलि मण्डल महा नीलाय मानं महः
श्री भूमाधरितस्परं भवतु नः प्रत्यूह हत्युद्यतम् । १ ।

श्री नीलाचल के शिखर भूषण अति नील तेज के युक्त श्री जगन्नाथ हमारे सभी विघ्न नष्ट करने के लिए सदा उद्यत रहें। श्री जगन्नाथ के साथ श्री (लक्ष्मी), भू (पृथ्वी), माधव (दुर्गामाधव) चक्र (सुदर्शन चक्र), चक्री (नारायण), बलभद्र (अवनिभृत) सुभद्रा-इन सात देवताओं का तेज सम्मिलित है। इन्हें महादेव (श्रीकण्ठ) के साथ आकर देवता गण पत्थर के रत्न पीठ पर सिर लगाते हैं। १ ।

गांगेय द्युति भंगदांग लतया श्री राधयालिं गितम्
विद्युत्सांगिघना घना घनाप घन रुक् प्रेमामृतै का श्रयम् ।
सत्संवित्सुखम क्षर क्षरपरं पूर्णाति पूर्णोत्तमम्
श्रीकृष्णाख्य मुपास्महे सुरुचिरं वेदान्त वेद्यं महः । २ ।

स्वर्ण तेज को भी लज्जित करती हुई श्री राधा की अंगलता के आलिंगन से (कृष्ण का) श्याम रूप काले मेघ की बिजली के समान शोभित होता है, उस प्रेम रूपी अमृत का ही एक आश्रय है। यह तेज सत् चित् आनन्द रूप, पंचभूतों से परे (क्षरपरं) अविनाशी, स्वयं पूर्ण होने के कारण अतुलनीय है। २ ।

जयति जगती भर्तुर्धामाद्भुतं परमाणुतां
ययुरपि जगत्कोषा यल्लोम जाल विलावलौ
यदनिलजल ज्योतिः क्षौणीपराणु गृहोदर-
स्फुर दपि सुरागणैः क्रीडन्निजैरवतारकैः । ३ ।

जगत् के पालक अद्भुत, तेज के परमेश्वर की जय हो, जो परम सूक्ष्म होते हुए भी रोम-रोम में ब्रह्माण्ड धारण किये हुए हैं। जिन के विराट स्वरूप में पृथ्वी (मिट्टी) आग, जल, आकाश, पवन पञ्चभूत, सूक्ष्म रूप से फैले हुए हैं, वहाँ परमात्मा उन्हीं पञ्चभूतों के भीतर देह धारण कर प्रकट होते हैं (अवतार लेते हैं) इन अवतारों की (क्रीड़ाओं) की देवगण भी गणना नहीं कर पाते।

श्री भास्कर प्रभृति खेचर चक्रवालं
नत्वा गुरुम् स्वपितरौ तदनुग्रहाढ्यः
गूढ़ोऽप्य गाढ़ गणक प्रति पत्तयेऽहं
सिद्धान्त दर्पण इति प्रथयामि शास्त्रम् । ४

सूर्यादि ग्रह, अपने गुरु और माता-पिता को प्रणाम कर उनके आशीर्वाद से मैं सिद्धान्त दर्पण नामक शास्त्र लिखता हूं जिससे कठिन ज्योतिष शास्त्र को अल्प बुद्धि गणक भी समझ सकें ।

ग्रन्थेऽस्मिन्नधिकार पञ्चकमहं वक्ष्यामि मध्यस्फुट
त्रिप्रश्नातति गोल काल सहितं सांगं स्ववक्रोद्गतैः ।
वाग्यैः क्वापि दिवाकरांश गतितैर्ग्रन्थान्तरोत्थापिते-
रैकार्थ्यात् क्वचिदन्विते सुवितते बोधाय बालावतेः । ५ ।

इस ग्रन्थ में पांच अधिकार (प्रधान अध्याय) हैं - १. मध्य, २. स्फुट, ३. त्रिप्रश्न, ४. विवेचन सहित गोल, तथा ५. काल । ये सभी विभिन्न अध्यायों में विभक्त हैं । इसमें अपनी रचना, सूर्य सिद्धान्त तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धृत श्लोक भी हैं । एक ही अर्थ के अन्य ग्रन्थ के श्लोकों से बच्चे भी (ज्योतिष न जानने वाले भी) सहज ही समझ सकते हैं । इस कारण ग्रन्थ विस्तृत हो गया है । ५ ।

नास्ते काला वयव कलना यत्र दृक् शास्त्र सिद्धा
श्रौत स्मार्त व्यवहृतिरपि छिद्यते यत्र धर्म्मया ।
तस्मा देषा कृतिरनुतववागस्तुवा प्रस्तु तार्था
ग्राह्या दक्षै ग्रहण भगणा द्यत्र संलक्ष्य साक्षात् । ६ ।

यदि काल के अवयव (लिप्ता, दण्ड, दिन, मास, वर्ष आदि) की गणना प्रत्यक्ष नहीं जाय तो वैदिक और स्मार्त कर्म धर्म का फल नहीं देते हैं । अतः विद्वानों द्वारा इस ग्रन्थ की परीक्षा की जाय कि इसकी गणना अनुसार ग्रहण और भगण आदि दिखते हैं या नहीं, तब इसे स्वीकार करें । ६ ।

प्राक् सिद्धान्त प्रसिद्धा रवि शशि भगणा घस्त्र मासाब्द संख्या
भूगोल व्यास जीवोपकरण सहिताः सर्वदा सन्ति सत्याः ।
किन्त्वन्येषां ग्रहाणामिह भगण गणस्योच्च पातेषु कक्षा-
बिम्बादीनां विसम्वादत इतिरजनैः कल्प्यते ग्रन्थ जातम् । ७ ।

रवि और चन्द्र के भगण, दिन, मास और वर्ष की संख्या (एक कल्प में) पृथ्वी, उसका व्यास, ज्या तथा कोटिज्या आदि क्रमशः सत्य हैं, अतः ये सब प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार ही लिखी गयी हैं । किन्तु अन्य ग्रहों के भगण, उच्च, पात, शर, कक्षा और बिम्ब आदि का मान समय के साथ बदलते रहते है अतः नये ग्रन्थ लिखे जाते हैं ।

कल्प, वर्ष, मास, दिन आदि की परिभाषा सूर्य और चन्द्रमा की गति के

अनुसार है, अतः दोनों का परस्पर सम्बन्ध अपरिवर्तित है। वर्ष का कुछ भी मान हो उसमें पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर लगायेगी, या एक दिन में पृथ्वी का अपने अक्ष पर एक चक्र होगा। पृथ्वी की गति सूक्ष्म ज्ञात होने पर वर्ष और दिन भी ज्यादा शुद्ध रूप में ज्ञात होंगे पर उनका परस्पर सम्बन्ध वहीं रहेगा। अन्य ग्रहों की गति उपकरणों की सूक्ष्मता के अनुसार कम या ज्यादा शुद्ध देखीं जती है या गणित की नयी विधि के अनुसार ज्यादा शुद्ध गणना हो पाती है।

तत्तद् ग्रन्थेषु यस्मिन् न भवति सुमहत्तारतम्यं ग्रहादे-
दृक् सम्वादात् सतथ्यो बहुतरतमतः कथ्यते ऽसावतथ्यः।
पूर्वाचार्यैस्तदस्मद् ग्रथनमथि चिरस्थायि दृक् सिद्ध भावा -
दव्यर्थ भव्य सेव्यं भवतु हि भवितो भावि भूतानभिज्ञाः। ८।

पूर्व आचार्यों ने भी कहा है कि नये ग्रन्थों द्वारा साधित ग्रह और उनके देखे गये स्थान में बहुत कम अन्तर हो तो उन ग्रन्थों को उपयुक्त समझा जाता है। किन्तु ज्यादा भेद होने पर उसे बेकार माना जाता है। इस ग्रन्थ द्वारा सिद्ध ग्रह उसी स्थान में दिखायी देते हैं। अतः मेरा विश्वास है विद्वान् इसे परीक्षा कर ग्रहण करेंगे और यहां बहुत काल तक उपयोगी रहेगा।

यदैवदृक् गोचरतां यदेति तदा तदेवाद्रियते हि शास्त्रम्
सद्वासना वार्तिक एवमाह पश्यत् जनानल्प मतीन् नृसिंहः। ९।

(भास्कर विरचित सिद्धान्त शिरोमणि) की 'वासना वार्तिक' नामक टीका में (ज्योतिर्वित्) नृसिंह ने कहा है कि सामान्य लोगों की बुद्धि कम हैं, अतः जो शास्त्र प्रत्यक्ष होता है उसी की संसार में प्रतिष्ठा होती है।

शास्त्रे कृते यदि जगद् व्यवहार हेतौ
गम्भीरता भवति तन्निखिल प्रवृत्तिः।
न स्यादतोऽत्र गणिते सुगमाभिधेये
शब्दस्य पाटव मनादरणीय मेव। १०।

यदि लोक व्यवहार के लिये शास्त्र लिखना है तो उसमें शब्द और अर्थ की) गम्भीरता होने से लोगों की रुचि नहीं होगी। अतः उसमें शब्द प्रयोग की कुशलता के बदले गणित का सरल वर्णन जरूरी है।

स्कन्ध त्रयस्य मध्ये गणित स्कन्धो विचित्र एवादौ।
होरा जातक वेदीयमृते कृत्येषु संशेते। ११।

गणित, फलित और मुहूर्त-इन तीन स्कन्धों में ज्योतिष शास्त्र विभक्त है। इसमें गणित का स्थान प्रथम है, क्योंकि इसके बिना फलित और मुहूर्त के काम में सन्देह होता है।

श्री भास्करोक्त पाटी विमलास्ते तन्मयापि सा नोक्ता
ग्रह गणितारम्भोयं भूयाद् भव्याय भूतानाम्। १२।

ग्राहक के विपरीत दिशा में ग्राह्य शर होने के कारण ग्रास और शर की दिशा अलग होती है। (चन्द्र ग्रहण में)

ग्राहकस्यैव चन्द्रस्य स्फुटेषुर्यत् स्वदिग् गतः
तद् ग्रास बाणयोः सिद्धं दिक् साम्यं सूर्य पर्वणि। १८४।

सूर्य ग्रहण में ग्राहक चन्द्र का शर ग्राहक दिशा में रहता है। अतः ग्रास और शर एक ही राशि में होते हैं।

चन्द्रस्यैव यतः सिद्धं वलनं ग्रहण द्वये
तस्माद्ग्राह्यस्य चन्द्रस्य स्पर्शे तत् स्यात् स्वदिग् गतम्। १८५।

दोनों ग्रहणों में चन्द्र का ही वलन होता है। अतः चन्द्र ग्रहण में चन्द्र के स्पर्श के समय स्पष्ट वलन को पूर्व दिशा के चिह्न से अपनी दिशा में

व्यस्त दिङ् मोक्ष काले स्याद् ग्राह्यकस्य रवि ग्रहे
मोक्ष कालें निजाशास्थं स्पर्शे तद् विपरीत गम्। १८६।

तथा मोक्ष काल में पश्चिम चिह्न से विपरीत दिशा में देंगे। सूर्य ग्रहण में पूर्व दिशा में मोक्ष होने के कारण मोक्ष समय में पूर्व चिह्न से अपनी दिशा में स्पष्ट वलन दिया जायेगा। तथा स्पर्श समय में पश्चिम चिह्न से उल्टी दिशा में दिया जायेगा।

उदयेऽस्तमये देशेऽव्यक्षे प्रायिक दिङ्मुखम्
बिम्बं स्यादन्यदेशेऽस्मा दक्षजं वलनं भवेत्। १८७।

निरक्ष प्रदेश (विषुववृत्त स्थान) में उदय, अस्त और मध्याह्न समय में ग्रह बिम्ब अपने वास्तविक दिशा में ही होता है। अन्य स्थानों में अक्ष वलन होता है।

ध्रुवा भिमुख विभ्रान्ते स्तदुन्नत्यनुसारतः
प्राक् चिह्नं बिम्बगं खार्द्धे यत्तत् पूर्व कपाल के। १८८।

ग्रह बिम्ब ध्रुव की दिशा में भ्रमण करने के कारण ध्रुव की उन्नति (अर्थात् अक्षांश) के अनुसार आकाश के मध्य स्थल में बिम्ब का पूर्व चिह्न पूर्व कपाल में रहता है।

भवेदुदन्मुखं प्रत्यक् कपाले दक्षिणामुखम्
तद् भेदादायनं दृश्यं वलनञ्च पृथग् विधम्। १८९।

और उत्तर की तरफ झुकता है। पश्चिम कपाल में यह दक्षिण की तरफ झुकता है। आक्ष वलन के कारण बिम्ब की दिशा में अन्तर दीखने के कारण दृक् सिद्ध आयन वलन भिन्न प्रकार का होता है।

सिद्धान्त शिरोमणौ–त्रिज्या वर्गादयन वलनज्या कृतिं प्रोज्झ्यमूलं
यष्टिर्यष्ट्याद्युचर विशिखस्ताड़िता स्त्रिज्ययाप्तः
यद्वा राशित्रय युत खगद्युज्यकाघ्नस्त्रिमौर्व्या
भक्तस्पष्टो भवति नियतं क्रान्ति संस्कार योग्यः । इति । १९० ।

त्रिज्यावर्ग से अयन वलन ज्या का वर्ग घटाकर उसका वर्गमूल निकाले । इसको यष्टि कहा जाता है । ग्रह (चन्द्र) के शर को इस यष्टि से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर क्रान्ति संस्कार के लिये उपयोगी शर आता है । अथवा ग्रह में ३ राशि (९०°) जोड़कर उसकी भुज ज्या निकालें । उसको पुनः शर से गुणा कर त्रिज्यां से भाग देने से भी क्रान्ति उपयोगी शर आता है ।

इतियद् भास्कर प्राहः सूक्ष्म बाणस्य तानवम्
युक्ति युक्तं न तद् तस्मात् विहितायन दृष् क्रियः । १९१ ।

इस श्लोक में भास्कराचार्य ने सूक्ष्म शर (स्फुट ध्रुव प्रोतवृतोय) का कम मान (कदम्ब प्रोत वृत्तीय शर से) दिखाया है । वह युक्ति युक्त नहीं हो सकता । क्योंकि आयन और दृक् कर्म संस्कृत

ध्रुव सूत्र समं खेटो भवेद् भग्रह योगयोः ।

तद् दृक् कर्माद् भवाल्लिप्ताधनार्णा रूया भुजामता । १९२ ।

ग्रह, नक्षत्र और ग्रह योग ध्रुवं प्रोत वृत्त में होता है । अतः दृक् कर्म के अनुसार जितनी कला जोड़कर या घटाकर क्रान्ति वृत्त में होता है, उसे भुज कहते हैं ।

कदम्बाभिमुखे बाणः कोटि तद्वर्ण युक् पदम्
ध्रुवोन्मुख स्फुटेषुः स्यात् कर्ण वान्मयतो महान् । १९३ ।

कदम्ब प्रोतीय मध्यशर, और कोटि इन दोनों का वर्ग जोड़कर उसका मूल लेने से कर्ण होगा । यही ध्रुव की दिशा में स्फुट शर होगा । यह कर्ण कोटि भी शर से बडा होता है ।

मास षट्क मिता रात्रि मेंरौया तत्र खेचराः
चन्द्राद्या उदयं चास्तं यान्त्युदक् क्रान्ति भागकैः । १९४ ।

मेरू प्रदेश में ६ मास तक रात्रि होती है । (जब सूर्य सायन तुला से आरम्भ ६ राशियों में होतो उत्तर मेरु में रात्रि) चन्द्र आदि ग्रह अपनी उत्तर क्रान्ति रहने तक वहां उदय और अस्त होते हैं ।

सूर्याग्रपश्चात्ते राशिद्वयान्त वर्त्तिनायदि
तदोदयास्त मययो विचारः कर्त्तु मिष्यते । १९५ ।

ये ग्रह सूर्य से पूर्व या पश्चिम २ राशि के भीतर हैं तब उनका उदय और अस्त का विचार किया जायेगा ।

कालांशा ये निगदिता ग्रहाणा मुदयास्तजाः
तत्संग गृह्यतामत्र सौम्य क्रान्त्यन्तरं रवेः । १९६ ।

ग्रहों का जो उदय और अस्त कालांश कहा गया है,ग्रह और रवि का उत्तर क्रान्ति का अन्तर उतना अंश रहने पर उनका उदय अस्त आरम्भ होगा ।

उदग् देशान्तरर्द्धिः स्याद यथा व्यक्षातथापम
याम्येनतः प्रायशोऽस्मात् सौम्य श्रृंगोन्नतिर्विधो । १९७ ।

निरक्ष देश से उत्तर अक्षांश जैसे जैसे बढ़ेगा, क्रान्ति वृत्त दक्षिण में चन्द्र दृङ् मण्डल से उतना ही नत रहेगा । इस कारण से चन्द्र की उत्तर श्रृंगोन्नति होती है ।

रवीन्दु मार्गयोर्भूरिर्विप्रकर्षेऽपि तद् दृशोः ।
संगतः स्यान्महापाते क्रान्ति साम्यात् पुरोदितात् । १९८ ।

वैधृति और व्यतीपात को महापात कहा जाता है। सूर्य और चन्द्र की कक्षा में बहुत अन्तर होने पर भी दोनों की क्रान्ति समान होने से इनकी किरणों के मिलन के कारण महापात होता है ।

यदेक सृज मेदिन्या गोल गर्भाद् विनिः सृताम् ।
सूत्रं चन्द्रादिशन्यस्त ग्रहाणामप वृत्तभित् । १९९ ।

पृथ्वी के केन्द्र से चन्द्र आदि शनि पर्यन्त ग्रहों के क्रान्ति वृत्त को भेदकर जो सरल रेखा जाती है ।

उपकारो मया दृष्टो भगणाजगतो महान्
यत् सूर्यात् सर्व ऋतवो बिवृद्धिः स्थिर जग् मुषाम् । २०० ।

उसे भगणात्मक सूत्र कहते हैं । भगण से ही ग्रह गणित आरम्भ होता है । अतः इस सूत्र से संसार का बहुत उपकार होता है । सूर्य से सभी ऋतुएं होती है । स्थावर जंगम की वृद्धि होती है ।

भवत्यपरिमेयाश्च तमोहत्यादयोगुणाः
तथैव रजनी भर्तु राह्लादाद्या अनेकशः । २०१ ।

अन्धकार भी दुर होता है-इस प्रकार सूर्य के अनेक गुण हैं । इसी प्रकार चन्द्र में भी आह्लाद आदि अनेक गुण हैं ।

चन्द्रार्का लोक नाल्लोके धृष्यता धृष्यते शितुः
जनैरन्गम्यते कार्यात् कारणावगति र्यतः । २०२ ।

कार्य से कारण का ज्ञान होता है। लोग इसी प्रकार सूर्य और चन्द्र को देखकर स्रष्टा की सहनीयता और असहनीयता गुणों की तुलना करते हैं ।

विविधग्रह भुक्तीनां साक्षात्कारात् शरीरिणाम्
शुभाशुभानिकर्माणि ज्ञायन्ते प्राक् कृतान्यपि । २०३ ।

विविध ग्रहों की अनेक प्रकार की गति देख कर शरीरधारियों के पूर्व जन्म में किये हुए शुभ अशुभ कर्मों का ज्ञान होता है ।

तथा तद् बिम्बमानानां कक्षाणां योजनानि च ।
तत्तद् विक्षेपतो भूमेः स्थिरत्वं चानुमानतः । २०४ ।

(ग्रहगति से) ग्रह कक्षा योजन और ग्रह बिम्ब योजन भी ज्ञात होता है । ग्रहों के शर के से पृथ्वी स्थिरता का भी अनुमान होता है ।

भचक्रालोकतो लोक स्रष्टु लोको त्तराकृतिः
प्रतीयतेऽन्धतमसं ततोऽव तमसो भवेत् । २०५ ।

भचक्र से सृष्टि कर्ता का असाधारण कार्य का अनुमान होता है । उससे अन्धकार का गाढ़ा पन कुछ कम हो जाता है । (भचक्र का भी कुछ प्रकाश होता है ।)

पथिकानां मतिमतां प्रथमं याति दिग् भ्रमः
इत्यादयो बहुविध उपकारा भवन्त्यतः । २०६ ।

भचक्र में नक्षत्र स्थिति से पथिकों (विशेषतः नाविकों) का दिग् भ्रम नहीं होता है । इस प्रकार भचक्र से अनेक उपकार होते हैं ।

तपोवर्षा ततः शीतं कालस्येति गुणास्त्रयः
ततद्वैविध्यतो लोके षड् भवन्त्यृतवः खलु । २०७ ।

ग्रीष्म, वर्षा और शीत-काल के ये तीन प्रधान गुण है । प्रत्येक के दो दो भेद होने से ६ ऋतुएं होती हैं ।

प्रायशो भारते वर्षे तेषां सम्पूर्ण भुक्तयः
भवन्ति भूमि भेदभ्य उत्कटाः केऽप्यनुत्कटाः । २०८ ।

भारत वर्ष में सभी ६ ऋतुओं का भोग प्रायः पूर्ण मात्रा में होता है । भूमि (स्थान) भेद से इन ऋतुओं का फल कहीं अति उत्कट कहीं अति कम होता है ।

तपस्य प्राग् दलं सौख्याद् वसन्तो ह्य परं दलम्
ग्रीष्म स्यादथ वर्षाणां तत् प्रावृट् शरदौमते । २०९ ।

ग्रीष्म का प्रथमार्द्ध वसन्त सुखकर होता है । द्वितीयार्द्ध गर्म होता है । वर्षा काल का प्रथमार्द्ध वर्षा तथा शेषार्द्ध शरत् होता है ।

हेमन्तः शिशिरः शीत प्राक् पश्चिम दले इति ।
सूर्य क्रान्ति वशात्तेस्यु र्देश भेदात् पृथग् विधाः । २१० ।

शीत का पूर्वार्द्ध हेमन्त, परार्द्ध शिशिर । देश भेद (अक्षांश) तथा सूर्य क्रान्ति

भेद से अलग अलग ऋतुयें होती हैं ।

तिरश्चिनाः करायत्र पतन्त्यर्कस्य भूतले
नाप्नोति तत्तथा तापं तत्र शीतं बलोत्तरम् । २११ ।

पृथ्वी के ऊपर सूर्य किरण तिरछे पड़ने से उष्णता अधिक नहीं होने के कारण शीत बढ़ता जाता है ।

पतन्त्यजुतया यत्र तत्र तापातिरेकतः
तत्रत्यानां तपर्तुः स्याद्रवि सम्मुख वृत्ति जात् । २१२ ।

जहां पर सूर्य किरण सरल (लम्ब रूप) पड़े वहां ताप अधिक होने के कारण ग्रीष्म ऋतु होती है ।

तीक्ष्णैः सूर्यांशुभि सिन्धो र्लघुतोयं समुत्थितम्
पतत्याकर्षणाद् भूमौ तत्तपान्ते घनागमः । २१३ ।

ग्रीष्म में सूर्य की सीधी किरण समुद्र में पड़ने से उसका पानी गर्म होने से वाष्प बनकर ऊपर उठता है । पुनः भूमि के आकर्षण से ऊपर ठण्डा होकर आकाश से पृथ्वी पर पड़ता है । अतः ग्रीष्म समाप्त होने पर वर्षा का आरम्भ होता है ।

निरक्ष देशतोऽशाना मक्षाणां यावदष्टकम्
हेमन्त शिशिरौ नस्तो ग्रीष्म वर्षातिरेकतः । २१४ ।

निरक्षदेश से आठ अंश तक (भारत में कुमारी अन्तरीप का निकटवर्ती स्थान अत्यन्त गर्म होने के कारण वहां हेमन्त और शिशिर नहीं होता तथा ग्रीष्म और वर्षा अधिक होती है ।

प्रावृड्न्ते शरत्कालस्त पादो स्यात् वसन्तकः
एतयोरन्तरे किंचित् शीत देशे जलाधिके । २१५ ।

वर्षा समाप्त होने पर शरत् काल होता है । ग्रीष्म के आरम्भ में वसन्त होता है । शरत् और वसन्त के बीच में अधिक जल (वर्षा) वाले स्थान में सामान्य शीत होता है ।

पौष माघ द्वयं शीतं द्वितीयेऽक्ष लवाष्टके
दशस्वेन्येषु मासेषु वसन्तादि चतुष्टयम् । २१६ ।

अक्षांश ८ से १६ तक पौष और माघ दो मास शीत होता है तथा बाकी दस मास में वसन्त आदि चार ऋतुयें ही होती है ।

तृतीयेंऽशाष्टके शीतं स्यान्मार्गादि चतुष्टयम्
चैत्राद्येषु वसन्ताद्या श्चात्वारोऽत्रैवषट् समाः । २१७ ।

अक्षांश १६ से २४ के बीच में स्थित भारत में मार्गशीर्ष से आरम्भकर चार

मास तक शीत होता है तथा चैत्र आदि आठ मासों में वसन्त आदि चार ऋतुयें होती हैं ।

चतुर्विं शति रंशानामियं स्यादुष्णमण्डलम्
इतः षोड़ शकं प्रोक्तं सममण्डल नामकम् । २१८ ।

२४ अंश अक्षांश तक उष्ण मण्डल होता है । २४ अंश के स्थान में सभी ६ ऋतुएं २-२ मास की होती हैं । २४ से ४० अंक्षांश तक का स्थान सममण्डल कहा जाता है ।

चतुर्थेऽशाष्ट के व्यक्षाद् भार्द्ध मुर्जादि शीतलम्
माधवा द्युष्णमत्रैव वसन्तादि चतुष्टयम् । २१९ ।

२४ से ३२ अक्षांश तक कार्तिक आदि ६ मास तक शीत होता है । वहां वैशाख आदि ६ मास उष्ण होता है तथा उसीमे वसन्त आदि ऋतुयें होती हैं ।

उषाद्यं शीतलं प्रोक्तम् पञ्चमेंऽशाष्टकेऽष्टकम्
वसन्तादि चतुष्टं स्यात्तत्र ज्येष्ठ चतुष्टये । २२० ।

अक्षांश ३२ से ४० के बीच के स्थानों में आश्विन आदि ८ मास शीत होता है। ज्येष्ठ आदि ४ मासों में वसन्त आदि ४ ऋतुएं होती हैं ।

इतः केन्द्रातमक्षांशाः पञ्चाशच्छीतमण्डलम्
निरक्षादष्ट के षष्ठे भागानां भाद्रतो दश । २२१ ।

अक्षांश ४० से ५० तक शीतमण्डल होता है । अक्षांश ४० से ४८ तक भाद्र से दस -

मासाः शीताः शुचिद्वन्द्वे वसन्तादृतवोऽल्पकाः ।
इत्युक्तः षड् ऋतु स्थान मष्टा म्भो धि (४८) लवावधि । २२२ ।

मास तक शीत होता है तथा आषाढ़ और श्रावण मासों में बहुत कम समय के लिए वसन्त आदि ऋतु होती हैं । इस प्रकार निरक्ष से ८-८ अंश उत्तर अक्षांश के ६ ऋतुस्थानों का वर्णन हुआ ।

आसु मेरु ततो द्व्यब्धि (४२) भागस्थं केवलं हिमम्
एवं देवे सुरांशे तु तुल्याद्याः स्युरजादिवत् । २२३ ।

अक्षांश ४८ से मेरु तक ४२° अक्षांश क्षेत्र बर्फ से ढंका रहता है । इस प्रकार उत्तरार्द्ध की ऋतुयें हुयीं । दक्षिण गोलार्द्ध में तुला आदि ६ राशियों में उत्तर गोलार्द्ध के मेष आदि ६ राशियों के सूर्य के समान ऋतु होती हैं ।

अत्र राधादयोमासा संस्कृतस्यायनांशकैः ।
भानेर्मेष प्रवेशादेः स्वीकार्य ऋतु भुक्तये । २२४ ।

सायन रवि के मेष प्रवेश से वैशाख आदि १२ मास ऋतु भाग के लिये ग्रहण

कना चाहिये ।

वसन्त कालेऽवनिभृद् वनीनां वानैश्छदैर्वितइलातलेऽ लम् ।
वंशद्रुमान्यौऽन्य विघट्टनोत्थ वह्निर्विसर्पन मप्यवानम् । २२५ ।

वसन्त में पर्वत और जंगल में बहुत सूखे पत्ते गिरने से वन भूमि ढंक जाती है । बांस में परस्पर रगड़ होने से आग निकाली है जिससे सूखे पत्रों में आग लगती है । और पूरा जंगल जल जाता है ।

दन्दह्यतोऽस्माद् वहलोऽति घूमों व्योमोदरं व्याप्य विशेषदूरम् ।
तद् गत्य भौमा न्मरुतो लघुत्वा तिष्ठत्यवाप्य स्वसमं तमभ्रे । २२६ ।

इससे अत्यन्त घना काला धुंआ पृथ्वी की गर्म हल्की हवा के दवाव से ऊपर उठ जाता है । यही धुंआ की परत आकाश को ढंक कर रखती है । तथा वायु के जोर से स्वयं आकाश में स्थित रहता है ।

चण्डांशु सन्तप्त धरोष्मणाब्धे रुत्थाय वाष्पाणि घनानि घूमैः
पृक्तानि मेघाः प्रभवन्ति चेत्थं ज्योति र्मरुद्धूमक सन्निपातात् । २२७ ।

ग्रीष्म काल में प्रखर सूर्य की किरण से जमीन, गर्म होने से समुद्र का जल वाष्प होकर ऊपर उठता है । और पूर्व वर्णित धूम से मिलकर गोला बनाता है । इस तरह घूम, ज्योति, पानी और हवा से मेघ होता है ।

वस्त्रैरवाभ्रै र्द्युमणिः कराभैर्वेतण्ड शुण्डासदृशैः पयोधेः
उद् धृत्य वारीणि धनेषु तेषु संरुया पयेत्वे त्वसिता घनत्वात् । २२८ ।

जिस प्रकार अपने वस्त्र में या हाथी अपने सूंढ़ से पानी खींचकर जमा करता है । उसी प्रकार सूर्य भी अपनी किरणों से समुद्र का पानी उठाकर उसे मेघ से जोड़ देता है । इससे मेघ भारी और घना होकर काला दीखता है ।

भारातिरेकात् गुरुत्रोऽम्बुधारा वर्षान्ति ते भूरि भुवाभिकृष्टाः
क्रोशांध्रितः क्रोशदलावधिस्था भूपृष्ठतो नत्वति दूर संस्था । २२९ ।

पृथ्वी की सतह से १/४ से १/२ कोस दूरी तक स्थित मेघ बहुत भारी हो जाने से पृथ्वी द्वारा उत्कृष्ट होकर पानी के रूप में बरसते हैं । पृथ्वी से मेघ की दूरी अधिक नहीं है ।

दैवेन दृक् काल सखेन धातृ गच्छानि याम्येन जनोत्करस्य ।
स्याद् वृष्टि रत्र ध्वनि विद्युताद्यं ज्ञेयं श्रुतेभ्यो मिहिरादिजेभ्या । २३० ।

दैव (भाग्य) विधाता की इच्छा से नियन्त्रित है तथा वह दिक् और काल का सखा या मित्र है । यही दैव जल समूह से वर्षा कराता है । मेघ, गर्जन, विद्युत आदि के बारे में वराह मिहिर ने अपने शास्त्र में लिखा है । इसकी चर्चा यहां नहीं की जाती है ।

सूर्योष्मणाति लघवः परमाणवोऽपा
मूर्ध्वं ब्रजन्ति गुरवोलवणस्यतेन
तेनाभिवृष्टि सलिलं मधुरं महाब्धेः सिद्धं
पुनः कुतुकतो गणितं ब्रुतेऽल्पम्। २३१।

महासागर में लवण जल है। सूर्य ताप से जल के अत्यन्त छोटे अणु ऊपर ऊठ जाते हैं पर लवण के अणु नहीं उठते। अतः वर्षा का पानी मीठा होता है। अब मनोरञ्जन के लिए कुछ पाटीगणित कहता हूँ।

घनः समांक त्रिनयस्य घातस्तदीय मूलानयनाय सूत्रम्।
पथांकं पंक्ते श्चर ये निधाय विन्दुं ततो वाम गते चतुर्थे। २३२।

तीन समान अंकों के गुणफल को धन कहा जाता है। इस घनांक का मूल निकालने के लिए यह सूत्र कहा जा रहा है। घन संख्या के दाहिने अन्तिम अंक पर विन्दु देकर उससे बायीं तरफ चतुर्थ अंक पर-

तत्तचतुर्थे क्रमतश्चदत्वा सविन्दु शिष्टां कितएव यस्य
यातुं घनो युज्यत एतमकं लब्धं न्यसेत्तद् घन वर्जितायः। २३३।

बिन्दु देकर बायीं तरफ प्रति चतुर्थ अंक पर उसी प्रकार विन्दु देते जायं। बायीं छोर से दाहिनी तरफ बिन्दु वाले अंक तक जो संख्या होगी, उससे जितनी अधिक संख्या का धन घट सकता है, घटाते हैं। जिस संख्या का घन घटा उसे लब्धि के रूप में रखते हैं।

पंक्ते स्थिरात्मत्रिविधांक हानि जाताद्वितीयादिक लब्ध सिद्ध्यै।
तस्यास्तलेन्यस्य पृथक् स्थिताया लब्धांक वर्गं त्रिशतघ्नमेकम्। २३४।

दूसरी लब्धि संख्या निकालने के लिये पहले लब्धाक को वर्गकर ३०० से गुणा करके अलग स्थान में रखते हैं।

वामाद् द्वितीयादिसविन्दुकांक स्याधोऽन्य शून्यस्य यथा स्थितः स्यात्
तेनैव तस्या हरणे प्रवृत्ते नवाधिकं चेत्पततीह लब्धम्। २३५।

उससे भाज्य में बायें से दूसरे बिंदु के नीचे के अंक तक जो शेष बचा उसमें भाग देते हैं। फल दूसरी लब्धि के रूप में रखते है।

नवैव कृत्वा तदनेन हारं हत्वा पृथक् पंक्ति तले निधाय
कृतिं द्वितीयादि फलस्य पूर्वं लब्धैर्हतां खाग्नि (३०) गुणांततोऽधः। २२६।

यदि लब्धि ९ से अधिक होती है। तो उसे ९ ही लेते हैं (लब्धि के रूप में) (१) द्वितीय लब्धि से भाजक को गुणा कर उसके नीचे (२) द्वितीय लब्धि का वर्ग से पूर्व लब्ध्यांक को गुणा कर ३० से गुणा कर प्राप्त संख्या को रखें।

घन द्वितीयादि फलस्य चैवं त्रिधांक योगं विजहातु पंक्तेः
साल्पायदि त्र्यंकं युतेः द्वितीय द्येकैक हीनं क्रमशोऽ त्रलब्धम्। २३७।

उसके नीचे (३) दूसरी लब्धि का घन-इन तीन संख्यांओ के योग को भाज्य से घटाने पर यदि बहुत कम शेष आता है। तो दूसरी लब्धि को एक कम कर पुनः इसी प्रकार एक के नीचे एक तीन संख्यायें लिखते हैं।

कृत्वा विधाय त्रिविधांक योगं स्थिरं विशुद्ध्यान्त मथांक पंक्तेः
तेनोज्झिताया पुनरन्य लब्धाः न्येवं फलां का घनमूल संज्ञा। २३८।

इस प्रकार तीन संख्यायें स्थिर होने पर उनका योग भाज्य से घटाते हैं और शेष में अगले बिन्दु तक के अंक मिलाते हैं। अबतक के दो लब्धि अंको को पहली लब्धि मानकर अगला लब्धि अंक पहले की तरह प्राप्त करते हैं और तीन संख्याओं का योग घटाकर तब तक क्रिया करते हैं। जबकि अन्तिम बिन्दु तक भ्राज्य के अंक समाप्त न हों। यही लब्धि घनमूल होता है।

पतन्ति पंक्त्युर्ध्व रविन्दु तुल्या स्तेषां घनः पूर्ववदंक पंक्तिः।
सा चेत्सहस्राल्पतयास्थिता स्यात् सकृद् भवेत्तद् घनमूलमेकम्। २३९।

घन अंक संख्या के ऊपर जितने विन्दु होते हैं। घनमूल में उतने ही अंक होते हैं। घन १००० से कम होने से उसका एक ही अंक का घनमूल होता है तथा एक ही बार में निकलता है, बिना अन्य क्रियाओं के।

भास्करपोष्यां घनकरण सूत्र वृत्तम्--
समत्रिघातश्च घनः प्रदिष्टः स्थाप्योघनोऽन्तस्य ततोऽन्त्यवर्गः
आदि त्रिनिघ्नस्तत आदि वर्गस्त्वन्त्या हताश्चादि घनश्च सर्वे। २४०।

तीन समान अंक (संख्या) के गुणनफल को उस संख्या का घन कहा जाता है। संख्या को रखकर उसके अन्तिम अंक के घन को रखेंगे। शेष अंक के वर्ग को आदि अंक और तीन द्वारा गुणा कर और तब आदि संख्या के वर्ग को अन्त्यं अंक और तब आदि अंक के घन को

स्थानान्तरत्वेन युतः घनः स्यात्प्रकल्प्यतत् खण्डयुगं ततोऽन्त्यम्।
एवं मुहुर्वर्ग घन प्रसिद्धा वाद्यंकतो वा विधिरेश्च कार्यः। २४१।

एक-एक स्थान हटाकार रखेंगे। अन्त में सबको जोड़ देने पर पूरी संख्या का घन आ जायेगा।

संख्या को दो खण्डों में बांट कर भी अन्तिम खण्ड से इस प्रकार कार्य कर बाकी खण्ड से भी कार्य करेंगे। इससे पूरी संख्या का घन आ जायेगा।

खण्डाभ्यतां हतो राशिस्त्रिघ्नः खण्डघनैक्य युक्
वर्गमूल घनः स्वघ्नी वर्ग राशि घनोभवेत्। २४२।

संख्या के दो खण्डों को आपस में गुणा कर ३ से गुणा कर उससे संख्या को गुणा करेंगे। उसके दाहिने अन्तिम संख्या का घन तथा बायें आदि संख्या का घन जोड़ने से पूरी संख्या का घन आ जायेगा। किसी वर्ग संख्या का घन

निकालने के लिए वर्गमूल का धन निकालेंगे । और धन का वर्ग निकालेंगे ।

घनमूले करण सूत्रं वृत्तद्वयम् --
आद्यं घनस्थान मथाघने द्वेपुन स्तथान्त्याद् घनतो विशोध्य
घनं पृथक् स्थं पदमस्य कृत्या त्रिघ्ना दातव्यं विजभेत् फलंतु । २४३ ।

धन संख्या को लिखकर दाहिने तरफ के अन्तिम अंक पर घन चिह्न दें । उससे बायीं तरफ के दो अंकों पर अघन चिह्न दें । इसके बाद फिर एक अंक पर घन और उससे बायें दो अंको पर अघन चिह्न दें । पूरी संख्या में घन अघन चिह्न देने पर अन्तिम (बायें तरफ) घन संख्या से जिस अंक का घन घट सकता है उस अंक को अलग लिखेंगे । और घन को घटायेंगे । इसके अंक के वर्ग को ३ से गुणा कर फल से प्रथम भाज्यशेष और उसके बाद के प्रथम अघन अंक से भाग देंगे ।

पंक्त्या न्यसेतत् कृतिमन्त्य निघ्नीं त्रिघ्नों त्यजेत्तत्प्रथमात् फलस्य
घनं तदाद्यात् घनमूलमेवं पंक्तिर्भवेदेव मतः पुनश्च । २४४ ।

फल को प्रथम घनमूल अंक के बाद रखेंगे । फल के वर्ग को पंक्ति में स्थित बाकीअंक से गुणा कर और उसको तीन से गुणा कर भाज्य राशि से घटायेंगे । पुनः जो शेष बचा उससे इस फल के धन को घटायेंगे । इस प्रकार बारबार करने पर उक्त धन संख्या का धन मूल निकलेगा ।

मूलावशेषात् कथयामसिद्धि षष्टयंशकानां पदशेष भाजाम्
पदं घनीकृत्य पदोत्तरांक घनाद्विजह्याद्य इहावशेषः । २४५ ।

सावयव संख्या का धनमूल निकालने के लिए प्रथम अवयव का जितना मूल होता है, उतने का धन घटाने के बाद शेष को घनकर उसके बाद के अंक के धन से घटायेंगे । फल शेष हार होगा ।

स चान्त्यहारो यदि मूल संख्या त्रिंशद् बहुस्तत्र पदावशेषः
षष्ट्याहतोऽन्वेन हरेण भक्तः फलं कलास्तत्पद मल्पकं चेत् । २४६ ।

मूलसंख्या ३० से अधिक होने पर मूल शेष को ६० से गुणा कर अन्त्यहार से भाग देने पर कला (१/६० वें भाग) में फल आयेगा । मूल संख्या ३० से कम होने पर

व्योमोऽनलेभ्य (३०) स्तदिहान्त्यहारोन्मूलावशेषं विरहस्य शेषः
गुण्योऽन्त्य हारान्तु सरूपमूल भक्तात् फैलं स्याद् गुणकाभिधानम् । २४७ ।

अन्त्यहार से मूल अवशेष को घटा कर उसको गुण्य नाम देंगे । अन्त्यहार को मूल में एक जोड़ कर भाग देने से जो लब्धि होगी उसको गुणक कहेंगे ।

तत् क्षुण गुणे भ्योऽन्यहरेण भक्तः फलोज्झितोऽ न्यस्फुट हार उक्तः ।
मूलावशेषो वियदंग (६०) निघ्नो लिप्तामयः स्यात् स्फुटहार भक्तः । २४८ ।

गुण्य और गुणक को गुणा उसको अन्त्य हार से भाग देंगे। फल को पुनः अन्त्यहार से घटाने से वह अन्त्य स्फुट हार होगा। मूल अवशेष को ६० से गुणा कर इस स्फुट हार से हरने पर यह लिप्ता होगा।

पुरोदितं वर्गपदं मयात्र बहूपयोगोद्धन मूल मुक्तम्
दिग् दर्शिता साधन वासनाया गोलज्ञ गम्यानुदिता खिलायत। २४९।

वर्गमूल निकालने की विधि में पहले कह चुका हूँ। गणित में अति आवश्यक होने के कारण घनमूल के बारे में भी मैने कहा। गणित साधन विधि सामान्य प्रकार से कही गयी है। बाकी विधियां गोलज्ञ गणक स्वयं जान सकते हैं

सिद्धान्तशिरोमणौ-इषदोषदिह मध्य गमादौ ग्रन्थ गौरवभयेन मयोक्ता
वासनामति मतासक्त लोह्या गोल बोध इदमेद फलंहि। इति। २५०।

सिद्धान्त शिरोमणि में लिखा है- ग्रन्थ बढ़ने के भय से मैं पहले थोड़ा थोड़ा तर्क देकर आगे बढ़ जाता हूँ। बुद्धिमान् उसी से बाकीयुक्ति भी समझ लेंगे। गोल ज्ञान होने से ही यह फल होता है।

हृत्प्राणेन्द्रिय रोध शोधित समक्रोध स्मरादिद्विषः
पञ्चक्लेष मुचोन यत्क्षणमपि द्रष्टुंक्षमा योगिनः
तद्यः स्वं परमं पदं स्वचरण प्रेमाध्व पान्थैर्जनैः
सु प्रापं विद धाति नः स भगवानव्याद् भव व्यापदः। २५१।

मन, प्राण और इन्द्रियों पर नियन्त्रण के लिये योगी गण मोह, क्रोध तथा काम आदि शत्रुओं को जीतते हैं। इससे वे पांच क्लेशों विद्या, अस्मिता, अनुराग, द्वेष और अभि निवेश से मुक्त हो जाते है। इसके बाद भी योगी गण उस परमपद को एक क्षण के लिये भी नहीं देख पाते। (अधिक समय के लिए देखना दूर की बात है) उसी परम पद को जो अपने पाद सेवकों को सहज दिला देते हैं। वे महाप्रभु श्री जगन्नाथ हमें विपद् से मुक्त करें।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्रशेखर कृतौ, गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
सद् वासनोऽतिनख (२१) संख्यः इतः प्रकाशः। २५२।

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राज परिवार में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा बालकों की शिक्षा के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में सद् वासना (तर्क युक्त व्याख्या) सहित २१ वां प्रकाश समाप्त हुआ।

द्वाविंश प्रकाशः

कालाधिकार

संवत्सरादि वर्णनम्

कलान्मानमकाल दण्ड निलयं कालाम्बु जन्म द्युतिं
कालो केलि कला जरार्च्चित पदं काला चलालं कृतिम्
क्रुध्यत् कालिय कालिकुञ्जनकृतं काकोदरी काकुभिः
कृष्णं कृप्त कृपं करोभ्यभिवदन् कालाधिकार क्रमम् । १ ।

भगवान् कृष्ण काल के स्वरूप हैं और यम का काल दण्ड उनमें लीन (लुप्त) हो जाता है । उनकी नील कमल जैसी शोभा है । उनके पदों की अर्चना पार्वती की क्रीड़ा के चनद्र रूप शिव के द्वारा की गयी है । वह नीलाचल पर जगन्नाथ के रूप में स्थित है । वह नीलाचल पर जगन्नाथ के रूप में स्थित है । उन्होंने क्रूर कालिय का दमन किया तथा नाग स्त्रियों का रोना सुनकर उन पर दया की । उन्हीं प्रभु को प्रणाम कर मै कालाधिकार लिखता हूँ ।

कालास्तु द्विविधो नित्यो जन्यश्चेति प्रकीर्तिनः
नित्यः श्री परमेशोऽत्र काल कालापराह्वयः । २ ।

काल के दो प्रकार हैं-नित्य तथा जन्य । स्वयं परमेश्वर नित्य काल का रूप हैं । वह काल की गणना करते हैं । अतः उनका अन्य नाम काल है ।

विशेषं कलनात् कालो जन्यः स तु तथेश्वरः
तत् स्मृति सर्वकार्येषु कर्तव्या मंगलार्थिभिः । ३ ।

जगत् का हिसाब करने के कारण वही पर परमेश्वर जन्य काल भी है । अतः कल्याण चाहने वाले लोग सभी कामों में परमेश्वर का स्मरण करते हैं ।

कौर्म्मे - अनादि के भगवान् कालोऽनन्तोऽक्षरः परः ।
सर्वाङ्गत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वात् महेश्वरः । ४ ।

कूर्म पुराण में कहा है- भगवान अनादि और अनन्त काल रूप हैं । उनका क्षय नहीं होता । वह सभी के रोम रोम में तथा उसके बाहर भी हैं वह महेश्वर, सर्वगत, स्वतन्त्र तथा सभी की आत्मा है ।

पर ब्रह्म च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः । इति । ५ ।

काल ही स्वयं परम ब्रह्म, वासुदेव और शंकर है । काल द्वारा ही संसार उत्पन्न तथा पीछे नष्ट हो जाता है । (उद्धरण समाप्त)

स्मृतिश्च-सर्वेषु कालेषु समस्त देशेषु तथेश्वरे श्वरश्च ।
सर्वैः स्वरूपै भगवान नादि र्ममास्तु मांगल्य वृद्धये हरिः । ६ ।

स्मृति में है- हर समय-सभी देशों में और सभी कामों में भगवान ही स्वामी रूप में है। वह सभी के रूपों में और अनादि है। वे हरि मेरे कल्याण वृद्धि करें।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञ क्रियादिषु
न्यूनं सम्पूर्णतां याति स द्यो वन्दे तमच्युतम्। ७। इति।

तपस्या, यज्ञ आदि सभी कार्यों की कमी यात्रुटि जिसके नाम स्मरण या गान से उसी समय पूर्ण हो जाती है। उसी अच्युत की मैं वन्दना करता हूँ। (उद्धरण समाप्त)

निर्गुणत्वात् परेशस्य तत्स्मृति र्घटते कथम्।
इति चे दुच्यते तस्य वाशिष्ठोक्त्या शरीरिता। ८।

यदि परमेश निर्गुण हैं तो उनका स्मरण किस प्रकार हो सकता है। इस प्रश्न के उत्तर में योग वाशिष्ट रामायण में भगवान के शरीर धारण करने के विषय में जो कहा है वह उद्धधृत किया जा रहा है।

तथा हि वाशिष्ठ रामायणे-
नित्योजन्यश्च कालौ द्वौ तयोराद्य परेश्वरः
सोऽवाङ्मनस गम्योऽपिदेही भक्तानुकम्पया। ९।

वाशिष्ठ रामायण में इस प्रकार है-नित्य और जन्य- दो प्रकार का काल है। इनमें परमेश्वर ही प्रथम और नित्यकाल है। वाणी और मन द्वारा उनकी कल्पना नहीं की जसकती, पर भक्तों पर कृपा करने के लिए वे शरीर धारण करते हैं।

खड्ग पाशधरः श्रीमान् कुण्डली कवचान्वितः
ऋतु षटक् मयोदार वक्त्र् षट्क समन्वितः। १०।

भगवान् खड्ग और पाश धरने वाले, कवच तथा कुण्डल से सज्जित हैं। वह ६ ऋतुओं के रूप में ६ मुख धारण किये हुए हैं।

मासो द्वादश कोद्दाम भुज द्वादश कोद् भटः
स्वाकार समया वह्य वृतः किंकर सेनया। इति। ११।

उनकी १२ भुजाओं का पराक्रम १२ मास है। वह अपने ही आकार और रूप वाले सेवकों से सदा सेवित है। (उद्धरण समाप्त)

यद्यप्येतत्काल रूपं तथाप्यस्य रमापतेः
धृतनानातनोर्भक्त्यै कार्यास्वेष्टा कृति स्मृतिः। १२।

लक्ष्मीपति इस प्रकार काल रूप होने पर भी भक्तों के लिये अनेक प्रकार का रूप धारण करते हैं। अतः भक्त अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी रूप में उनका स्मरण करते हैं।

नित्यात् जन्यस्य कालस्य समुत्पत्ति रभूदिति
श्रुति प्रमाण्य मासाद्य प्राह स्वायम्भुवो मनुः । १३ ।

इसी नित्य कालरूप परमेश्वर से जन्य काल भी उत्पन्न हुआ है- यह वेद में कहा है तथा स्वायम्भुव मनु ने भी कहा है ।

तथाहि-कालः काल विभक्तिश्च नक्षत्राणि ग्रहस्तथा
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छान्निमाः प्रजा । इति । १४ ।

ईश्वर रूपी काल ने प्रजा की सृष्टि के लिए काल के विभाग (दिन, मास आदि), नक्षत्र ग्रह तथा इस विश्व की रचना की ।

कालात्मा दिनकृत् प्रोक्ता होरास्कन्धे यतस्ततः
सिद्धान्त गदिता सृष्टिर्न विरोध मिहार्हति । १५ ।

होरा स्कन्ध (वृहज्जातक मे)सूर्य को कालात्मा कहा गया है । इस उक्ति का सिद्धान्त की उक्ति विरोध करती है, ऐसा मानना ठीक नहीं है।

त्रुट् यादि प्रलयान्तेषु जन्यकालेषु वत्सरः
प्रधान भूतोऽवयवो स्वाङ्गैर्युक्तोऽयनादिभिः । १६ ।

सूर्य को कालात्मा मानने से वह स्वयं सृष्टि का कारण है । त्रुटि से लेकर प्रलय तक के जन्य काल में वर्ष प्रधान अवयव है । इसके अवयव हैं-अयन,

सम्यग् वसन्ति यत्रर्त्तु मास पक्षादिनादयः
प्राज्ञैःकाल विशेषोऽसौ संवत्सर इतीरितः । १७ ।

मास पक्ष और दिन आदि । वर्ष रुपी अवयव इन्हीं से बना है, इसका एक नाम संवत्सर भी है ।

अयने येन पूषर्त्त त्रयेणोदग् दिशं तथा ।
दक्षिणां शा तदेवोक्त मयनं सौर मानजम् । १८ ।

सूर्य जिन तीन ऋतुओं (६ मास) में उत्तर दिशा और अन्य तीन ऋतुओं में दक्षिण दिशा में जाता है उसे ही अयन कहते हैं । यह सूर्य की क्रान्ति के अनुसार होता है । (अय् धातु का अर्थ गति है)

इयर्त्य शोक पुष्यादि लिङ्ग साधारणेतरम्
यः सकाल विशेषोऽत्रवसन्तादि ऋतुरुच्यते । १९ ।

जिस समय (दो मास) अशोक वृक्ष पुष्प आदि असाधारण चिह्न धारण करता है । उस को आदि ऋतु वसन्त कहा जाता है ।

मास्यते परिमीयते येन चन्द्रार्द्ध संख्ययौ
सूर्य राशि गतिर्यत्र मास्यतेऽह्नोञ्च यत्रहिं । २० ।

जिस समय को मापा जाय या हिसाब किया जाय उसे मास कहते हैं । चन्द्र

की वृद्धि और क्षय का माप करने वाला चान्द्र मास है। सूर्य की राशि गति का समय मापने वाला सौर मास तथा दिन रात

त्रिंशतानि व्यतीतानि भचक्र भ्रमणानिच
मासः स ऊच्यते चान्द्रः सौरः सावन ऋक्षकः । २१ ।

३० तथा ३० नक्षत्र भ्रमण का माप करने वाला समय क्रमशः सावन और नाक्षत्र मास कहलाता है।

पक्षेते परि गृह्येते देवता पितृकार्ययोः
यौ तौ पक्षौ शुक्ल कृष्णौ चन्द्र वृद्धिक्षयाद् भवौ । २२ ।

चन्द्र की वृद्धि और क्षय के अनुसार शुक्ल और कृष्ण पक्ष होता है। उन दो पक्षों का उपयोग देव और पितृकार्य में होता है।

तनोति यो वर्द्धमानां क्षीयमाणां कलां विधोः
एकां काल विशेषोऽयं तिथि रित्युच्यते बुधैः । २३ ।

बढ़ने वाले या घटने वाले चन्द्र की एक एक कला का जिस समय द्वारा हिसाब होता है उसे तिथि कहते हैं।

इत्थं याम मुहूर्तादि कालांगाना मदेकशः
व्युत्पत्तिर्न मया प्रोक्ता ग्रन्थ विस्तार साध्वसात् । २४ ।

इसी प्रकार याम, मुहूर्त आदि समय के अनेक अंग है। ग्रन्थ का विस्तार बढ़ने के भय से इन सबकी व्युत्पत्ति नहीं कही है।

नवधा कालमानानि चान्द्र मार्क्ष्यं च सावनम्
बार्हस्पत्यं ततः सौरं मानवं पैत्र मेव च । २५ ।

समय का विभाग ९ प्रकार का है- चान्द्र, नाक्षत्र, सावन, बार्हस्पत्य, सौर, मानव, पैत्र, दैव और ब्राह्म।

दैवं ब्राह्म्य मिति प्रोक्तान्यत्र पञ्चभिरादिमैः
व्यवहारो मनुष्याणां मन्वादीनां स्वनामतः । २६ ।

इनमें प्रथम पांच समय मान ही मनुष्य के व्यवहार में आते हैं, बाकी मानव आदि का व्यवहार अपने नाम के अनुसार होता है।

भू गर्भ निः सृतात् सूत्रात् सूर्य मण्डल मध्यगात्
प्राचीं यद्याति शीतांशुश्चान्द्र मानं तदुच्यते । २७ ।

भू केन्द्र से सूर्य केन्द्र तक के सूत्र से पूर्व की तरफ, १२ अंश जितने समय में चन्द्र जाता है, उसको चान्द्र मान (१ तिथि) कहते हैं।

व्यर्केन्दु भगणो मास स्तदर्द्धं पक्ष ईष्यते।
तिथि स्तत् शर रूपांश (१५) स्तदर्द्धं करणं मतम् । २८ ।

चन्द्र से सूर्य का अन्तर एक भगण होने से एक चान्द्र मास होता है। इसके आधे को पक्ष कहते हैं। पक्ष के १/१५ भाग को तिथि तथा तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं।

व्रतोपवास पर्वादि कृत्याकृत्य पितृक्रियाः।
चान्द्र मानेन गृह्यन्ते मास वृद्धिक्षयादयः। २९।

मास की वृद्धि क्षय, व्रत, उपवास, पर्व आदि, कृत्यकाल और अकृत्य काल, तथा पितृक्रिया-सभी चान्द्र मान (तिथि) के अनुसार ही किये जाते हैं।

पर्वान्ते कृत्ति का दीनां योगद्ये कार्तिकादयः
मासाः प्राग् भिर्मता स्त द्यदृक्षस्थ बृहस्पते। ३०।

पूर्णिमान्त में कृत्ति का आदि नक्षत्र के साथ चन्द्र के संयोग के कारण जिस प्रकार कार्तिक आदि मासों का नाम दिया गया है। उसी प्रकार जिस नक्षत्र में रहकर वृहस्पति अमान्त में -

उदयस्तद् भ नामा ब्दाः सूर्य सिद्धान्त सम्मत-
तल्लक्षणान्यति व्याप्ते र्नात्र प्रोक्तानि विस्तरात्। ३१।

उदय होता है, उसी नक्षत्र के अनुसार बार्हस्पत्य वर्ष का नाम होता है ऐसा सूर्य सिद्धान्त का मत है। पर ग्रन्थ विस्तार के भय से इन सभी लक्षणों का वर्णन नहीं किया जा रहा है।

कृत्ति का शब्द वाच्यं यत् कृत्तिका रोहिणी द्वयम्
तत् पर्वान्ताद्वयन्मासो निरुक्त कार्तिको यदि। ३२।

कार्तिक और रोहिणी दोनों को कृत्तिका मानकर इसमें किसी के साथ पूर्णान्त में चन्द्र का योग होने पर यदि उस मास को कार्तिक कहा जाता है,

तदूर्ज मार्ग पर्वान्त भरणी रोहिणी यतौ
अब्दे त्विषोर्जतपत्ति र्भवेत् कार्त्तिक मार्गयोः। ३२।

तो कार्तिक और मार्गशिर पूर्णान्त में क्रमशः भरणी और रोहिणी के साथ योग होने पर उस वर्ष इन मासों को क्रमसः आश्विन और कार्तिक क्यों नहीं कहा जाता है।

तथापि पूर्व चलित व्यवहार व शादिमे
कृत्तिका मार्ग-शीर्षादि नामभिः प्रायिका मताः। ३४।

यह असुविधा होने पर प्राचीन काल से प्रचलित व्यवहार के अनुसार कार्तिक और मार्गशीर्ष आदि मासों की गणना होती है। यह नक्षत्र योग भी प्रायः घटता है।

एकः पश्चाद् भ्रमो भानां नाक्षत्रं दिन मुच्यते
घटिकादिक मायुश्च तन्मानेनैव सिद्ध्यति । ३५ ।

नक्षत्रों के पश्चिम दिशा में एक चक्र पूरा करने में जितना समय लगता है, उसे १ नक्षत्र दिन कहते हैं । घटी, पल आदि इसी मान के अनुसार होते हैं । ब्रह्मा की आयु भी इसी मान से होती है ।

नाक्षत्र मान संसिद्धं मायुः कल्पार्क वासरैः
गुणितं कल्प भदिन माप्तं सौराब्दादि स्फुटं । ३६ ।

नाक्षत्र मान की आयु को कल्प सौर दिन (१५,५२,००,००,०००,००) से गुणा कर कल्प नक्षत्र दिन (१५,८२,२,३७,८,२,८,२८,००००) से भाग देने पर फल स्फुट सौर वर्ष आदि होता है ।

यद्यपि स्याद् भग्रहाणां स्वस्वोदय युगान्तरम्
तत्तत् सावन घस्राख्य मुक्त पूर्वं तथापि हि । ३७ ।

पहले कहा जा चुका है, कि किसी ग्रह या नक्षत्र के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को उस ग्रह या नक्षत्र का सावन दिन कहा जाता है ।

मध्यार्क गति युक् चक्रकलिका संख्यकादिभिः(२१,६५९।८)
सम्मतं सावनं मध्यं ग्रहानयन कर्मणि । ३८ ।

तथापि गणित में मध्यम ग्रह निकालने के लिये रवि की मध्यम गति युक्त २१,६०० कला को ही साधारणतः सावन दिन कहा जाता है जिसका मान (२१,६५९।८) असु है ।

स्फुटसूर्योदय द्वन्द्व विवरं सावनं दिनम्
प्रसिद्धं तेन यज्ञादि सूतकाद्यब्द पादयः । ३९ ।

दो स्फुट सूर्योदय के अन्तर काल को स्फुट सावन दिन कहते हैं और साधारणतः इसी को सावन दिन के रूप में व्यवहार किया जाता है । इसी सावन दिन के अनुसार यज्ञ कार्य, सूतक, कार्य में दिन गणना, वर्षपति और मासाधि पति आदि स्थिर किया जाता है ।

ज्ञेया जैवेन मानेन वत्सराः प्रभवादयः
लुप्त वर्षाधि वर्षाब्द स्वराद्याः संहितोक्तिभिः । ४० ।

बार्हस्पत्य मान से प्रभव आदि संवत्सर, लुप्त वर्ष, अधिवर्ष स्वरशास्त्रोक्त अब्द तथा स्वर आदि माना जाता है । ऐसा वृहत् संहिता में लिखा है ।

एकांश प्राग् गति र्भानोः सौर दिन मितीर्यते
त्रिंशता तद्दिनै र्मासो वर्षं द्वादश भिश्चतैः । ४१ ।

सूर्य जितने समय में एक अंश गति करता है उसे एक सौर दिन कहते है ।

इस प्रकार के ३० सौर दिनों का एक सौर मास होता है । इस प्रकार १२ सौर मासों का एक सौर वर्ष होता है ।

सौर मानेन गृह्यन्ते संक्रमर्त्वयनादयः
देवासुर द्युरजनी युगमन्वन्तरक्षयाः । ४२ ।

सौर मान से संक्रान्ति, अयन और ऋतु आदि का पालन होता है । देवता और असुरों का दिन और रात, युग, मन्वन्तर आदि की समाप्ति भी इसी सौर मान से होती है ।

विवाह व्रत चूड़ादि वेश्मारम्भादयः क्रिया
मासाब्द नियमाः पर्वाण्यपि देशविशेषतः । ४३ ।

विवाह, व्रत, चूड़ा कर्म, गृहारम्भ आदि काम, मास, वर्ष, व्रतादि का पालन, पर्व आदि का पालन किसी किसी देश में सौर मान से भी होता है । (सामान्यतः चान्द्र मान से होता है ऐसा लिखा गया है)

सौर-तुलादिषड़शी (८६) त्यंशैः षड़शीति मुखं दिनम्
तच्चतुष्टय मेवस्यात् द्विस्व भावेषु राशिषु । इति । ४४ ।

सूर्य सिद्धान्त में-तुला आरम्भ से ८६ अंश तक सूर्य रहने पर (अर्थात् ८६ सौर दिनों तक) षड़शीति मुख नामक मास होता है । यह वर्ष में ४ बार होता है और रवि द्विस्वभाव (द्वात्मिक राशि ३,६,९,१२) में रहने पर ही होता है । (उद्धरण समाप्त होता है) ।

धनुषः सप्त विंशोऽश स्त्रयो विंशोऽण्डजस्य च
द्वन्द्व से कोन विंशश्च स्त्रियाः पञ्चदशः स्मृतः । ४५ ।

धनु राशि का २७ अंश, मीन का २३ अंश, मिथुन का १९ अंश तथा कन्या का १५ अंश में

तत्तन्मासेषु सूर्यस्य षड़शीति मुखान्वयात् ।
षड़शीत्याख्यया प्रोक्ता द्वात्मक क्षेत्र संक्रमाः । ४६ ।

उन मासों का सूर्य जाने से और ये स्थान ८६-८६ अंशों के बाद पड़ने से इन (संक्रान्तियों) को षड़शीति मुख कहते हैं । ये सभी द्वात्मिक राशियों में ही होती हैं ।

ओज पादादि चरयोः संक्रमौ विषवाभिधौ
युग्मादि चरये र्याम्य सौम्या यन तयोदितौ । ४७ ।

विषम पद में स्थित दो चर राशियों (मेष और तुला) में रवि की संक्रान्ति को विषुव संक्रान्ति कहते हैं । सम पद में स्थित दो चर राशियों (कर्क और मकर) संक्रान्ति को क्रमशः दक्षिण और उत्तर अयन संक्रान्ति कहा जाता है ।

चर द्वात्मकयो र्मध्ये स्थिर राशि चतुष्टयम् ।
भानो र्विष्णुपदी संज्ञा स्तद् प्रवेशाः प्रकीर्त्तिताः । ४८ ।

चर और द्वात्मिक राशियों के बीच में जो चार राशियां (वृश्चिक, कुम्भ, वृष और सिंह) हैं उनमें रवि के प्रवेश से विष्णुपदी संक्रान्ति होती है ।

पूर्वोक्त क्रम संसिद्धा रवि संक्रान्ति सम्भवः
पुण्य नाड्यस्त्रय स्त्रिंशत् स्वमध्य स्थार्क संक्रमः । ४९ ।

एक राशि का अन्तिम बिन्दु ही दूसरी राशि का आदि बिन्दु है । उस बिन्दु को रवि बिम्ब की परिधि स्पर्श करने से संक्रमण या संक्रान्ति का आरम्भ होता है । रवि बिम्ब का दूसरी तरफ का अन्तिम बिन्दु उस बिन्दु से लगने पर पूरा रवि संक्रमण बिन्दु पार कर जाता है । इसमें ३३ दण्ड (रवि बिम्ब व्यास ३३ कला पार करने का समय) लगता है । अतः यह ३३ दण्ड ही संक्रान्ति का पुण्य काल है ।

ग्राह्या दशसु संक्रान्तिष्वयने दक्षिणेतु ताः
अन्तःस्थ संक्रमाः सौम्यायनेत्वादिस्थ संक्रमाः । ५० ।

दस सक्रान्ति में संक्रान्ति के आरम्भ से ३३ दण्ड ही पुण्य काल हैं । दक्षिणायन संक्रमण में अन्तिम १६/३० दण्ड तथा उत्तरायण संक्रमण में प्रथम आधा (१६/३०)

अति पुण्यतमाःप्रोक्ताः संक्रमासन्न नाड़िकाः
चलना सन्तता यत्र दिवास्नानादिकं तदा । ५१ ।

अत्यन्त पुण्य काल होता है । यह एक राशि से दूसरी राशि में संचार का समय है । संक्रान्ति समय दिन में पड़ने से स्नान दान आदि किया जाता है ।

तन्निशार्धादधश्चोर्द्ध सञ्चारे प्राक् परं ततः
आसन्न द्यु दलं पुण्यं निशीथे चेत्तदा तिथेः । ५२ ।

रात्रि के पूर्वार्द्ध में संक्रान्ति होने से उसके पूर्व दिन के दूसरे अर्द्ध तथा रात्रि के दूसरे अर्ध में संक्रान्ति होने पर अगले दिन के प्रथम अर्द्ध में पुण्यकाल होता है ।

संक्रान्ति काल निष्ठाया यद्दिने महती स्थितिः
तत्र कार्याः क्रियाएष विचारोह्या यनादृते । ५३ ।

ठीक आधी रात को संक्रान्ति पड़ने से इसका अधिक भाग जिस दिन होता है उसी दिन उतने समय पुण्य काल होता है । अतः उसी समय पुण्य क्रिया करनी चाहिये । अयन संक्रान्ति में इस प्रकार का विचार नहीं होता है ।

नक्रौ याम्यायने पूर्वदिनस्यान्त्य दलं मतम् ।
सौम्या यने पर दिन स्यादिमं पुण्यदं दलम् । ५४ ।

याम्य अयन या कर्क संक्रान्ति रात में होने से पूर्व दिन का द्वितीयार्द्ध तथा उत्तरायण (मकर) संक्रान्ति रात में होने से अगले दिन का पूर्वार्द्ध पुण्यकाल होता है।

अहः संक्रमणे पुण्य महः कृत् संम्प्रकीर्तितम्
स्मार्तै स्तथापि संक्रान्ते रासत्ति र्बहुमन्यते । ५५ ।

दिन में संक्रान्ति होने से सारा दिन दिन पुण्य काल होता है । यह स्मार्त मत होने पर भी संक्रमण का निकट वर्ती समय निश्चय बहुत फल दायक है ।

उक्तो विधेरयं कालो निषेधे त्वामिषादिनः
पूर्वास्त्रिंशपरास्त्रिंशद् ग्राह्याः पर्वाक्ष नाड़िकाः । ५६ ।

संक्रान्ति पर्व दिन होने के कारण पूर्वोक्त स्नान, दान, आदि के अतिरिक्त इसमें आमिष भोजन करना मना है । आमिष भोजन का निषेध संक्रान्ति से ३० दण्ड पहले और उसके ३० दण्ड बाद तक, इस प्रकार कुल ६० दण्ड तक है ।

मासान्ताख्य निरंशा ख्यौ मासस्यान्त्यादिमौलवौ
यात्रोद् वाहादि कार्येषु व्याज्या कल्याण मिच्छभिः । ५७ ।

किसी राशि का अन्तिम (३० वां) अंश मासान्त तथा प्रथम अंश निरंश कहा जाता है । इन दो अंशों में रवि रहने से मासान्त तथा निरंश काल होता है । कल्याण चाहने वाले इन दो दिनों में यात्रा विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करते हैं ।

बिम्बान्तर्वर्त्तिनः पुंसः संक्रान्ति समयोनृभिः
त्रुटेः सहस्त्र भागत्वादवगन्तुं न शक्यते । ५८ ।

सूर्य बिम्ब के केन्द्र बिन्दु (पुरुष) का संक्रमण काल एक त्रुटि का हजारवां भाग होता है । इसको जानना मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है ।

सौरे-भचक्र नाभौ विषुव द्वितयं समसूत्रगम्
आयन द्वितयं तैव गतस्त्र परमास्तताः । इति । ५९ ।

भचक्र की नाभि या केन्द्र स्थल में होने के कारण दो विषुव संक्रान्ति तथा दो अयन संक्रानति ये चार अति श्रेष्ठ हैं । सायन मेषादि तथा तुलादि जिस प्रकार मेरु से बराबर दूरी (९०° अंश) पर है उसी प्रकार सायन कर्क तथा मकर आदि भी ध्रुव से बराबर दूरी पर हैं । अतः इनका माहात्म्य भी समान है । (सूर्य सिद्धान्त के अनुसार)

सौम्यायनान्मास युगैः शिशिरादि ऋतवस्त्रयः
तथैव याम्यायनतः प्रावृडाद्यास्त्रयोमताः । ६० ।

उत्तर अयन से दो दो मास अर्थात् मकर संक्रान्ति (सायन) से दो-दो सौर मास तक शीत आदि तीन ऋतुएं होंगी (६ मास तक) इसी प्रकार सायन कर्क

आरम्भ में २-२ मास की वर्षा आदि ३ ऋतुएं होगी ।

अथ पञ्चविधाब्दानां रवि मध्यम सावनैः
दिनैर्मानानि कथ्यन्ते मध्य भुक्त्यनुसारतः । ६१ ।

रवि की मध्यम गति के अनुसार पांच प्रकार के वर्ष में मध्यम सावन दिनों की संख्या कही जा रही है ।

द्व्यक्षिनाड् यधिकाब्ध्यर्थ रामा (३५४।२२) श्चान्द्राब्द वासराः
सैकनाड्यंक बाणाग्नि संख्या (३५९।१) नक्षत्र वर्ष जाः । ६२ ।

चान्द्र वर्ष में (३५४।२२) तथा नाक्षत्र वर्ष में (३५९।१) सावन दिन होते हैं ।

सावनाब्दस्य ते षष्ठि समन्वित शतत्रयम् । (३६०)
स पञ्च दण्ड रूपाङ्गवह्नयो (३६१।५) जैववर्ष जाः । ६३ ।

सावन वर्ष में (३६०।०) तथा बार्हस्पत्य वर्ष में (३६१।५) सावन दिन होते हैं ।

सौराब्द वासराः पञ्चषष्ठ्युत्तर शत त्रयम् । (३६५)
तिथिभिः (१५) क्ष्माग्निभि (३१) श्चैतैः (३१)
सिद्धै (२४) दण्डादिभिर्यतम् । ६४ ।

सौर वर्ष में ३६५।१५।३१।३१।२४ सावन दिन होते हैं ।

ऋक्षेण भगणं केचिदार्द्ध मासं प्रचक्षते ।
अष्ट दण्डोन नागाक्षि गुणाप्तद् वर्ष वासराः । (३२७।५२) । ६५ ।

कुछ लोग चन्द्र भगण काल को नाक्षत्र मास कहते हैं । इस मत से नाक्षत्र वर्ष (१२ नक्षत्र मासों में) सावन दिन संख्या ३२७।५२ है ।

मनूनां राज्य कालोऽत्र मानवं मान मुच्यते ।
न पृथग् दिन मासादि नियमस्तत्र सम्मतः । ६६ ।

स्वायम्भुव आदि मनु प्रत्येक जितने दिन राज्य करते हैं, उस काल को मनु कहा जाता है । इसमें अलग दिन, मास आदि की गणना नहीं है ।

चान्द्रो मासः पितृदिनं यतैः खांगगुणैः (३६०) समा
सावनैस्तद् प्रमाणं तद्रू पाग्नि रस दिग् दिनैः (१०,६३१) । ६७ ।

एक चान्द्र मास को ही पितरों का अहोरात्र कहा जाता है। इस प्रकार के ३६० दिनों का पितृवर्ष होता है । एक पितृवर्ष में (१०,६३१) सावन दिन होते हैं ।

देवमानं यदेवैतदासुरं परिकीर्तितम्
सौराब्दस्तदहोरात्रो दिनरात्रिविपर्ययात् । ६८ ।

देवताओं और असुरों का मान बराबर है, पर उनका दिन और रात विपरीत

क्रम से होते हैं, जिस समय एक का दिन (६ सौर मास का) उस समय दूसरे की रात्रि होती है।

स षष्ठि त्रिशताहोभि (३६०) स्तदब्दः सतु सावनैः
सम्मितः साङ्कदण्डाग्नि गोशक्राग्नि कुभि (१३१४९३।९) र्दिनैः । ६९ ।

इस प्रकार के ३६० दैव (या आसुर) दिनों का दिव्य वर्ष होता है। जिसमें (१,३१,४९३।९) सावन दिन होते हैं ।

सौराब्दे रर्बुद गुणैः कृतदिक् चन्द्र वह्निभिः (३११०४०,००,००,००,०००)
सम्मितं ब्रह्मणो वर्षं पुरोक्तास्त द्दिनादयः । ७० ।

ब्रह्मा का वर्ष (३१,१०,४०,००,००,००,०००) सौर वर्ष होते हैं । ब्रह्मा के दिन के बारे में कहा जा चुका है ।

मनूनां यत् पृथङ्मानं हरिवंशेऽस्तितद्रवेः ।
गत्याप्यशक्यमाने तुं लिखाभ्यार्षोक्ति गौरवात् । ७१ ।

हरिवंश में मनु का जो अलग मान दिया गया है वह सूर्य की गति से नहीं निकाला जा सकता है । ऋषि वचन के प्रति सम्मान के कारण में उसे यहां लिख रहा हूँ ।

यथा हरिवंशे-दिव्यमब्दं दश गुणंमहोरात्रं मनोः स्मृतम्
अहोरात्रं दश गुणं मानवः पक्ष उच्यते । ७२ ।

हरिवंश पुराण के अनुसार -१० दिव्य वर्षों का मनु का एक अहोरात्र होता है । १० मनु अहोरात्र का मनु का १ पक्ष होता है ।

पक्षो दस गुणो मासो मासै द्वादशभिर्गुणैः
ऋतुर्मनूनां संप्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्वार्थं दर्शिभिः । ७३ ।

मनु के १० पक्षों का मनु मास, १२ मनु मास का मनु की एक ऋतु होती है-ऐसा तत्त्व दर्शी ज्ञानियों ने कहा है ।

कालव्याप्ति र्बहुविधा श्रौत स्मार्त्तेषु कर्मसु
तत् शुद्धिश्च विवाहादौ.न्युक्ता स्मृत्युक्ति भावतः । ७४ ।

वैदिक और स्मार्त्त कर्मों में अनेक प्रकार का काल विभाग हैं । स्मृति में इस प्रकार की काल व्यवस्था का वर्णन होने के कारण विवाह आदि में काल शुद्धि की व्यवस्था यहां नहीं कही जा रही है ।

चन्द्रगत्यनुसारेण जलोल्लासान्महाम्बुधेः
गंगाद्यवृद्धि नियमः क्वाचित्कत्वादलेखिना । ७५ ।

चन्द्र गति के अनुसार महासागर का पानी ऊपर ऊठता है । अतः गंगा आदि नदियों का पानी भी बढ़ता होगा । परन्तु यह विचार ठीक नहीं होने के कारण

इस विषय में नहीं लिखा जा रहा है।

भास्वत्सम्मुख भाग् दले द्युति भृतोऽन्यत्रात्मनश्छायया
व्याप्तस्येन्दव गोलकस्य सतत क्ष्मा सम्मुखै कार्द्धतः
सूर्यां शांन्त्यजतोऽयतो धवलतां वृद्धिक्षया वीक्षते
लोकस्तत् पितरः क्व सम्मुख दले मासार्क पश्चाद् भ्रमम्। ७६।

चन्द्र का जो गोलार्द्ध सूर्य के समाने होता है वह सूर्य किरण से प्रकाशित होता है तथा विपरीत दिशा का आधा भाग छाया में रहता है। छाया अर्द्ध के सामने पृथ्वी के लोग देखते हैं, कि चन्द्र सूर्य से दूर जाते समय उसकी कला बढ़ती जाती है। दूसरी दिशा में (चन्द्र सूर्य के निकट) आने पर चन्द्र की कला घटती है। क्या चन्द्र मण्डल पर रहने वाले पितर भी रवि की एक मास तक पश्चिम दिशा की गति देख पाते हैं ?

नव्याभ्र भ्रमर प्रभाकर सुता पाथः प्रफुल्लोत्पलः
प्रालेयांशुकलंक कज्जलमहानीलाश्म नीलोज्ज्वलः
शम्पा चम्पक नीप कुंकुमतमी चामीकरा भाम्बरः
कृष्णः संसृति शर्करा ध्वजनितं मुष्णातु, तृष्णां मम। ७७।

नया काला मेघ, भ्रमर, यमुना जल, प्रफुल्ल नील कमल, चन्द्र का काला कंलक, कज्जल और नीलमणि के समान उज्ज्वल, बिजली, चम्पाफूल, कुकुम, हल्दी और सोने के समान पीताम्बर धारण करने वाले कृष्ण जगन्नाथ संसार रूपी लोभ द्वारा जन्मी मेरी तृष्णा को नष्ट करे।

इत्युत्कलोज्जवल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्रशेखर कृतौ गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
द्वाविंशकः प्रथित काल इतः प्रकाशः। ७८।

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राज परिवार में उत्पन्न श्रीचन्द्रशेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा बालकों के ज्ञान के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में काल वर्णन सम्बन्धी २२ वां प्रकाश समाप्त हुआ।

त्रयोविंश प्रकाश

पुरुषोत्तम स्तव वर्णन

या वाग् वाग् ब्रह्म शर्वेड़ित गुणवितते: श्रीपते वर्णनाढ्या
सास्याद् विश्वाशुभघ्नी सततमपियुता वद्यवद् गव्यपद्यैः
या तद्रक्ता सुपृक्ता पि च सुभग पदै स्त्यज्यते सद्‌भिरेषा
तस्मात् कृष्णा चले शामल गुण जलधो वर्णनीयोऽत्रविन्दुः । १ ।

सरस्वती, ब्रह्मा और शिव द्वारा पूजित गुणों के समुद्र लक्ष्मीपति की गद्य पद्य पूर्ण वाक्यों में विस्तृत वर्णन है । वह सारे संसार का क्लेश दूर कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।

दूसरे अर्थ से जो वाक्य अत्यन्त सुन्दर पद विन्यास और लय से युक्त हैं । पर उसमें भगवान् का गुण कीर्तन नहीं है उसको सज्जन ग्रहण नहीं करते हैं ।

अतः विशुद्ध गुण के सागर नीलाचल नाथ श्री जगन्नाथ का बहुत थोड़ा वर्णन यहां किया गया है । गुण के सागर होने के कारण सभी गुणों का वर्णन नहीं हो सकता ।

उत्कल

यत्रक्षेत्रं पवित्रं विलसत सितरुङ् मित्रनेत्रस्य गात्रं
गोत्रा यत्रातिमात्रा स्तदवयव सृती दीपवत्यो विचित्राः
स्वस्थानस्थाः पदस्थापित निजजनता देवताः सन्ति नित्याः
मर्त्याःस्मार्ताः स्मरार्त्ता हरिचरण रता श्चोत्कलः स्तात्कलिघ्नः । २ ।

जिस देश में कमल नेत्र श्रीकृष्ण का शरीर तथा पवित्र क्षेत्र है, जिसके अंशरूप में अनेक पर्वत हैं जहां देवताओं के मन्दिरों में सदा दीपक जलते हैं, जहां देवी देवता अपने अपने मन्दिरों में स्थित होकर भी भक्तों को उच्च पद पर स्थापित करते हैं, जहां के लोग स्मार्त काम कर नाम स्मरण और प्रभु चरण सेवा में तत्पर हैं । वह उत्कल देश कलि के दोषों का नाश करे ।

स्तव्याभव्या अभव्या अपि वचन चयैर्नव्य नवैश्च दिव्यै
र्वास्तव्ययत् पृथिव्या मवनत वदनै र्व्योम्नि निर्वर्ण्यमाना
बाहू व्यूहाग्र विभ्राजित वन जगदा कम्बुचक्रा इवेश्चै
रौड्रः प्रौढः प्रभावो जयति परिवढः सर्वदेशस्य सोऽयम् । २ ।

जहां के निवासी अयोग्य होने पर भी हाथों में चक्र गदा और पद्म धारण करने वाले विष्णु की तरह दीखते हैं । देवगण आकाश में झुक कर उनकी विचित्र और बड़े शब्दों में प्रशंसा करते उनको योग्य कहते हैं, वह औड्र देश बहुत प्राचीन काल से विख्यात है और अन्य देशों से उच्च स्थान पर है ।

पुरुषोत्तम और नीलाद्रि

नानोद्यानोद्यतानो कह वहल दलच्छाय शान्तात पार्त्ति
र्नित्यप्रत्यग्र सौदावलिदलित कला नाथभृत् शैल कान्तिः
अश्रान्त भ्रान्त वात प्रमथित पथिक श्रान्ति रक्षेम शान्ति
कुर्यात् पर्यन्त गर्ज्ज जलधि रधिरुचिः कम्बुभाः कापितुर्नः । ४ ।

जहां असंख्य उद्यानों और उनमें घने वृक्षों के पत्रों की छाया से सूर्य के ताप का कष्ट नहीं होता। जहां के नये प्रासादों की शोभा कैलाश पर्वत से अधिक है, जहां हमेशा बहता पवन पथिकों की थकावट दूर करता है।

जिसके एक तरफ शब्द करता हुआ समुद्र है, तथा जो शंख के समान शोभित पुरुषोत्तम क्षेत्र हैं वहां हम लोगों का निर्वाण और शान्ति हो।

यत्रामर्त्याः परित्राकृत सुकत जनत्रासिनोऽ प्येत्यमर्त्यान्
वित्रस्ता वेत्रहस्ता ननुविवृति कृतः प्रेक्ष्य संख्येच्छवःस्युः
देवा देवाधि देवानन नलिन दृशः सन्ति नानात्मभाजः
कुर्यात् पर्याप्त वीर्या समविषम सिता हास्य धूर्या पुरीनः । ५ ।

वहां पूर्व जन्म में अकर्म करने के भय से हाथ में बेत लेकर स्तुति करते हुये मनुष्यों से देवता गण मित्रता चाहते हैं, जहां पर अनेक रूपों में स्थिति देवगण कमलनयन प्रभु को देखते रहते हैं, उस पुरी में अत्यन्त बली और नीलगिरि का भार उठाने में समर्थ प्रभु जगन्नाथ हमारा मंगल करें।

अन्तर्वेदी त्रिवेदी निगदितमहिमाधित्यका नित्यकान्ता
स्तुङ्गाः श्रृंगाणि यस्यामर निकरगृहः पावनी यद् वनीश्रीः
प्राकारो यत्प्रपातः प्रमथ पतनुतो पत्यका पूर्यदीया
स श्री शम्भोदभारी वितरतु जगतां मेचकं मेचकाद्रिः । ६ ।

जिस अन्तर्यामी की महिमा तीनों वेदों में उच्चप्रशंसित है, जिसकी उन्नत अधित्यका (पर्वत की उच्च भूमि) सदा रमणीय है, जिसकी चोटियों पर देवतागण रहते हैं, जिसकी भीड़ से लोग पवित्र हो जाते हैं, जिसकी प्राचीर पर्वत समान ऊंची है, जिसकी तट भूमि की शिव सदा प्रशंसा करते हैं, तथा जिसकी पुरी कृष्ण रूपी मेघ के भार से आक्रान्त है उसी नीलगिरि के नाथ हमारा मंगल करें।

पताका

तुंग प्रासाद श्रृंग प्रतिलव पवनान्दोलिता वैजन्यती
वांच्छाकल्पद्रुम तीर्थेश्वर शिरसि चरत् पल्लवं श्री जयन्ती
याम्य स्वाम्याति ताम्यज्जन वृजिन चमूमूर्जितां तर्जयन्ती
पायान्माया भवाब्ध श्रममिव शमिनां विजनैर्माजयन्ती । ७ ।

श्री जगन्नाथ के ऊंचे मन्दिर की चोटी पर प्रतिक्षण वैजयन्ती पताका हवा से फर-फर होती है। तीर्थेश्वर इच्छा कल्पवृक्ष के सिर पर हिलते हुए वट के

पत्तों की शोभा को भी इस पताका की शोभा पराजित करती है । जो पापी लोगों को अत्यन्त पीड़ित करने वाली यमराज की सेना को भय देते हैं वे संसार पथ पर थके अपने भक्तों की थकावट दूर कर शान्ति प्रदान करें ।

पताका दण्ड

शौण्डानां दण्डपाणेरपि चरणयुषां दण्डदः केतुदण्डः
श्चण्डाल स्योर्दर्ध्वं गत्या अपि किमु विदलश्चण्ड मार्तण्ड बिम्बः
चञ्चञ्चञ्चत्पताकाश्रय विधुति मिषाद् बाहुराहृत्य लोकः
प्रासादस्यैव दूरादपनयतुभयं पंकतः किंकराणाम् । ८ ।

जो यम के पद सेवक यम दूतों को दण्ड देता है, पताका की ऊर्ध्व गति से जो प्रखर सूर्य बिम्ब का उत्ताप कम करता है, जो अति रमणीय भाव से हिलकर मानों दूर के लोंगो को हाथ हिलाकर बुला रहा है, और मन्दिर की भुजा के समान है, वह पताकादण्ड हम अकिञ्चन सेवकों के पाप के भय को दूर करे ।

चक्र

चक्रं तन्नक्र शक्र क्रकच कटुतनु क्रान्त्य विक्रान्ति दन्ती
क्रान्ति प्रान्ताति शान्ता जित महित महीः संहरेदं हसां नः
संघसंगात पाता दवितु मविकलं हन्त पातत्य भाजो
भ्राजत् प्रासाद राजोपरि पतितदृशः श्रीशतुर्यां शरूपम् । ९ ।

जिस चक्र ने गज को मुक्त करने के लिए ग्राह के शरीर में आरी तरह घुस कर काट डाला तथा उसके बाद भी अविकृत शान्त और अपराजित रहा, जो लक्ष्मीपति भगवान के चतुर्भुज रूप में विद्यमान है तथा मन्दिर के ऊपर चमक रहा है वह अपने दर्शन करने वाले पापियों के प्रसार और संकट को पूरी तरह नष्ट करे ।

कलश

पर्यन्तोत्कीर्णनानाभरण चणतनुश्चातनुः शीतदायी
सोऽन्तः सन्ताप शान्त्यै विलसतु कलशः सत्सुधाधारधामा
यः पद्माकान्त सद्मा भवविवुध शिरोगर्भ काकार चक्रा
क्रान्तश्चूड़ेव निः श्रेयस पथ पथिकानर्थहृद् हृद्र कुम्भः । १० ।

चक्र के नीचे स्थित स्वर्ण कुम्भ ही मन्दिर का कलश है, जो विशाल अमृत से भरा हुआ है तथा उस पर अनेक प्रकार के चित्र बने हुए हैं, वह सुखदायी तथा मोक्षमार्ग पर चले वालों का अनर्थ दूर करता है । जगन्नाथ मन्दिर के मस्तक के केन्द्र में गोल ढक्कन के समान रहने के कारण वह मन्दिर की चूड़ी के समान दीखता है । वह हमारे हृदय के दुख समूह का नाश करने के लिए सदा विराजमान रहे ।

आवला बेड़ा

सद् वण्टा कर्परात्या मलकत तरति द्योतिता द्योतयन्ती
प्रासादस्थूल मूर्त्तेर्भवतु भगवतः सर्वतोवक्त्र भावम्
याष्टाशोत्यंग जुष्टाष्ट परिगुण चतुः षष्टिमुष्ट्यन्त निष्ठैः
दृष्ट्या भ्रष्टं शिरो वेष्टनमपि तनुते सोम मानिष्ट नष्ट्यै । ११ ।

मन्दिर कलश के नीचे आँवला बेड़ा बड़े घण्टे के खोल के समान तथा मन्दिर रूपी शरीर का कपाल है । इसके ८८ अंग (आंवला) हैं तथा ६४x८ = ५१२ मुट्ठी दूर से देखने वाले लोगों के सिर से पगड़ी गिर जाती है । यह हमारा अनिष्ट दूर करे ।

देउल कण्ठ

स्पष्टा स्पष्टा सुकाष्ठा स्वनुघटित पतच्छ्रेष्ठ कण्ठीरवेन्द्रैः
पश्याद्दिश्या घनागप्रभव परिभवोल्लुण्ठना कुण्ठवीर्यैः
दृष्टि प्रेष्ठकृष्ट प्रतिकृति खलुः सुष्ठु नोऽ धिष्ठिताङ्गि
वैकुण्ठागार कण्ठो विघट यतु हठात् कष्टदादृष्ट सृष्टिम् । १२ ।

जगन्नाथ मन्दिर का कण्ठ शीघ्र हमारे कष्टप्रद प्रारब्ध कर्म को अच्छी प्रकार नष्ट कर दे । इस कण्ठ के आठ दिशाओं में पाप रूपी दिग्गजों को नष्ट करने के लिए श्रेष्ठ सिंह इनके ऊपर अंकित दीखते हैं । मन्दिर से ये गज और सिंह लगे रहने से इनका आकार अत्यन्त सुन्दर अतुलनीय दीखता है ।

मन्दिर

जम्बूद्वीपा स्वभूपाखिल भुवन जयस्तम्भ सम्भार भारी
गर्भस्थानन्त विश्वम्भर शरणतया वाङ्मयातीत मानः ।
सांगो पांगोऽति तुंगोऽनुगुणपृथुलतः प्रेक्षकानन्दकन्दः
प्रासादेशोऽनिशं नःस्पृशतु विश दृशः स्वाशयं श्रीश मूर्त्तिः । १३ ।

समस्त जम्बूद्वीप के सभी राजाओं पर जीत के स्तम्भ के रूप में उनके भार से आक्रान्त होकर यह प्रासाद अपने गर्भ में जगन्नाथ कोरख उनकी शरण पाने से अत्यन्त सम्मानित्त हुआ है । यह प्रासाद अत्यन्त ऊंचा है तथा इसका कोई भी अंग पतला या शक्ति हीन नहीं है । यह जगन्नाथ की मूर्ति के समान अतुलनीय और दर्शकों को आनन्द देने वाला है ।

प्राकार द्वन्द्वमध्य प्रतत समदृशत् कुट्टि माट्टापकृष्ट
प्रासाद वेष्टिव्रोऽधस्तृत मसृणलसन्नुदग् पाषाण पट्टः
नाना कारावतारैः हरिण नरवरैः कुञ्जरै रञ्जितोऽङ्गः
पुञ्जं कुञ्जाधिराजालय उपचयिनं व्यञ्जयेच्छर्मणा नः । १४ ।

इसके दो प्राचीरों के बीच की भूमि समान कटे पत्थरों से ढंकी है । उसके ऊपर छोटे-छोटे देव प्रसाद हैं । ठीक नीचे चिकना संगमर्मर पत्थर है । मन्दिर की दीवारों पर मत्स्य, कच्छप आदि अनेक अवतार, सिंह और हाथी मूर्त्ति रखी हुई है । नगेन्द्र श्रीकृष्ण के घर इस मन्दिर से हम लोगों का सुख बढ़ता रहे ।

प्रग्रीवं सोद्धर्व भागं शिखर मृजुतरं मञ्जरी मञ्जुलाभां
भित्ति ध्वस्ताधभीतिं त्रितनुतनुगृहान् वक्त्रशालां विशालाम्
पीठं शिष्टाभिजुष्टं गृहमति विततं श्री जगन्मोहनाख्यं
भोगार्थं मण्डपञ्चाद् भूत मवनी धवस्याश्रये प्रश्रयेण । १५ ।

पृथ्वी पति जगन्नाथ की सभी चीजों का मैं भक्ति और उत्कण्ठा के साथ आश्रय लेता हूँ । मन्दिर के कण्ठ के नीचे (छाती के ऊपरी भाग-प्रग्रीव) लगे हुए सीधे शिखरों के समूह अत्यन्त सुन्दर दीखते हैं । मन्दिर के गोलाकार दीवाल को देख कर सभी पाप नष्ट होते हैं । पाताल में स्थित तीन छोटे घर (मन्दिर के पास जिसमें गणेश, वामन और वाराह हैं) उसके बाद विशाल मुख शाला । इसके बाद जगन्मोहन पीठ है जहां के विशाल घर में शिष्ट लोग बैठते हैं । अन्त में भोग मण्डप है ।

प्रेंक्षन शंखस्य नाभौ सतत गति वशाद् बाहु दण्डैः प्रचण्डैः
शाखाभिश्चण्डरोति स्तनुजनिज जनान् वासयन् किं विदूरात्
कल्पान्तेऽप्यन्तहीनः सकल कलुषहृत् सिन्धु राजोऽधिराधो
न्यग्रोधः क्रोध कामाद्यरी परिभव कृद् भूत वर्गस्य भूयात् । १६ ।

मन्दिर का कल्पवट प्रलयकाल में भी नष्ट नहीं होता है और सभी प्रकार के पापों का नाश करता है । यह महासागर के तीर पर अवस्थित है । यह प्राणियों के शत्रु काम, क्रोध आदि को परास्त करे । शंख क्षेत्र की नाभि में रह कर यह कल्प वृक्ष पवन से अपनी भुज दण्ड रूपी शाखाओं से सूर्यपुत्र यम के दूतों को दूर से ही भगा देता है ।

भद्राभूमाधव श्रीमुषल भृदरिभिः शोभितः श्रीत्रपुष्मा
नष्मानुष्णां शुजोषा गम शमनघनः पातु देवाधिदेवः
जन्तुर्मन्तुन्निहन्तुं प्रभवति शतशोऽह्नाय यन्नाम गृह्णन्
पश्यन् प्रश्यत्य वश्यं विषयजल निधौ नेवयं दैव भृत्यः । १७ ।

दैव के अधीन प्राणी भी जिस जगन्नाथ का नाम सौ बार लेने से उसी समय पाप से मुक्त हो जाता है, जिसे देखने से संसार (विषय) समुद्र में प्राणी नहीं पड़ता है, जो देवताओं के प्रभु और ताप शान्त करने के लिये वर्षा वाले मेघ हैं तथा जो सुभद्रा, भूदेवी, माधव, बलभद्र और सुभद्रा के साथ शोभा पाते हैं वे हमारी रक्षा करे ।

साद्धं येनेन्दु पद्मा ह्यखिल मुपमिति द्रव्य मासीत् कृतार्थं
विद्वद् भिर्वर्णमानं यदनुमितिकृतः कृत्रिमं विश्वमाहुः
शब्द ब्रह्म प्रमाणं यदवयव जनै र्योऽसकृन्नारदाद्यैः
साक्षाल्लक्षोऽपि साक्षो भवति नवनवः श्रीधवः सोऽ वतान्नः । १८ ।

जिसके अंगों से उपमा के कारण चन्द्र और पद्म आदि धन्य हो गये हैं, जिसकी कल्पना करने से तार्किकों को यह सचरा चर विश्व ही कृत्रिम (ईश्वर की तुलना में) लगता है । जिसके अवयव रूप जगत् की उत्पत्ति में शब्द ब्रह्म (ॐ) ही प्रमाण है, जिसे नारद आदि महर्षि प्रत्यक्ष देख पाते थे और जो स्वयं सभी के द्रष्टा होकर स्थित है, वे लक्ष्मीपति भगवान नित्य नये रूपों में हमारी रक्षा करें ।

द्रव्यैर्जातुपमानं न भवति कृतिनां प्राकृतैर्जात दोषं
सर्वान्तर्यामि भवाद्युति मति कृतिभिः यस्य लोकोत्तरस्य
व्यक्ताव्यक्तेषुसत्वे स्वपरिमित निज व्याप्ति मुद् व्यक्त कामः
स्तस्मादो दिव्यसिंहोऽभवदिह च महादारु देहः सनो ऽ व्यात् । १९ ।

भगवान् लोकोत्तर होने के कारण किसी भी प्राकृतिक वस्तु से तुलना (उपमा) कर उनका रूप, बुद्धि या प्रयत्न का वर्णन करने में कवियों का दोष होता है । वह सभी के भीतर स्थित हैं । उन्होंने सभी व्यक्त तथा अव्यक्त द्रव्यों में अपने अंसख्य रूपों को दिखाने के लिये दिव्य सिंह (नृसिंह) का रूप धारण किया था । वही दारुब्रह्म रूप में हमारी रक्षा करें ।

पारावार प्रतीरप्रथित वर महापादयोः स्पर्शनाशा
प्रोद्यत् प्रासाद पीठार्पित विपुल वपुः पाण्डु पद्मोपमाक्षः
पूर्ण प्रेम प्रदान प्रवण उपनिषद् प्रार्थ्य मानानुनम्रः
पापौधाम्नां पुनीयात्पतित पतिमयं पूतना प्राण पायी । २० ।

समुद्र किनारे कल्पवृक्ष की दिशा में उसे स्पर्श करते हुए सुन्दर मन्दिर में पीठ (रत्न सिंहासन) पर विराजमान महाकाय जगन्नाथ की आंखें धवल कमल के समान हैं । उन्होंने पूतना राक्षसी के प्राण पी लिया था । उपनिषद् उनकी स्तुति करते हैं । वह भक्तों को सदा स्नेह देते हैं । अतः मेरे जैसे पापराशि का भी उद्धार करे ।

अथ श्री जगन्नाथस्य द्वाभ्यां समुद्र साम्यम् -

लक्ष्मीभृ नागसद् मामृत खनिरशनि त्रासितक्ष्मा भृदीश-
स्थानं स्वर्गापगायाः प्रभुरखिलनृणां पापसन्ताप हन्ता
श्याम श्रीमान् कूर्माद्यमित तनुधरः शंखचक्राब्जवाहः
कल्पान्त ग्रस्त लोकः कलयतु कमलं तीर्थराट् क्रान्ति शन्त्यै । २१ ।

जगन्नाथ लक्ष्मी पति हैं तथा समुद्र भी लक्ष्मी का पिता है । भगवान नाग

(शेष) को घर बनाये हैं । नाग का घर समुद्र है । दोनों अमृत के भण्डार हैं । भगवान ने मस्त्य कच्छप आदि प्रत्येक रूप धारण किया था, ये सबी रूप वाले प्राणी समुद्र ने भी धारण किये हैं । इन्द्र वज्र से रक्षा के लिए पर्वत (गोवर्द्धन) का आश्रय कृष्ण ने लिया था-समुद्र ने भी वज्र से रक्षा के लिए पर्वत (मैनाक) को आश्रय दिया था । विष्णु से गंगा की उत्पत्ति (नख से हुयी), समुद्र में गंगा मिलती है, अतः दोनों गंगा के स्वामी हैं । भगवान के हाथो में शंख, पद्म आदि है जो समुद्र में भी है । सृष्टि के अन्त में वे दोनों भुवनों को जनप्लावित करते हैं । वे सभी तीर्थों के राजा हैं । वे दोनों दुःख शान्ति के लिए सुख (जल) का विवरण करें ।

यत्रास्ते सानुबिम्बादित सित किरण प्रोज्वलं नेत्रयुग्मं
नासाबाहूदराघ्रिं स्फुरति च विविध द्वीप शोभानुकारि
वारीत श्यामल श्रीर्मकर सुरुचिरे कुण्डले वाड़वाग्नि-
ज्वाले वाद्यत् किरीटं तरणिव दधरः सोऽस्तु शान्त्यै कृपाब्धिः । २२ ।

जिसके दोनों नेत्र उदय होते हुए सूर्य और चन्द्र बिम्बों के समान है । (कृष्ण नेत्र गोल तेजस्वी हैं) । समुद्र में भी दोनों उदय होते सम उसके नेत्र समान दीखते हैं । जिसके नाक, भुजा, पेट और पैर आदि प्रत्येक द्वीपों के समान है (कृष्ण के भुजा, पैर आदि द्विप अर्थात् हाथी के समान विशाल हैं) समुद्र के द्वीप उसके अंगों के समान बाहर निकले हैं । जिनकी श्यामल शोभा है (कृष्ण और समुद्र दोनों नीले हैं) जो मकर कुण्डल धारण किये हैं (कृष्ण के कुण्डल का आकार मकर जैसा है । समुद्र के भीतर मकरों का समूह है), जिसका किरीट् बड़वानल के समान तेजस्वी है (कृष्ण की मणि किरीट का तेज अग्नि के समान है, समुद्र का बड़वानल उसकी मणि के समान है), जिसका नौका के समान अधर है । कृष्ण के ओठ नौका के समान सामान्य वक्र हैं, समुद्र का प्रवेश द्वार नौका है- मुख के प्रवेश की तरह)- वे दया सागर (कृष्ण और समुद्र) हमारी शान्ति के लिये विराजमान रहें ।

ब्रह्माण्ड साम्यम्

विभ्रद् वस्त्र क्षपे शौ नयन युग मिषादगभ शोभामदभ्रां
शुभ्र श्री वक्त्र दम्भादधर पुर रुचि व्याजतः सान्ध्यवेलाम्
तिर्यग् विस्तीर्ण वृत्तातुल भुजबल यच्छद् मनश्चक्र वालं
शैलं मध्यच्छला काञ्छल मुपरि नुतात् विश्वभर्त्ता शुभंनः । २३ ।

ब्रह्माण्ड के सूर्य चन्द्र की तरह कृष्ण के दो नेत्र हैं । ब्रह्माण्ड के मेघ की तरह कृष्ण भी श्यामल है । ब्रह्माण्ड (आकाश) के समान कृष्ण का स्वच्छ तेज है । ब्रह्माण्ड की सन्ध्या के समान लाल रंग कृष्ण के अधरों का है । भगवान की दोनों भुजायें ब्रह्माण्ड के दिगवलय की तरह तिर्यक् फैली हुयी, गोल और

अनुपम है । ब्रह्माण्ड का मेरु सुवर्णमय है, कृष्ण भी शरीर में सुवर्ण समान पीताम्बर पहने है । इस प्रकार ब्रह्माण्ड समान ही उसके स्वामी हमारा शुभ करें ।

श्री जगन्नाथ स्य शिव साम्यम् -

भूते शो भूति भूमिर्भवज भय भरोद् भेद भेदिप्रभावो
भुवीन्द्र भोगाभरण पुर भी भावदो भूत भूतेः
भू भृद् भूमीन्द्र मौलि भूंत वरकमलो गौर भाभेशभंग-
प्रभ्राजद् भाल भत्तिर्वृषभरणचणः सत्यदप्राभिसन्धिः । २४ ।

कृष्ण भूत (प्राणियों) के प्रभु हैं । शिव भूत पिशाचों के । कृष्ण अणिमा आदि विभूतियों के स्थान है, शिव भूति (भस्म या सम्पत्ति) के आश्रय स्थल । कृष्ण संसार के कारण हुए भय (भवभीति) का नाश करने में प्रभाव शाली हैं । शिव भूमि से निकले भयानक सर्पों को अपने शरीर से लिपटाये हैं । कृष्ण पर्वतराज (नीलाचल) पर नील कमल के समान मुकुट रूप में विराजमान हैं । शिव पर्वत राज (कैलाश) पर अपने मुकुट पर गंगा जल धारण किये हैं । कृष्ण का ललाट खण्ड चन्द्र के समान उन्नत है, शिव ललाट पर खण्ड चन्द्र है । कृष्ण धर्म रूपी वृषभ के रक्षक है अथवा वृषासुर के नाश कर्ता है । शिव वृषभ पर आरूढ़ हैं । कृष्ण का हृदय साधुओं के लिए अति खुला है । शिव का हृदय भाव दक्ष कन्या सती के पास पूर्ण हुआ । कृष्ण कान्ति गौर वर्ण को नष्ट करती है अर्थात् काला है, शिव गौर हैं । वे दोनों प्राणियों की उन्नति करें ।

श्री गौरी साम्यम्

सर्वाराध्या सितक्ष्माधर परम यशोभूति विख्यात हेतू-
माता लोकस्य दृप्यन्मधुवध मुदिता दित्यगीत प्रशस्ति
पाता इण्डादि दैत्या भिभवन खर रुक् चन्द्रकान्तोत्तमांग
श्री रस्मान् सर्वदो मेश्वर उदित रतिः केलिकान्ताङ्गसंभृत् । २५ ।

लक्ष्मी पति विष्णु के लिये-सभी वस्तु देने वाले लक्ष्मीपति जगन्नाथ हमारी रक्षा करें । वह लक्ष्मी को क्रीड़ा के लिए अपने शरीर पर धारण करते हैं । कृष्ण से सदा अनुराग (सुगन्ध) निकलता है । वे मस्तक पर मोर पंख लगाते हैं । अति उग्र प्रथम दैत्य हिरण्यकशिपु को मारने के लिये उन्होंने नखों आदि की शक्ति दिखायी थी । मधु दैत्य को मारने पर देवताओं ने उनकी प्रशंसा की थी । वे १४ ब्रह्माण्ड बनाने वाले तथा सभी के पूज्य हैं । उनके कारण नीलाचल के यश (सम्पत्ति) में वृद्धि हुयी है ।

गौरी के लिये -गौरी सभी की आराध्या, कैलाश की सभी यश सम्पत्ति का कारण तथा लोकों की माता है । चण्ड आदि दैत्यों के को हराने के समय उनका अत्यन्त तेज था । ईश्वर प्रति अति अनुराग के कारण उनके वाम अंग में स्थित हुयी है । खण्डित चन्द्र से उनका (शिव का) मस्तक शोभा पाता है । उनका

नाम उमा है । मधु दैत्य के वध के लिए देवताओं ने उनकी वन्दना की थी जिनकी शक्ति से वह मारा गया ।

वाग् देवी साम्यम्

श्रीमद् गौराम्बराडम्बर रुचिर पयोराशि शित्यंग लक्ष्मी
र्लक्ष्मी सेना दृतांग स्फुट तमसमनः संगति वाञ्छितांघ्रिः ।
ब्रह्मानन्दैक भूमिर्भ्रमशमन पटुः साश्रिता नाम विद्यां
भिद्याद् स्थूल देहा हित सकल जगद्भिरमेय स्थितिर्नः । २९ ।

कृष्ण पक्ष में अर्थ - श्रीकृष्ण हमारी दुर्गति दूर करें । उनके नील शरीर पर पीताम्बर फब रहा है । उनको लक्ष्मी, शिव और सूर्य सम्मान करते हैं । उनके पास देवता लोग जाते हैं । सरस्वती उनके चरणों की वन्दना करती है । वे भक्तों का अज्ञान दूर करने में दक्ष तथा ब्रह्मानन्द देते हैं । वे सूक्ष्म रूप से पूरे समाज में व्याप्त हैं । उनकी स्थिति पण्डित लोग ही समझ सकते हैं ।

सरस्वती पक्ष में अर्थ- सरस्वती हमारी माया दूर करें । उनके धवल शरीर पर शुक्ल वस्त्र फब रहा है । विष्णु से वह आदृत हैं तथा उन्हीं के प्रिय फूल सरस्वती पर अर्पित हैं । भक्त उनकी चरण वन्दना करते हैं । वह भक्तों का अज्ञान दूर कर ब्रह्मानन्द देती हैं । सूक्ष्म देह से सारे संसार में व्याप्त हैं । पण्डित ही उनकी स्थिति के बारे में जान सकते हैं ।

गणेश साम्य-

हस्त्योद्य पुष्कर श्री श्रुति शिखर धृतोन्मत्तचित्तालिलेखो
ऽलंकर्त्ताक्षाम मध्य स्त्रिपुर हर तनुदक्ष पक्षस्य रक्षात्
सद्योऽविद्यान्धकारात् परशुधर पुरस्कार्य दुर्वार्य वीर्यो
देवः श्री पार्वती वाग् विधिं विततयशाः स्वर्गवर्गाग्रपूज्यः । २७ ।

कृष्ण आदित्यों में प्रथम (उपेन्द्र या वामन) हैं, गणेश देवताओं में प्रथम पूज्य हैं । कृष्ण ने दुर्द्धर्ष परशुराम को पुरस्कार दिया था । गणेश ने भी परशुराम को बहुत कठिनाई से रोका था जब वे शिव से पुरस्कार लेने जा रहे थे । कृष्ण हरि हर मिलन में शिव के दाहिने रहते हैं । गणेश भी शिव के दाहिने रहते हैं । दोनों के हाथ में कमल का फूल सजा हुआ है । दोनों का यश लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती और ब्रह्मा फैलाते हैं । दोनों हमारे अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट करे ।

सूर्य साम्यम्

छाया कान्तः कृतान्तार्च्चित चरण युगः पाणिराजत् सरोजः
स्वाग्रोद्यद् वैनेतेया रजनीचर सुखोच्छाया विच्छेददक्षः
स्वच्छानन्तांक लीलः क्षयिततम तमाः सर्वतेजोऽभिभावी
कालिन्द्यानन्द कलः प्रमुदित कमलः पातु पकांधरिर्न । २८ ।

कृष्ण पाप से हमारी रक्षा करें । सूर्य छाया देवी के स्वामी हैं । कृष्ण की भी छाया के समान कान्ति है । कृष्ण का चरण यमुना धोती है । यम (सूर्य पुत्र) सूर्य की पूजा करते हैं । कृष्ण के हाथ में कमल शोभित होता है । सूर्य किरणों (पाणि) से कमल खिल जाते हैं । कृष्ण वैनतेय गरुड़ पर चलते हैं । सूर्य के आगे भी वैनतेय (अरुण) सारथी उन्हें ले जाते हैं कृष्ण राक्षसों (रजनीचर) का नाश करते हैं । सूर्य रजनी (अन्धकार) का नाश करते हैं । अनन्त (शेष नाग) की गोद में कृष्ण विश्राम करते हैं । सूर्य अनन्त आकाश में विचरण करते हैं । दोनों में सभी प्रकार का तेज है । दोनों कालिन्दी को सुख देते हैं (कालिन्दी कृष्ण की एक पत्नी, कालिन्दी यमुना सूर्य की पुत्री) । दोनों सदा पद्म को आनन्दित करते हैं ।

नवग्रह साम्य

पद् मान न्दैक सद् मामृतनिधिर वनी नन्दनश्चन्द्र वंशो
तंसः स्वर्गेशवर्गोड़ित चरण युगः सत्कवित्वा श्रयश्च
पत्री भूतो रूपत्री जननयन चया गोचरो नीचकेतु
ज्योतिष्मान च्युतोऽस्मानवतु द् भवभया दाशु विश्वग्रहात्मा । २९ ।

कृष्ण और सूर्य दोनों पद्मानन्द देने वाले हैं (कृष्ण के आंख, हाथ पैर आदि पद्म के समान आनन्द दायक, उनके हाथ में पद्म है, पद्मा सन में उनके ध्यान का आनन्द होता है । सूर्य किरणों से पद्म खिलता है) । कृष्ण और चन्द्र दोनों अमृत के भण्डार हैं । कृष्ण अवनी नन्दन (पृथ्वी को आनन्द देने वाले) हैं, मंगल भी अवनि (पृथ्वी) के पुत्र हैं । कृष्ण चन्द्र वंशी है, बुध, भी चन्द्र पुत्र हैं । कृष्ण-वाहन गरुड़ तथा सूर्य सारथी अरुण दोनों वैनतेय हैं । कृष्ण देववर्ग द्वारा पूजित हैं, वृहस्पति भी उनके गुरु में पूजित हैं । कृष्ण सृष्टि निर्माता (कवि) या कविता का विषय है । शुक्र भी कवि (रचयिता) हैं । शनि भी गृद्ध वाहन हैं । कृष्ण का नित्य रूप आंख से नहीं देखा जा सकता जिस प्रकार राहु को नहीं देखा जा सकता । कृष्ण नीच (दीन) लोगों के बन्धु हैं केतु भी नीचों का अधिपति है । कृष्ण और सूर्य दोनों सभी ग्रहों की आत्मा और प्रकाश वाले हैं ।

गोविन्द वन्दना

वन्देवन्दारु वृन्दारक निकर शिखा रत्न नक्षत्र राजी-
रज्यात्पादा रविन्द स्फुट नखर विध ध्वस्त चेत स्तमस्कम्
कोटि क्रीड़ाण्ड भाण्ड प्रकट गुण घटैः सेवितं स्वावतारै
श्रीमद् गोविन्द मिन्दिवर रुचिर तनु मिन्दिरानन्द कन्दम् । ३० ।

मैं श्रीगोविन्द को प्रणाम करता हूँ । देवताओं के सिर उनके चरणों पर प्रणाम करने के लिये झुकते हैं, तो उनके मुकुट पर नक्षत्रों जैसे प्रकाश रत्नों से चरण कमल प्रकाशित हो जाते हैं । उनके नखों की चन्द्र समान उज्जवलता से हृदय

का अन्धकार दूर हो जाता है। करोड़ो ब्रह्माण्ड उन्हीं के गुणों के प्रकाश है। उनकी पूजा उन्हीं के अवतार भी करते हैं। उनका शरीर नील कमल जैसा सुन्दर है तथा लक्ष्मी के आनन्द का मूल हैं।

अथ दशावतार स्तुति मीनावतार

मीनोऽलीनो नदीनोदर उषित ऋषि व्रात गोत्रातरीस्थं
त्रातुं सत्यव्रतं वातरदिह सुमहाहार्य सन्दोह देहः।
वेदोद्धाराय योद्धा व्यधित वधमदश्चौर वृत्रालिशत्रो-
स्त्राणं तापत्रयान्न स्त्रिपुर हर पुरष्कार पात्रं तनोतु। ३१।

मीन अवतार धारी भगवान तीन तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक) से हमारी रक्षा करें। विशाल आकार के कारण वे मीन रूप में समुद्र में भी नहीं छिप सके। उन्होंने नौका रूप पृथ्वी में स्थित ऋषियों तथा दुःखी सत्यव्रत के उद्धार के लिये अवतार लिया था। उन्होंने वेदों के उद्धार के लिये शंखासुर का वध किया जो वृत्रशत्रु इन्द्र का शत्रु और चोर था। उनकी त्रिपुरारि भी पूजा करते हैं।

कूर्मावतार

कूर्म्मेऽशर्म्मोपनिर्म्मोचयतु रयभर भ्रान्त मन्थस्थिराभृ-
द् भूरिग्रावाग्र संघटन घटित महापृष्ठ कण्डूति सौख्यः
पच्छंकोचच्छलनो च्छलित चल हृदां मिलनं स्वाश्रितेभ्यो-
ऽनर्थभ्यः प्रोत्थितास्येन च पवन समुत्थान मर्थापयन्नः। ३२।

कूर्म रूपी श्री जगन्नाथ हमारा अमंगल दूर करें। समुद्र मन्थन के लिये उनकी विशाल पीठ पर मन्दराचल पर्वत के तेज घूमने से उनकी पीठ की खुजली दूर होने का सुख हुआ। पैर संकोच करने से जिस प्रकार मन्दराचल को आश्रय मिला था (उनकी पीठ पर) उसी प्रकार भ्रमित बुद्धि वाले लोगों की बुद्धि भी स्थिर होती है। मुहं खोलकर हवा निकालने से समुद्र मन्थन में देवो और असुरों को शक्ति मिली, इसी प्रकार लोगों को उस रूप से काम करने की शक्ति मिले।

वाराहावतार

कोलं-कोलं कुगोलं दधदधि जलधी वाध उद्धत्यदन्त
प्रान्तेऽशान्ते दूरन्ते प्रथम दितिसुते वृद्धदुर्द्धर्ष युद्धैः।
देयादाया सहीनोदृहिण हरिहया द्यादितेयार्हणीयः
श्रेयो दाम्नाया गेय क्रतुनिचयमया मेघकायः श्रियः नः। ३३।

वाराह ने प्रबल और दुर्भेद्य दिति के प्रथम पुत्र हिरण्याक्ष जैसे दुर्वृत्त को मार कर बिना कठिनाई के ही समुद्र में नाव के समान अपने दांतों पर पृथ्वी को नीचे से उठा लिया था। उस समय ब्रह्मा इन्द्र आदि ने उनकी पूजा की थी। वेद उनकी स्तुति करते हैं। वह यज्ञ मय और अनन्त हैं। वराह रूपी भगवान हमारा

मंगल करे ।

नृसिंहावतार

अघं संघं नृसिंहो भवतु भवहरोऽह्नयसंहर्त्तु मर्हे
गर्हन्निर्ह्लादवृन्दैः प्रलय जलधर ध्यान धारा समृद्धिम्
अक्षान्त स्वीय भक्ताक्षति रमरपराध्यक्ष वक्षः क पाट
क्षोभ प्रक्षर्यमाणक्षतय भृतनखो लक्ष्यलक्ष्मीकवक्षाः । ३४ ।

संसार के (जन्म मृत्यु के) नाशक नृसिंह भगवान शीघ्र पाप समूहों का नाश करें । उनके वक्षस्थल पर लक्ष्मी है । अपने भक्तों की क्षति या कष्ट वे नहीं सह पाते हैं । दैत्यराज हिरण्यकशिपु के कपाट रूपी वक्ष को चीरने से निकलाहुआ रक्त उनके नखों में लग गया था । उस समय उनकी घोर गर्जना प्रलय कालीन मेघ से भी अधिक भयंकर थी ।

वामनावतार

खर्विकुर्वित दर्वि कर भुवनक गीर्वाणवर्गालयार्वी
गर्वानर्वाक् सुपर्वार्य वनिधवमहा सम्पदं लुम्पमानः
व्यापद् व्यापच्चयं पत्रितय रयभरा दर्थना व्याजखर्वः
सर्वं शंकादि सेव्यः स्रवद मर धुनी नीर पन्नीरजोयः । ३५ ।

वामन् भगवान हमारे विपद समूह को नष्ट करें । उनकी शिव आदि देवता सेवा करते हैं । उनके चरण कमलों में गंगा निकली है । मांग कर छल करने के लिए उन्होंने वामन रूप लिया था । दैत्यराज (बलि) की सम्पूर्ण सम्पत्ति (दान में) लेकर उन्होंने अपने तीन पगों से पाताल, देवालय (स्वर्ग) और पृथ्वी-सबका गर्व चूर्ण कर दिया था ।

परशुरामावतार

षष्ठः क्ष्माप्रेष्ठ गोष्टी कुठ गण लुठना कुण्ठतेजः कुठारः
श्रीवैकुण्ठावतारः कठिन रणधुरादृष्ट षष्ठीश पृष्ठः
तिष्ठन् कण्ठिर वाभीऽर्जुन सुभटघटा घोर मातंग यूथे
श्रेष्ठः कष्टानि निष्ठे वयतु भृगु भुवां नील कण्ठांघ्रि निष्ठः । ३६ ।

भृगुवंश के श्रेष्ठ, भगवान के षष्ठ अवतार और विष्णु के अंशरूप परशुराम स्वयं वैकुण्ठावतार के रूप में हमारा कष्ट दूर करें । वह नील कण्ठ महादेव के भक्त और कार्त्त वीर्य अर्जुन के योद्धा रूपी हाथियों के लिये सिंह के समान पराक्रमी थे । उन्होंने निष्ठुरता से कार्तवीर्य अर्जुन को मार डाला तथा पृथ्वी के राजाओं को वृक्षों की तरह काट गिराने में कुठार कुण्ठित नहीं हुआ ।

रामावतार

रामः श्यामाब्जधामा शमयुत सममाशर्म धर्मांश वंशो
तंसः संसार हिंसा वह महिम महाम्भोधि रम्भोज नेत्रः
शोण्डश्चण्डीश काण्डा सनवल दलने दण्डकारण्य चारी
हारी वारीश तारी सरपर विसर प्राणहारी षुधारी । ३७ ।

भगवान राम नील कमल के समान और सूर्य वंश के भूषण हैं । वह हमारा अमंगल दूर करें । उनकी आंखें कमल के समान सुन्दर हैं । संसार के हिंसकों के नाश के लिये (डुबाने के लिये) महासागर के समान हैं । उन्होंने शिव धनुष को भी सहज में मोड़ कर तोड़ दिया था । दण्डकारण्य में विचरण करने वाले हैं तथा महासागर को पाकर उन्होंने अजेय रावण का प्राण हर लिया था । वे सदा बाणों के साथ रहते हैं ।

बलरामावतार

उर्जेन्दु ज्योतिरुर्जस्वल विमलहराहार्यरुग् जैत्र गात्रः
सद्यः प्रोद्यहिनेश प्रमदमदभराघूर्णिना स्तीर्ण नेत्रः
प्रत्यग्राम्भोदवन्द प्रतिभट पटभृद् भूरि भास्वद् विभूषो
भूयाद् भूगोल भारो भव भयभिद् भानु भूभेदनो नः । ३८ ।

भगवान् बलराम हमारा संसार भय दूर करें । वह कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्र के समान प्रकाशमान है, अथवा रोहिणी (माता) के चन्द्र (पुत्र) रूप में विख्यात हैं । उनके शरीर की धवल कान्ति कैलाश पर्वत से भी अधिक है । उनकी आंखें मदमस्त तथा चञ्चल है, लाल और विशाल होने के कारण उदय कालीन सूर्य के समान दीखती हैं । नीचे मेघ समूह के समान नीले रंग का वस्त्र पहनते हैं तथा बहुत से आभूषणों से सज्जित हैं । शेष के रूप में वह पूरे संसार का भार बिना कष्ट के ही सहते हैं ।

बुद्धावतार

अध्यात्मध्यान बुद्धादर विधृत धृतिर्ध्वस्त शुद्धाध्मराध्व
श्रद्धाः क्रोधादिरोधा विधि विहित वधा साधुता सिद्ध बोधः
दध्याद् बुद्धा भिधानो मगध धरणी हल्लब्ध् जन्माभिदेवो
बाधाब्ध्योद्धार धूर्या धियमधन धनं धर्मधारां धरन्तः । ३९ ।

भगवान बुद्ध के रूप में हमारी बुद्धि को बढ़ायें । मगध देश के (लुम्बिनी के राजवंश) में जन्म होने पर भी वे दरिद्रों के धन थे । विपद् समुद्र से उद्धार के लिये उन्होंने उपयुक्त धर्म मार्ग बनाया । सदा आत्मा में लीन रहकर कभी धैर्य नहीं छोड़ा । उन्होंने वैदिक यज्ञ कर्मों में पशुओं की हत्या की स्पष्ट रूप से निन्दा की । यज्ञ में पशुओं की हत्या की तुलना में अपने ही भीतर काम क्रोध आदि

शत्रुओं का दमन श्रेष्ठ है यह प्रतिपादित किया।

कल्कि अवतार

निर्धूली धूमाधारा धरनि कर नभो मध्य विद्योतमानं
द्योत् प्राग् भार भास्वद् भ्रमकर कर युङ् मण्डलाग्र प्रचण्डः
स्वाधाराधीर घोरोद्धर तुरंग सुरक्षोदित क्षोणिरेणु
च्छन्नच्छायेण ईशोदिशतु दशको म्लेच्छविच्छेदकृच्छम्। ४०।

भगवान् अपने कल्कि अवतार द्वारा हमारा मंगल करें। धूलि, धूम और मेघ से शून्य स्वच्छ आकाश में दशम अवतार कल्कि का प्रकाश होगा। उनके शरीर के ऊपरी भाग से तेज निकलेगा (मुख और आंखो से अग्नि)। तथा हाथों में तीक्ष्ण खड्ग (करवाल) सूर्य की भ्रांति भ्रमण करेगा। उनके भंयकर रूप तथा भयानक अश्व की गति से पृथ्वी खाली हो जायेगी और म्लेच्छों का संहार होगा। उससे उत्पन्न धूलि से स्वयं सूर्य ढंक जायेगा।

जगन्नाथ स्तुति

मत्स्याद्या कल्कि रूपं दशविधतनू भाक् सिद्ध (२४) संख्यात्ममूर्त्तिद्
द्वात्रिंशद् धात्रधर्त्ता जगदुपकृतयेत्कृष्णनानावतारः
भागांशाद्यैर्विभेदैः परिचरित पद द्वन्द्व इन्द्राश्म कान्तिः
कृष्ण तृष्णा नृताब्धेः सजतुनृजनिजा दुष्कृता निष्कृति मे। ४१।

भगवान् में जगत के उपकार के लिये मत्स्य से कल्कितक १० अवतार, २४ अवतार और ३२ अवतार ग्रहण किये तथा आवश्यकता होने पर और भी अवतार लेते हैं। नीलमणि के समान श्याम तेज वाले उनके शरीर की भक्तगण पूजा करते हैं। अपने अलग अलग अंशों से विभिन्न अवतार लेते हैं। श्री कृष्ण आशा रूपी मिथ्या समुद्र तथा मानव जन्म के कारण जो दुष्कर्म करना पड़ता है, उससे उद्धार करे।

या लीला गोकुलान्त र्मधुपुरी रचिता या कृता द्वारवत्यां
क्षित्यां नित्यावतारैः प्रतियुग मुचिताः सुचिताः प्राङ्मुनीन्द्रैः
तास्ता विस्तारयन् यो वसति शिति गिरौ वेद वेद्योऽवतारी
नित्यो धाम्नि स्फुरतु मर रिपुः सोऽयमन्तः सदानः। ४२।

श्री कृष्ण अवतारी, मुरारि, तथा वेद द्वारा जानने योग्य है। उन्होंने कृष्ण वतार में गोकुल, मथुरा तथा द्वारका में जो लीलायें कीं उनका वर्णन व्यास आदि ऋषि पहले ही कर चुके हैं। अभी वही मुरारि श्री जगन्नाथ रूप में वैकुण्ठ समान नीलाचल धाम में विराजमान होकर भक्तों को प्रेरणा देते हैं।

योऽसौ सर्वत्र पूर्णोऽप्यसित गिरि दरी केशरीथोऽ प्यरूपः
पद्म प्रद्युम्नरूपोऽप्यणु रतनुतनू संभृताशेष लोकः।

निस्त्रैगुण्योऽगण्या मल गण निलयो वाङ्मनोऽतीत धामा ।
मादृक् चर्माक्षिलक्ष्यः स्फुरतु मनसि न श्चित्र सिन्धुर्मुकुन्दः । ४३ ।

जो सभी समय और स्थान में पूरी तरह व्याप्त होने पर भी नील गिरि की गुफा में सिंह के रूप में रहते हैं । नहीं होने पर भी वह कूर्म तथा प्रद्युम्न आदि अनेक रूप धारण करते हैं । वह अति सूक्ष्म होने पर भी उनके भीतर अनन्त लोक (१४ भुवन) हैं । वह प्राणी और मन द्वारा कल्पना से बाहर और निर्गुण होने पर भी निर्मल गुणों के आश्रय हैं । वही मुकुन्द हमारे चर्म चक्षुओं को दर्शन दें तथा मन में सदा प्रकाशित रहें ।

माधुर्यैश्वर्य पूर्णः शितिघर परम व्योम गोलोक नाथः
श्री भूलीलादि सेव्योदर कमल गदा चक्रभृद् वेणु पाणिः
भुक्तेर्मुक्तेश्च भक्ते र्वितरण निपुणश्चिद् घनानन्द मूर्तिः ।
सर्वव्यापी परात्मा स भवतु भगवान् ब्रह्म भूति र्गतिर्नः । ४४ ।

कृष्ण प्रेम विभूति से पूर्ण और ज्ञान आनन्द के भण्डार है । वह सर्वव्यापी, परमात्मा तथा गोलोक के नाथ हैं । लक्ष्मी, भूदेवी तथा लीला आदि देवियां सदा उनकी सेवा करती हैं । द्वि भुजरूप में वंशीधर तथा चतुर्भुज रूप में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं । वह रूप, मोक्ष, भोग और भक्ति सभी देने में दक्ष हैं । वही आनन्द मूर्ति ब्रह्ममय भगवान हमारी गति हों ।

राजन् प्रासाद् राजेवृजिन वनरुजा कुञ्जरः कुञ्जपुञ्जे
मञ्जौ सञ्जात शात ब्रजयुवती जनान् रञ्जितान् व्यञ्जयन्यः
गर्जत् पर्जन्य राजि प्रतिभट लवणाम्भोधिकूलं स्थनील
क्ष्माभृत् भूसार्व भौमः स भवत भविनां भूतये देवराजः । ४५ ।

कृष्ण सर्वोत्तम प्रासाद (मन्दिर) में विराजमान हैं । वह पाप रूपी रोग के वन के कुचलने के लिए हाथी हैं । मनोहर वनों में अनुरक्त ब्रज युवितयों का आनन्द उन्होंने बढ़ा दिया था । मेघ के समान गर्जन करने वाले लवण समुद्र के किनारे नीलाचल भूमि के सार्वभौम राजा हैं । वही देवराज जगन्नाथ संसारी लोगों को सम्पति दें ।

कंसाकर्ष क्रियाकृत् कनक वसनकः कुञ्जकेलि कलापी
केशोद्यत् केकिपिच्छ कृत कलिकलुष क्लेशलुकृतिः कृतज्ञः
कल्पाक्रान्त त्रिलोको कवलन कलित क्रूर कालाग्नि रुद्रः
कृष्णः कल्याण कारी भवतु कवि कुलोत्कीर्त्तितानेक कीर्तिः । ४६ ।

कृष्ण कंस को मारने वाले, सोने के रंग का पीताम्बर पहनने वाले, कुञ्ज में क्रीड़ा करने में मोर के समान तथा केशों में मोर पंख लगाये हैं । वह कलियुग का पाप और दुःख दूर कर भक्तों पर दया करने वाले (कृतज्ञ) हैं । कल्प के अन्त में वह भयंकर विनाश कारी अग्नि द्वारा (या कालाग्नि रुद्र रूप में) क्रूरता से

तीनों लोकों को समाप्त कर देते हैं। कवियों ने जिनकी अनेक कीर्तियों का वर्णन किया है वह कृष्ण हमारा कल्याण करें।

संख्येऽसंख्ये यदुः क्षेपण कुणपभुजां वक्षसिक्षिप्त वाणः,
पक्षे संख्येऽति दक्षेऽसुर वरतनुजे ख्यात सौख्योऽम्बु जाक्षः
अक्षेऽधिक्षे पलक्ष्ये कुरु कुल नृपतेः धर्मराजे कृपालू
रक्षे दक्षे मविक्षेपक उदधि तट क्षेत्रराट् क्ष्मापतिर्नः। ४७।

युद्ध में कृष्ण के वक्षस्थल पर अनेक राक्षसों ने तीर मारे हैं। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के चतुर पुत्र प्रह्लाद उनके भक्त थे, पुण्डरीकाक्ष कृष्ण ने उनको अनन्त वर दिये थे। द्यूत क्रीड़ा में धर्मराज युधिष्ठिर के अपमानित होने पर उन पर उन्होंने विशेष दया की थी। वही कृष्ण समुद्र तट पर पुरुषोत्तम क्षेत्र के स्वामी होकर हमारी रक्षा और अमंगल का नाश करें।

कारागारा नुकारा नुमित भव दवच्छेद नोद्यत्कुठारः
कालव्यालस्यमील ज्ञगद दगदः श्रीलनीलाद्रि सिंहः
माराकारावकारा नवरत रतनुर्भानु भूदण्ड खण्डी
सर्वागीर्वाण गर्वाचलपवि रवत प्राक्तनः पूरुषो नः। ४८।

कृष्ण संसार वृक्ष रूपी कारागार को काटने के लिए कुठार, काल रूपी सर्प के मुंह में पड़े संसार के लिए औषध तथा नीला चल के सिंह (स्वामी) हैं। उनका शरीर कामदेव से भी अधिक आकर्षक है। उन्होंने सभी दैत्यों के गर्व रूपी पर्वत को वज्र के समान काट दिया था। वहीं पुराण पुरुष जगन्नाथ हमारी रक्षा करे।

धीरा धीरादि सल्लक्षण चण रमणी वर्गसंगीत रागः
क्षाराम्भो राशि तीरावनि धरणिखर प्रस्तरागार सारः
स्वारान्निराजितांध्रि र्व्यूहदतलभुजः कुञ्जरापत्ति भेत्ता
भाराहारावतारो वितरतु नितरां श्रीधरः श्रीभरं नः। ४९।

श्रीकृष्ण ने द्वापर युग में उत्तम लक्षण युक्त धीरा अधीरा आदि नायिकाओं के साथ नृत्य संगीत आदि लीलायें की थीं। वह लवण समुद्र के किनारे नीलाचल शिखर के पाषाण मन्दिर में श्रेष्ठ देव के रूप में विराजमान हैं। इन्द्र आदि देवता उनकी चरण पूजा करते हैं। उनकी लम्बी तथा अतुलनीय भुजायें हैं। उन्होंने गज को विपत्ति से (ग्राह द्वारा पकड़े जाने पर) उद्धार किया था। वह पृथ्वी का भार कम करने के लिये सदा अवतार लेते हैं। वही अति सुन्दर जगन्नाथ हमारी श्रीवृद्धि का आशीर्वाद दें।

ह्लादिन्याह्लाद सीमार्बुद मदन रुचिः सन्धिनीसन्धितात्मा
संवित्सवातधामा निगम गण शिर स्तुत्यसत्य प्रभावः

शेषा शेषांग सद्म सुरा तरुतल भात्कल्पित प्रेमरूपः
श्रीकृष्णः प्रेम भक्तिं वितरतु हृदि नः सच्चिदानन्द रूपः । ५० ।

श्री कृष्ण ह्लादिनी शक्ति श्री राधिका के सुख की सीमा हैं । उनकी शोभा लाखों कामदेवों के समान है । वह योग शक्ति युक्त और योगेश्वर है । वेदों के प्रधान अंग उपनिषद् उनकी स्तुति करते हैं । उनका सत्य प्रभाव (वास्तविक वही है, बाकी अस्थायी) है । अनंन्त का पूरा अंग उनका निवास है । वह कल्प वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं तथा प्रेम मूर्ति है । वही श्री जगन्नाथ सच्चिदानन्द हमारे हृदय में प्रेम और भक्ति का वितरण करें ।

राधा साधारण श्रीकमन सुमनसं केकिपिच्छावतंसं
चन्द्रावल्यादिरागाच्छिदूर सुरनदी संग्राहागाध सिन्धुम् ।
वंशी संशीलिताख्यं मणिमया कल्पना कल्पयन्तुं
विद्युद् विद्योत् वस्त्रं नव जलद रुचिं श्री जगन्नाथ मीड़े । ५१ ।

श्री कृष्ण राधा को लक्ष्मी के समान देखते थे और उनके लिए कामदेव के समान थे । मोर पंख उनका अलंकार है । चन्द्रावली आदि गोप कन्याओं के गंगा के प्रवाह के समान सतत प्रेमधारा के लिये वे अथाह सागर थे । वह सदा वंशीवादन में रत थे । सोने के समान पीताम्बर और रत्न धारण किये रहते थे । वर्षा वाले मेघ के समान उनके श्याम शरीर पर पीताम्बर की शोभा बिजली के समान है । उसी कृष्ण रूप जगन्नाथ की मैं पूजा करता हूँ ।

यस्य श्री विग्रहोद्यद् द्युति रिति परम ब्रह्म वेदान्त वेद्य
कोटी ब्रह्माण्ड भारी परमशिव भवः श्रीमहाविष्णुरंशः
यस्य भ्रूक्षेप मात्रात्सृजति हरिहर ब्रह्मशक्रादिदेवान्
माया पायाद पायादय मुदित दयः पुण्डरीकेश्वरोऽस्मान् । ५२ ।

जिसके सुन्दर शरीर का प्रज्वलित तेज है, वेदान्त (उपनिषद) द्वारा जिसके परम ब्रह्म होने का ज्ञान होता है, जो करोड़ो ब्रह्माण्डों का भार उठाते हैं, जिनसे परमशिव (या मंगल) उत्पन्न होते हैं, जो स्वंय महाविष्णु हैं, जिनके भौंह हिलाने से ही माया या प्रकृति हरि, हर, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं की रचना होती है, वही दयालु हृदय कमल के ईश्वर मरण से हमारी रक्षा करें ।

कृष्ण कृष्णाम्बुधिष्ण्याम्बुज चरण रण क्षीण गीर्वाणशत्रो
कृष्णाकृष्णादि तृष्णा हरण रणरण श्री तिरस्कार कारिन्
उष्णानुष्णांशु विस्मापन नयन युगाकार तारुण्य भारि
न्नस्मान् भीष्मादि कोष्मापह विहित महापातकान् पाहिपातात् । ५३ ।

हे कृष्ण ! तुमने क्षीर सागर को अपना घर बनाया है । तुम्हारे दोनों पैर कमल के समान हैं । तुमने युद्ध में देवताओं के शत्रुओं को नष्ट कर दिया है । द्रौपदी तथा अर्जुन का कष्ट तुम्हीं ने दूर किया था । तुम कामदेव की शोभा को भी

लज्जित करते हो। तुम्हारी दो आंखें सूर्य और चन्द्र के समान चमकती हैं। तुम सदा युवक रूप में हो। तुमने भीष्म और द्रोण आदि का गर्व (उष्मा) तोड़ा था। हम पापियों की पतन से रक्षा करो।

श्री राधाकान्त कान्तानन नलिन हरे रामकृष्णावतारिन्
गोविन्दानन्द कन्दाद् भुत गुण वितते श्रीपते नीप मालिन्
कंसारेऽसार संसार सार हर हरनुता पारकारुण्य सिद्धो
दुःखान्धोरुद्धतिं मे तनु दनुज रिपोऽनुग्रहप्रग्रहेण। ५४।

हे राधाकान्त, तुम्हारा मुख कमल के समान सुन्दर है। हे हरि, हे गोविन्द, तुमने राम और कृष्ण अवतार ग्रहण किया था। तुम आनन्द के आश्रय हो। तुममें अद् भुत गुण हैं। तुम लक्ष्मी के स्वामी हो। तुम्हारे वक्षस्थल पर कदम्ब फूलों की माला शोभित है। तुम कंस के शत्रु हो। इस असार संसार को ध्वंस करो। तुम असीम दया के सागर हो। तुम को शिव भी पूजते हैं। तुमने ही दैत्यों का नाश किया था। तुम अपनी कृपा रूपी रस्सी से मुझे दुःख रुपी कुँएं से निकालो।

पार्थानर्थ प्रमाथ प्रभित पृथुयशो मन्मथ प्रार्थ्यकान्ते
श्रीमन्नित्य स्थल स्थागम पथ पथिक प्रार्थतार्थामरेन्द्रो
शक्र प्रत्यर्थिपाथः पति मथन महामन्थ पृथ्वीधरान्तः
स्थानं नाथामि तीर्थाधिपतट वटयोः श्रीजगन्नाथ दुःस्थः। ५५।

हे जगन्नाथ, तुमने पाण्डवों का सभी कष्ट दूर किया। कामदेव रूप के लिए तुम्हारी प्रार्थना करता है। सदा लक्ष्मी के साथ अपने नित्य स्थल पर विराजमान हो। धर्म मार्ग में स्थित लोगों की कामना सूर्य करने के लिए तुम कल्पवृक्ष के समान हो। देव और असुरों द्वारा समुद्र मन्थन करने के समय आपने मथानी को कूर्म रूप से स्थिर किया था। मुझ दरिद्र को पुरी के कल्पवट की छाया में और समुद्र तीर पर स्थान दो।

दासी पाद रजां सिनिर्जर शिरोधार्याणि सुर्यात्मक
स्फूर्जद्दूर्ज सुदूत दर्पदमनी यत्रस्थितिः पापिनाम्
तत्रस्ता दसमोद्धर्व वैभववति क्षेत्रोत्तमे जातुमे
नैव श्रीपुरुषोत्तमे शिवतमे स्थातुं विरोगादयः। ५६।

जिस श्रीक्षेत्र के सेव की चरणधूलि को देव अपने सिर से लगाते हैं, जहां रहने से पापी भी यमदूतों के गर्व को खण्डित करते हैं उसी मंगलमय वैभवशाली पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहने पर मेरा मन सदा प्रसन्न रहे।

इत्युत्कलोज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूतः श्रीचन्द्रशेखर कृतौ गणिते ऽक्षिसिद्धे सिद्धान्तदर्पण उपाहित बाल बोधे कृष्णस्तुतिस्त्रधिक विंशइतः प्रकाशः

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राजकुल में उत्पन्न श्रीचन्द्रशेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा छात्रों की शिक्षा के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में कृष्ण स्तुति सम्बन्धी २३ वां प्रकाश समाप्त हुआ।

चतुर्विंशः प्रकाशः

उपसंहार वर्णन्

कौतुक पञ्जिका विधानम्

उपक्रमः स्वेष्टतमस्य विष्णोः स्तवादिनादौ रचितश्रुतस्य
तत्पादनत्योपनतस्य पूर्त्ति मथोप संहार ममुष्य कुर्वे । १ ।

मैंने अपने इष्टतम देव श्री जगन्नाथ (विष्णु) का स्तवन कर इस ग्रन्थ का आरम्भ किया था । अन्त में पुनःउनको प्रणाम कर इस ग्रन्थ का उपसंहार कर रहा हूँ ।

तस्यादितः कौतुक पञ्जिकाख्यं वक्षामि किञ्चिद् गणितं मयायद् ।
कैशोर भाजां रचि पञ्जिकालिं दृष्टैव पित्रा लिखितां प्रयत्नात् । २ ।

ग्रन्थ समाप्त करने से पहले कौतुक पञ्जिका नाम से कितनी गणित विधियां मैं कहूंगा । मेरे पिता ने बहुत परिश्रम कर बहुत सी पाञ्जी बनायी थी । मैने युवावस्था में इन्हें देखकर यह कौतुक पञ्जिका तैयार की थी ।

कौतुक पञ्चिका

पञ्चांगपाञ्चीं प्रविलोक्य चैकामन्यां ततः कल्पयितुंक्षमः स्यात्
जनो धनुर्ज्या पदकाद्यविज्ञो यथा तथायं क्रियते प्रकारः । ३ ।

चाप गणित (ज्या, कोटिज्या आदि) बिना जाने केवल पुरानी पाञ्जी (पञ्चाग) देखकर जिस विधि से नयी पांजी बनायी जा सकती है, वह विधि कर रहा हूँ ।

कुवासरा नागशराग्नि (३५८) तुल्या नागेन्दु नाड्योरस भू (१६) विनाड्य
कृतांगरामै (३६४) स्तिथिभिः समाप्ताः स्युर्मन्द केन्द्रौजपदान्तगेऽर्के । ४ ।

अपने मन्दोच्च से सूर्य पूर्व या पीछे के पदान्त में रहने पर उस वर्ष के सावनदिनों की संख्या ३५८।१८।१६ होगी । इतने दिनों में ३६४ तिथि या चन्द्र दिन समाप्त होंगे ।

पलैस्त्रिभि (३) र्विश्व (१३) मितैश्च दण्डे
र्युक्तानिपूर्वोक्त महीदिनानि । ३५८।१३ । ३ ।
ऋक्षैश्चतुः पञ्चगुणैः (३५४) समाप्तं
यान्त्यत्र नेष्टं रवि मन्द केन्द्रम् । ५ ।

३५८।१३।३ सावन दिनों में ३५४ नाक्षत्र दिन होते हैं । अतः चन्द्र मन्द केन्द्र की आवश्यकता नहीं है ।

कुवासरास्ते (३५८) सदलेन्द्र (१४।३०) नाड़ी
युक्ता खनागज्वलनैः सहार्द्धैः (३८०)

योगैः समाप्तिं खलु यान्ति मन्द
केन्द्रौज पादान्त गते खरांशौ । ६ ।

३५८।१४।३० सावन दिन में ३८० १/२ योग होता है । यह सब मन्द केन्द्र से विषम पादान्त में रवि रहन से होता है ।

तिथ्यर्द्धके यत्र यदिष्ट मेतत् संवत्सरान्ते करणं प्रमेयम्
नक्षत्र भोगांघ्रि विवेचनेन नवर्क्षपादान्त कराशयः स्युः । ७ ।

जिस तिथिअर्द्ध में जो करण है, एक वर्ष बाद उसी तिथि के उसी अर्द्ध में वही करण फिर होगा । नक्षत्र के चार पाद करने पर प्रत्येक राशि में ९ नक्षत्र पाद होंगे ।

पूर्णेष्वतो द्वादशसु क्षपेश मासेषु यद्यन्ति भिभाद्यमिष्टम्
तत्पूर्व वर्षे हि तिथिः कृतो (४) ना ग्राह्या
गुणो (३) नं भमथापि योगः । ८ ।

१२ चान्द्र मास पूर्ण होने पर अर्थात् ३५८ सावन दिनों में (एक सौराब्द के अन्तः पात ३५८ सावन दिनों में) चान्द्र वर्ष की ४ तिथि अधिक होगी । पूर्ण भगण का ३ नक्षत्र तथा पूर्ण योग में

सार्द्धद्वयो (२ १/२) नः परिगृह्यतां तद् ग्राह्यर्क्षतिथ्यन्त त एव देयाः
पुरोदितास्ता निजनाड़िकाद्या योगस्य मध्यादथ तत्तराढ्याः । ९ ।

(तिथि नाड्यः (१८।१६ भनाड्यः १३।३ योगनाड्यः १४।३०)

२ १/२ योग अधिक होता है । पूर्व वर्ष में जो तिथि आदि ग्रहण करने से वर्तमान वर्ष की इष्ट तिथि होती है । उसी को ही ग्राह्य तिथि आदि कहते हैं। ग्राह्य नक्षत्र में १८।१६ नाड़ी, ग्राह्य तिथि में १३।३ दण्ड तथा ग्राह्य योग में १४।३० दण्ड जोड़ेंगे ।

तिथ्यादयः षष्टि घटीभ्य ऊना भवन्ति चेदिष्ट तमास्तदैकः
ग्राह्ये दिने वार इहैव देयो द्वौषष्टिदण्डाधिकता पिचेत्तौ । १० ।

यह सब योग करने पर फल यदि ६० दण्ड से कम हो तो ग्राह्य दिन में एक एक वार जोड़ना होगा । फल ६० दण्ड से अधिक होने पर २ वार जोड़ा जायेगा ।

तद् ग्राह्यतिथ्यां तिथयश्चतस्रो योज्याश्चतस्रः किलतारकायाम्
योगे च सार्द्धद्वयमेवमिष्ट तिथ्यादयो ग्राह्यत उद् भवन्ति । ११ ।

फल की ग्राह्यतिथि में ४ तिथि, नक्षत्र में ४ तारा तथा योग में २-१/२ योग जोड़ा जायेगा । इसके प्रकार ग्राह्य तिथि आदि से इष्ट तिथि आदि हो जायेगा ।

मासेऽत्रपक्षे ऽत्र तिथिर्मदिष्टा की दृश्य मुष्यां कथमृक्षयोगौ
इतिस्थिते प्रश्न विधौ तिथिः सा पञ्चांग मुख्या प्रतिभाति यस्मात् । १२ ।

इस मास के इसी पक्ष में (अर्थात् चैत्र आदि मास में शुक्ल या कृष्ण पक्ष में) मेरी इष्ट तिथि क्या होगी ? इसी तिथि में पुनः नक्षत्र और योग क्या है ? इस प्रकार प्रश्न हो सकता है। पञ्चांग में तिथि ही प्रमुख होने के कारण

तद् यत्र घस्त्रे भवतीष्टतिथ्या पूर्त्तिर्यदृक्षायमिहान्तमेति
तदिष्टमस्मात् क्वचिदेक योगो ग्राह्यो क्वचिच्चैक वियोगइष्टः । १३ ।

सौर मास के जिस दिन इष्ट तिथि पूरी होगी, जो नक्षत्र या योग इस तिथि में समाप्त होगा उन सबको इष्ट तिथि आदि मानना होगा। इस इष्ट तिथि के अनुसार ग्राह्य दिन में एक दिन जोड़ना या घटाना पड़ेगा।

अष्टाग्नयो (३८) नागरसा (६८) गजाश्वा (७८)
नागर्त्तवो (६८) नागगुणा (३८) विनाड्यः
देयास्तिथावेष्ट तमे क्रियादि
मासेषु पञ्चस्व मुना क्रमेण । १४ ।

मेस से आरम्भ सिंह तक ५ मास में इष्ट तिथि में क्रमशः ३८, ६८,७८,६८ और ३८ कला (पल) जोड़ना होगा।

हेयास्तुला दिष्वथ योग इष्टे प्रोक्तषु मासेषु धनर्ण वाम्यात्
सूक्ष्मागृहाष्टा दश भाग केऽर्केऽन्यत्रानुपातान् न तुभे क्रियेऽयम् । १५ ।

किन्तु तुला आदि ५ मासों में इष्ट तिथि से क्रमानुसार इसे घटाना होगा। यह व्यवस्था इष्ट तिथि में होगी। राशि के १८ अंश में सूर्य रहने पर यह कला सबसे अधिक होने के कारण अन्य अंशों के अनुपात के अनुसार योग या घटाव विकला निकालना होगा। इस विकला जोड़ने घटाने का प्रयोग नक्षत्र आदि में नहीं होता है।

अथोद्धृतो भाविातिथित्तयर्द्धि
कालः क्रमान्माः सुधनुर्मुखेषु
तिथी (१५) न्द्र (१४) विश्वा (१३)
र्यम (१२) रुद्र (११) काष्ठा (१०) गो (९)
दिङ् (१०) महेशो (११) र्यम (१२) विश्व (१३) शक्रै (१४) । १६ ।

धनुमास से आरम्भ कर १२ मासों का तिथि क्षय और वृद्धि काल क्रमशः इस प्रकार है। धनु (१५) मकर (१४) कुम्भ (१३) मीन (१२) मेष (११) वृष (१०) मिथुन (९) कर्क (१०) सिंह (११) कन्या (१२) तुला (१३) वृश्चिक (१४)

तत्तत् फलं स्वेष्ट तिथावृणाढ्यं कार्यंक्षयर्ध्योरथ भक्षयर्ध्योः
खसूर्य भागोज्झित युग् भमिष्टं स्फुटं भवेतच्चर कर्मवक्ष्ये । १७ ।

इष्ट तिथि में जोड़ने या घटायेंगे। नक्षत्र क्षयवृद्धि काल का १/१२० वां भाग भी उसी क्रम से घटायेंगे या जोड़ेगे। इससे इष्ट नक्षत्र स्फुट होगा। तिथि आदि

का चर कर्म कहा जा रहा है ।

*सप्तोनिते ग्राह्य दिने दिनार्द्ध यत्स्या त्तदेवेष्ट दिनेऽब्दतः स्यात्
तदन्तरं यद्दिन सप्तकोत्थं तद् याम्य सौम्यायन योः क्रमेण । १८ ।

ग्राह्यदिन से ७ घटाने पर जो होगा उसी दिन का दिनार्द्ध इष्ट दिन के दिनार्ध के बराबर होगा । अतः ७ दिन (३६५-३५८) सम्बन्धी दिनार्द्ध अन्तर को दक्षिण उत्तरायण क्रम से तिथि, नक्षत्र और योग में जोड़ना या घटाना पड़ेगा ।

तिथ्यादिषु क्षेप्यमृणं विधेय मित्थं स्फुटं स्थूलमत प्रसिद्धम् ।
तिथ्यादिकं सूक्ष्ममितोऽपि कल्प्यं पूर्वोक्तरीत्यामृदुतुङ्ग बोधात् । १९ ।

इतना करने से प्राचीन सौर आदि मतों के अनुसार तिथि आदि स्फुट होगा । स्थूल मत से निकाले तिथि आदि से मन्दोच्च आदि के अनुसार पूर्वोक्त रीति से सूक्ष्मतिथि आदि की कल्पना करनी होगी ।

स्याद् ग्राह्य तिथ्यादि यदीह सूक्ष्मं स्थूली कृतिस्तस्य विधातु मिष्टा
व्यस्तेतु तुंगान्तर पाक्षिकाख्ये कार्ये फले तत्र पुनः प्रयासात् । २० ।

यदि ग्राह्य तिथि आदि सूक्ष्म है तो इस विधि से उन्हें स्थूल करना चाहिये । तुंगान्तर और पाक्षिक फल निकाल कर विपरीत रीति से आदि में उसका संस्कार करना होगा । यह कष्ट साध्य होने पर भी आवश्यक है ।

नागर्त्तवो (६८) नागदिवाकराश्च (१२५) गोर्थेन्दवः (१५९)
षट्कनृपाः (१६६) शरेन्द्रोः (१४५) भुजंगनन्दाश्च (९८)
कलम्बरामाः (३५) क्रमोत्क्रमादाद्य तिथेर्विनाड्यः । २१ ।

प्रतिपदा से सप्तमी की तिथियों में क्रमशः ६८, १२५, १५९, १६६, १४५, ९८ तथा ३५ कला (पल) जोड़ेगे तथा उल्टे क्रम से अष्टमी से चतुर्दशीतक की तिथियों में घटायेंगे ।

कार्याधनर्णान्यथ बाहुलिप्ताः पूर्वोक्त तुंगान्तर केन्द्र जाताः
पक्षार्द्धजास्तत्त्वयमै (२२५) र्विभक्ता लब्धाः स्वखण्डास्तदनुक्रमोत्थाः । २२ ।

पक्षार्द्ध में पूर्वोक्त तुंगान्तर की भुजकला को २२५ से भाग देने पर फल तुंगान्तर केन्द्र का भुज खण्ड होगा ।

वृहस्पते र्मान्द्यफलस्य लिप्ता यास्ताः शरघ्नात् विहताविनाड्यः
ज्ञेयाः पराः पक्षदले पुनस्ता हताः क्रमादादि तिथे स्त्रि चन्द्रैः । २३ ।

इन खण्डों के अनुसार वृहस्पति का जितना मन्दफल कला होगी उसको ५ से गुणा कर २ से भाग देने पर पक्षार्द्ध की परा आदि होगी । इस परा आदि को प्रतिपदा से सप्तमी तक क्रमशः १३,

तत्वै (२-२५) कलम्बाग्निभि (३-३५) रर्थवेदै (४-४५)
दर्व्यर्थै (५-५२) नंगार्थै (६-५७) खरसै (७-६६०) र्विलोमम्
तथाष्टमीतः (६०।५७।५२।४५।३५।२५।१३)
खरसै (६०) र्विभक्ता वामं खतुंगान्तर वद् युतोनाः । २४ ।

२५,३५,४५,५७,६० से गुणा करेंगे । अष्टमी से चतुर्दशी तक क्रमशः ६०,५७,५२,४५,३५,२५,१३ से गुणा करेंगे । सभी फलों में ६० से भाग देने पर जो फल होगा उसे तुंगान्तर फल के समान विपरीत रीति से सूक्ष्म फल में संस्कार करने से स्थूल तिथि हो जायेगी ।

ग्राह्य इतिस्युस्तिथयो भमेवं तिथ्यन्त पूर्णं तदृणस्वनाड्यः
विश्वां (१३) शहीनास्तिथि भान्तयोर्यत् कालान्तरं
यात मनागतं स्यात् । २५ ।

ठीक उसी प्रकार तिथि अन्त में जो नक्षत्र पूर्ण होगा उसी तिथि में जो घटाने या जोड़ने वाला दण्ड आदि होगा उसका १/१३ भाग कम कर व्यवहार करेंगे । तिथि अन्त में नक्षत्र पूर्ण नहीं होने पर तिथि और नक्षत्र के बीच के समय को

तद् घ्नं तिथि द्वन्द्व धनर्ण कालान्तरेण षष्ठ्याप्त मितैष्य दृष्ट्या
न्यूनाधिकं कार्यमथर्क्षकेषु ग्राह्येषु शोध्यः क्रमतो विनाड्यः । २६ ।

नक्षत्र से संबन्धित दोनों तिथियों के धन या ऋण कालान्तर से गुणा कर ६० से भाग देने पर गत नक्षत्र में योग या बाकी (गम्य) में घटायेंगे । ग्राह्य स्थूल नक्षत्र होगा ।

षड् बाहवः (२६) षण् निगमा (४६) स्त्रिबाणा (५३)
रसाब्धयो (४६) ऽङ्गाक्षि (२६) मितामृगादेः
मासेषुकर्कादिषु योजनीया
यथास्थिताः कार्मुक युग्मयोस्तु । २७ ।

ग्राह्य नक्षत्र में मकर से आरम्भ कर ५ मासों में क्रमशः २६, ४६, ५३, ४६, २६ पल (लिप्ता) घटाना पड़ेगा । कर्क आदि ५ मासों में इन्हें क्रमशः जोड़ना पड़ेगा । धनु और मिथुन मास में योग या घटाव नहीं होता है ।

योगेऽत्र तिथ्युक्त फलान्य गांश (७)
हीनानि कुर्याद् भ इवा नुपातम्
ग्राह्येभ्य इष्टानि पुरोक्त वत् स्युः
स्थूलानि सूक्ष्मी करणन्तु तेषाम् । २८ ।

विष्कुम्भ आदि योग निकालने के समय तिथि के लिये लिखे गये धन या ऋण फल से उसका १/७ भाग कर व्यवहार करेंगे । नक्षत्र के गत या गम्य भाग के समान गत या गम्य कालान्तर में अनुपात किया जायेगा । इस प्रकार ग्राह्यतिथि

आदि से पहले के समान स्थूल इष्ट तिथि आदि हो जायेगा ।

इहोक्त तुंगान्तर पाक्षिका भ्यं स्यादंगकानां धन हानि वाम्यात्
भानान्त कर्कादि मृगादि मासधनर्णता स्यादपि वैपरीत्यात् । २९ ।

इस स्थूल तिथि आदि को सूक्ष्म करने के लिए तुंगान्तर और पाक्षिक दोनों फलों से तिथि आदि में उल्टे क्रम से संस्कार (जोड़ या घटाव) करेंगे । नक्षत्रों का यह संस्कार कर्क और मकर से आरम्भ कर ५-५ मासों में क्रमशः जोड़कर या घटाकर विपरीत क्रम से होगा ।

ग्राह्येष्टमध्येत्वधिमास पातश्चेद् ग्राह्यमेवोत्तर मासिसर्वम् ।
रूपाद्रि रामा (३७२) स्तिथयोऽर्कवर्षे यद्यान्त पूर्तिसह षोड़शांशाः । ३० ।

ग्राह्य मास और इष्ट मास के बीच अधिमास पड़ने से अधिमास के अगले मास में तिथि आदि सभी ग्रहण किया जायेगा । इसका कारण एक सौर वर्ष में (३७२-१/१६) चान्द्र दिन या तिथि होती हैं । (३७२।३।४५)

शरांगरामाः (३६५) कुदिनानिदण्डाः पञ्चेन्दवः
(१५) पक्षगुणाः (३२) विनाड् यः
निर्यान्ति भानो र्भगणे ततोयत् वारेयदृक्षं प्रविशेत्सतत्र । ३१ ।

सूर्य के एक भगण पूरा होने में अर्थात्, एक सौर वर्ष में ३६५।१५।३२ सावन दिन होते हैं । जिस वार में जिस नक्षत्र में रवि जाता है । उस नक्षत्र का वही वार कहा जायेगा ।

पुनस्तदृक्षाभिगमे च वार एकः प्रदेयोघटिकाः परोक्ताः (१५।३२)
ताः षष्टि दण्डाभ्यधिका यदि स्युर्वारावभौ संक्रमणे तदिष्टे । ३२ ।

रवि पुनः उसी नक्षत्र में आने पर एक बार जोड़ना होगा तथा पूर्वोक्त भगण में सावन दिनों से अधिक १५।३२ दण्ड भी जोड़ना होगा । क्योंकि भगण पूर्ति सावन दिनों में ७ से भाग देने पर (१।१५।३२) शेष रहता है । यदि यह योग ६० दण्ड से अधिक होता है । (नक्षत्र प्रवेश समय + १५।३२ दण्ड) तो इष्ट संक्रान्ति या भगण आरम्भ संक्रान्ति में २ वार जोड़ना पड़ेगा ।

संक्रान्तितो यत्र दिने स्फुटार्को
यथा तथाब्दान्तर तद्दिने यः
लिप्ताभि रर्थेन्दुभि (१५) रष्टचन्द्र (१८)
विलिप्तिका भी रहितः स्फुटः स्यात् । ३३ ।

किसी संक्रान्ति के जितने दिन बाद रवि स्फुट होता है, अगले दिन उसी संक्रान्ति से उतने दिन बाद उससे (१५।१८) कला घटाने पर उस दिन का रवि स्फुट होगा ।

यद्राशि चार स्थिति (१५) दण्ड तोऽङ्गाद्
द्विराम (३२) संख्यैः पलकै र्युतेभ्य
तन्मास्यभीष्ट दिन एक हीने
प्राग् वर्षजात् स्पष्ट इनः पुरेव । ३४ ।

किसी मास की संक्रान्ति पिछले वर्ष की संक्रान्ति से १५।३२ दण्ड के बाद होगी। उस मास के अभीष्ट दिन में एक घटाकर पूर्व वर्ष के उसी समय के रवि से पहले की तरह रवि को स्फुट किया जा सकता है।

किन्तुत्रयाः प्रोज्झ्यतया निरुक्ता लिप्तादय
(१५।१८) स्ताः स्फुटसूर्यगत्याः
हताविभक्ताः खरसैः (६०) स्फुटाः स्युस्तदूनितः
सूक्ष्मइनोऽब्दतः स्यात् । ३५ ।

किन्तु यहां (१५।१८) कला घटाने को कहा गया है। उसको स्फुट सूर्य गति से गुणा कर ६० से भाग देने पर स्फुट होगा। उसी स्फुट कला आदि को पूर्व वर्ष के उसी दिन के सूर्य से घटाने पर इस वर्ष के इष्ट दिन का स्फुट सूर्य होगा।

ग्राह्यादिरर्कोज्झित एष्यघस्र सूर्यः स्फुटा भुक्ति रतोऽवशेषः
अत्येति दर्शं रविसंक्रमश्चेत्त दाधिमासः सुविधावगम्यः । ३६ ।

अतः आगामी दिन के स्पष्ट सूर्य से ग्रह्य दिन का सूर्य घटाने पर शेष सूर्य की स्फुट गति होगी। यदि रवि संक्रान्ति अमान्त के बाद हो वह मास अधिमास होगा।

भभुक्त नाड्योऽष्टशतो (८००) विनिघ्नाः साद्यन्त नक्षत्रघटी विभक्ताः
गतर्क्ष संख्याश्चततो गुणाढ्या भवन्ति विस्पष्ट सुधांशु लिप्ताः । ३७ ।

इष्ट नक्षत्र के गत दण्ड आदि को ८०० से गुणा कर उस नक्षत्र के भोग (आदि से अन्त तक) दण्ड आदि से भाग देने पर उस नक्षत्र का भुक्त (बीता हुआ) कला आदि होगा। ज्ञात नक्षत्र से पहले के नक्षत्र संख्या को ८०० से गुणा कर उससे ज्ञात नक्षत्र के भुक्त अंशादि को मिलाने से चन्द्र का स्फुट कला आदि होगा। कला में ६० से भाग देने पर अंश और उसमें १२ से भाग देने पर राशि होगी।

सहस्रनिघ्ना भ्रगजाष्ट पक्षाः (२८,८०,०००) साद्यन्त नक्षत्र पलै र्विभक्तः
फलं विधोर्भुक्ति रनेक वर्ष यातैष्यतिथ्यादि वदन्ति विज्ञाः । ३८ ।

(२८,८०,०००) में नक्षत्र की आदि और अन्त लिप्ता (चन्द्र की) से भाग देने पर चन्द्र की स्फुट गति होगी। विज्ञ गणक इस प्रकार अनेक वर्ष की गति और एष्य तिथि आदि जान सकते हैं।

अथेन्दु सूर्य ग्रह सम्भवाया चन्द्रार्क मानावगतेर हानि
आनीय वारैः परिशोधितानि स्वाभीष्ट पर्वानुगतानि तेभ्यः । ३९ ।

चन्द्र और सूर्य ग्रहण की सम्भावना जानने के लिए चन्द्र और सूर्य का स्फुट राशि आदि निकालना होगा । उसके लिए पूर्णिमा या अमावास्या (चन्द्र या सूर्य ग्रहण में) का अहर्गण निकाल कर उसे बार शुद्ध करेंगे ।

पातं स्वगत्या (३।१०।४८) परिकल्प्य पाता
तद् भार्द्धतो वाग्निकु (१३) भाग मध्ये
पक्षान्तजेऽर्क स्थित एव चन्द्र
ग्रहो भवेत्तत् क्रम भक्त पूर्वः । ४० ।

इस अहर्गण को दैनिक ३।१०।४८ कला गति से गुणा कर चन्द्र पात (राहु) की राशि ज्ञात होगी । अमान्त में सूर्य और पात से ६ राशि बाद की दूरी तथा पूर्णिमान्त में स्फुट चन्द्र और पात के बीच की पूरी १३ अंश से कम होने पर ग्रहण की सम्भावना रहती है । चन्द्र ग्रहण के बारे में पहले कहा जा चुका है ।

दर्शान्त काले क्रमतस्तु पूर्व पश्चान्नति त्र्यश विहीन युक्ते
तात्कालिक ग्लौदिगिषोस्त्रिभोन तनू नतज्या भ्ररसां (६०) शकस्य । ४१ ।

गणित से अमान्त काल निकालेंगे और उसमें लम्बन संस्कार करेंगे । लम्बन संस्कृत दर्शान्त काल का चन्द्र तथा उससे चन्द्र दिशा का शर निकालेंगे । वित्रिभ लग्न आदि निकाल कर उससे दृक् क्षेप निकालेंगे ।

दिग् भेद साम्योत्थ वियोग योगे सिद्ध स्फुटेषौ रद (३२) लिप्तिकोने
स्यात्सम्भवस्तिग्म रुचि ग्रहस्य ग्रासादिसर्वं गदितं पुरस्तात् । ४२ ।

शर और दृक् क्षेप का संस्कार कर स्फुट शर निकालेंगे । यह स्फुट शर ३२ कला से कम होने पर सूर्य ग्रहण की सम्भावना रहती है । उसके बाद, ग्रास, मोक्ष आदि निकालने की विधि पहले कही जा चुकी है ।

पर्वान्तमर्क क्रमणाद्दिनाद्यं यावत्प्रमाणं भवतीष्ट वर्षे
ग्राह्याब्द संक्रान्तित एव तावत् कालोत्थ भागैः स्फुटतारवीन्दोः । ४३ ।

इष्ट वर्ष में सूर्य संक्रान्ति से अमावास्या और पूर्णिमा तक जितना सावन दिन होगा ग्राह्यवर्ष में उसी संक्रान्ति सेउतने दिन बाद रवि और चन्द्र की गति निकाल और अमान्त पूर्णान्त रवि और चन्द्र में जोड़ने से रवि और चन्द्र स्फुट हो जायेगा । क्योंकि अमान्त में रवि और चन्द्र में की राशि आदि में समान होता है । तथा पूर्णिमा में ठीक ६ राशि का अन्तर होता है । (अंश आदि समान होते हैं ।

शरेन्दु (१५) भिर्बाणनृपैः (१६५) खनाग
चन्द्रैः (१८०) शरांकेन्दुभि (१९५) रभ्रदेवैः (३३०)
शराब्धि रामै- (३४५) खरसात्र यांशै (३६०)
रेतावतीभिस्तिथिभिः कदाचित् । ४४ ।

चान्द्रवर्ष में एक ग्रहण से १५, १६५, १८०, १९५, ३३०, ३४५ तथा ३६० तिथि

अन्तर से फिर ग्रहण हो सकता है ।

ग्रहात् पुनः प्रगहणान्तरं स्यात्ततस्ततस्ताभिरिति क्रमेण
पातर्क शीतां श्वधिमासविद्भि र्ज्ञेया ग्रहाद्या दशवत्सरान्तम् । ४५ ।

उसके बाद पुनः १५,१६५ आदि तिथि में इस प्रकार दस वर्ष में पुनः ग्रहण हो सकता है । यह राहु, चन्द्र, रवि तथा अधिमास के द्वारा समझा जा सकता है ।

ताराग्रहाणां समतैक वर्षे न स्याद्यतस्तद् बहुपञ्जिकानाम् ।
कार्यो बुधैः संग्रह एवमन्य कार्याणि सिद्धन्त्यपि साधुताभ्यः । ४६ ।

एक वर्ष में तारा ग्रहों (मंगल आदि) की समता नहीं आने के कारण (एक भगण पूर्ण नहीं होने के कारण) गणित पण्डितों को बहुत वर्षों की पञ्जिका रखनी चाहिये । इन पंजिकाओं से अनेक उपयोगी काम किये जा सकते हैं ।

सौरेण मानेन रदा (३२) ब्दतः प्राग् यथा कुजः सोऽ पि तथेष्ट वर्षे
चक्रे खनागेन्दु (१८०) कला भराढ्य एकादिराश्यन्त रितस्तु सूर्यात् । ४७ ।

वर्तमान सूर्य वर्ष के जिस मास के जिस दिन का मंगल स्फुट राशि आदि जितना है उस दिन के ठीक ३२ वर्ष पूर्व उस मास के उसी दिन मंगल का स्फुट राशि आदि वही था । (३२ वर्ष बाद भी वही होगा) वह सूर्य से १२ राशि पर रहनें पर १८० कला जोड़ना पडेगा ।

युतः कलादि र्दश ताड़िताभिः
कुबाहुभि (२१०) भै (२७०) रसवीतिहोत्रै (३६०) ।
गजाब्धिभिः (४८०) वह्निरसैः (६३०) कुनागैः (८१०)
स्ताभिः पुनः कार्मुक पञ्चकस्थे । ४८ ।

सूर्य से १,२,३ आदि राशि के अन्तर पर मंगल रहने पर क्रमशः २१०, २७०, ३६०, ४८०,. ६३० तथा ८१० कला मंगल में जोड़ना पड़ेगा । मंगल धनु से आरम्भ कर पांच राशियों में रहने पर

तस्मिन् क्रमात्पञ्चदशा (१५) ष्ट (८) पंच (५)
मातंग (८) तिथ्यं (१५) श समन्विता भिः ।
युग्मादि पञ्चर्क्ष गते तदंश (१५।८।५।८।१५।)
हीनाभिरे वं स्फुटता मुपैति । ४९ ।

क्रमशः १५,८,५,८,१५ अंश मंगल से घटाना पड़ेगा । इससे ३२ वर्ष बाद मंगल स्फुट हो जायेगा ।

विश्वा (१३) ब्दतः प्राक् शशिजो यथा भूत्तथेष्ट वर्षेऽ त्र कियान् विशेषः
गत्यन्तरेण स्फुट सौम्य मध्य भान्वोर्वसु (८) घ्नाग्नि (३) हृतेन चेषः । ५० ।

इष्टवर्ष के इष्ट सौर मास तथा इष्ट दिन का बुध का राशि आदि वही होगा

जो उसंसे ठीक १३ वर्ष पूर्व उसी मास के उसी दिन था। इस विषय में और भी कई बाते हैं। स्फुट बुध और मध्यासूर्य के गति अन्तर को ८ से गुणा कर ३ से भाग दें।

युतोनितः सूर्य गतेः ५९।८ स्वभुक्ति र्न्यूनाधिकत्वे सतु वक्रगश्चेत् तदात्मभास्वद् गति योग नाग (८) घाताग्नि (३) भागेन युतः स्फुटः स्यात्। ५१।

बुध की गति, ५९।९ से कम या अधिक होने पर इस फल को बुध के राशि आदि में जोड़ेगे या घटायेंगे। बुध वक्री होने पर स्फुट बुध और मध्यम सूर्य की गति योग को इसी प्रकार ८ से गुणा कर ३ से भाग देकर फल को वक्र बुध में जोड़ने से बुध स्फुट होगा।

वृहस्पतिर्द्वादश वर्षतः प्राग्
यथा यथा स्वार्क कलान्तरस्य
खार्काशं (१२०) युग्भिः खकुदृक् (२१०)
कलाभि स्ताभिः पुनः कर्कट पञ्चकस्थे। ५२।

वृहस्पति १२ वर्ष पहले जो था वही होगा। गुरु और सूर्य की अन्तर कला को १२० से भाग देकर फल को २१० कला में जोड़े। योग को वृहस्पति में जोड़े। पुनः वृहस्पति कर्क आदि ५ राशियों में होने पर

तस्मिन् सुधांशो (३३) घन (१७) रुद्र (११) मेघ (१७)
देवांश (३३) हीना मिरिहैव नक्रात्
मपञ्चकस्थे तुतदंश (३३।१७।११।१७।३३) युग्भिः
समन्वितः सन् स्फुटतां प्रयाति। ५३।

रवि और गुरु के अन्तर को क्रमशः ३३, १७,११,१७ और ३३ से भाग देकर फल को उस अन्तर से घटाकर शेष को वृहस्पति में जोड़ेगे। वृहस्पति मकर आदि ५ राशियों में रहने पर इस अन्तरफल को २१० कला में योग कर उसे पुनः गुरु से जोड़ने से वृहस्पति स्फुट होगा।

वर्षाष्टकात् प्राग् भृगुजो यथैव मिष्टाब्दके सौर दिने च तत्र
स्फुटस्व भुक्त्यर्यम मध्य भुक्त्यन्तरेण बाण (५) घ्न भुजो (२) द्दतेन। ५४।

इष्ट और वर्ष मास और दिन में शुक्र की राशि जो होगी वही ठीक आठ वर्ष पहले उसी मास और उसी दिन थी। शुक्र स्फुट गति और सूर्य की मध्यम गति के अन्तर को ५ से गुणा कर २ से भाग देंगे।

उनो युते भानुगतेः स्वभुक्तो न्यूनाधिकायां क्रमतोऽ नृजुश्चेत्
युत्याशर (५) घ्नाक्षि (२) ह्रतस्वभास्वद्
गत्यास्तदोनः स्फुटतां सगच्छेत्। ५५।

सूर्य मध्यम गति ५९।८ से स्फुट शुक्र गति कम या अधिक होने पर इस

लब्धि को स्फुट शुक्र में घटाने या जोड़ने से वह स्फुट शुक्र (इष्टवर्ष का) होगा शुक्र वक्री होने पर सूर्य मध्यम गति और शुक्र स्फुट गति के योग को ५ से गुणा कर २ से भाग देकर फल को शुक्र से घटाने पर स्फुट होगा ।

शनिः खरामा (३०) ब्द पुरोः यथासीत्
कि न्त्वात्स सूर्यान्तर लिप्तिकानाम्
खेनांश (१२०) युग्भिः शरवाजिराम (३७५)
लिप्ताभिराभिः पुनरत्र मेषात् । ५६ ।

शनि ३० वर्ष पूर्व जिस राशि अंश आदि में था इष्ट सौर वर्ष मास दिन आदि में वही होगा । मध्यम सूर्य और स्फुट शनि की अन्तर कला को १२० से भाग देकर फल को ३७५ कला में जोड़ेगे । योग को स्फुट शनि में जोड़ेगे ।

पञ्चर्क्ष संस्थे नख (२०) दिग (१०) श्व (७) दशा (१०)
नखां (२०) श संयोगवती भिरस्मिन्
तुलादि पञ्चर्क्ष गते तदंश (२०।१०।७।१०।२०)
हीनाभिराढ्यः स्फुट भाव मेति । ५७ ।

शनि मेषादि ५ राशियों में रहने पर स्फुट शनि और मध्यम सूर्य की अन्तर कला को क्रमशः २०,१०,७,१० और २० से भाग देकर फल को संस्कृत स्फुट शनि में जोड़ेगे । शनि तुला आदि ५ राशियों में होने से घटायेंगे । इससे शनि स्फुट होगा । (इष्ट वर्ष में) ।

अत्रार जीवार्क भुवां यदुक्तं सूर्यात् स्वलिप्तान्तरमेतदेव
न राशि षट्का दधिकं कदाचित्ततः परेचन्द्र दले धनं स्यात् । ५८ ।

मंगल, गुरु तथा शनि का सूर्य से अन्तर ६ राशि से कभी अधिक नहीं होगा । ६ राशि के बाद के चक्रार्द्ध में उसी लिप्तान्तर को जोड़ेगे ।

अहर्गणः स्वाग्निकृतेन्दु (१४३) भाग युक्तो नवेन्द्वा (१९) प्तइतः फलांशैः
उनो युतो ग्राह्यदिनस्य राहु रेष्ये गतेऽभिष्ट दिनेस्फुटः स्यात् । ५९ ।

ग्राह्य और इष्ट दिन के बीच का अहर्गण निकाल कर उसमें १४३ से भाग देंगे । लब्धि को उसी अहर्गण में जोड़ेगे । इस योगफल को १९ से भाग देकर लब्धि अंशादि को ग्राह्य दिन से इष्ट दिन बाद में होने पर घटाने से तथा पहले होने पर जोड़ने से चन्द्र पात (राहु) स्फुट होगा ।

दिनोच्चयः स्वाभ्रकृतोब्धि (४४०) भागयुक्तोनवा (९) प्ताश्चफलैर्लवाद्यै
युतोनितो ग्राह्य दिनेन्दुमन्द एष्ये गतेऽभीष्ट दिने स्फुटः स्यात् । ६० ।

अहर्गण में उसका १/४४० भाग जोड़कर ९ से भाग देंगे । फल को चन्द्र मन्दोच्च में ग्राह्य दिन से इष्ट दिन पहले होने पर जोड़ेगे तथा बाद में होने पर घटायेंगे । फल स्फुट मन्दोच्च होगा ।

किं वा नवाश्वै (७९) र्दिननाथ वर्षै
भौमश्चतुः षष्टि (६४) कलाधिकः स्यात्
बुधोऽगवेदै (४६) विधुदिक् (१०१) कलोनो
गुरुस्त्रिनागै (८३) कृत सप्त (७४) हीनः । ६१ ।

मध्यम मंगल ७९ सौरवर्ष में ६४ कला अधिक होता है । बुध ६४ सौर वर्ष में (१०१) कला कम होता है । गुरु ८३ सौर वर्ष में ७४ कला कम होता है ।

शुक्रस्त्रिसिद्धै (२४३) स्त्रिचतु (४३) ष्कलाढ्यः
शनिर्नवार्थै (५९) र्नगसायकाढ्यः (५७)
राहुस्त्रिनन्दै (९३) र्नख (२०) लिप्तिकोनः
शीघ्रोच्च शुक्रा वितरेऽत्र मध्या । ६२ ।

मध्यम शुक्र (२४३) सौर वर्षों में (४३) कला बढ़ता है । शनि (५९) सौर वर्षों में (५७) कला बढ़ता है । राहु (९३) सौर वर्षो में (२०) कला कम होता है। बुध और शुक्र का शीघ्रोच्च तथा अन्य ग्रहों के मध्यम मान ठीक आते हैं ।

तिथ्यादिषूक्ताः प्रति सौर मास्य यायाहृतिः स्वर्णविनाड़िकाप्ताः
ग्राह्येऽष्टघस्रार्क युगान्तरार्द्धयुक्तेष्टघस्रार्यम मासतःस्युः ६३ ।

सौर मास के तिथि नक्षत्र आदि के लिये जो भाग विधि या दण्ड जोड़ने घटाने के विषय में कहा गया है, उसे रखें । ग्राह्य तथा इष्ट दिन सम्बन्धी स्पष्ट सूर्य के अन्तर के आधे को जोड़ने पर इष्ट दिन का सूर्य जिस राशि में जायेगा उसी मास से उन तिथियों की गिनती होगी तथा अन्य संस्कार होंगे ।

ताराग्रहेष्वंशभिरेन्दु भान्वोः कला प्रभेद स्तिथि योग भेषु
फल प्रभेदोऽत्र बुधैर्नगण्यः कृतिर्मदीया यद सावपूर्वा । ६४ ।

कौतुक पंजिका में मंगल आदि तारा ग्रहों में अंश की त्रुटि हो सकती है । चन्द्र, सूर्य में कला का अन्तर तथा तिथि योग और नक्षत्र में लिप्ता का अन्तर विज्ञ गणक नगण्य मानेंगे ।

स्नानादि योगां श्चिरकालतोऽस्या भविष्यतो ज्ञातुमलं नरः स्यात्
मृषाप्यतः कौतुक पंजिकेयं महोपकाराय सतांसदास्ताम् । ६५ ।

पहले किसी ने इस प्रकार की कौतुक पंजिका नहीं बतायी थी । लोग इससे आगामी तीर्थ स्नान आदि योग बहुत पहले जान णयेंगे । अतः यह कौतुक पंजिका स्थूल होने पर भी इससे सज्जनों का बहुत उपकार हो यह मेरी इच्छा है ।

सलक्षणोदाहरणं वितत्य सिद्धान्त मध्येऽत्रकुतूहलाय
उद्देश्यतो भूय उदीर्यतेऽसौयतोऽतिवेशाद् विषय ग्रहः स्यात् । ६६ ।

इस सिद्धान्त दर्पण में उदाहरण के साथ अनेक लक्षण विस्तार से दिये गये हैं । तथापि इसके विषय वस्तु को शीघ्र जानने के लिए उद्देश्य से संक्षेप में सभी

बातें पुनः कही जा रही हैं ।

प्रोक्तं प्रकाशे प्रथमे प्रमाणं त्रुट् यादि कालस्य लयान्तिमस्य
सिद्धान्त सल्लक्षण सृष्टि काल सहांग चक्राणि च सप्रशंसम् । ६७ ।

प्रथम प्रकाश में ये विषय है- त्रुटि आदि से आरम्भ कर प्रलय के अन्त तक का काल मान, सिद्धान्त का लक्षण, सृष्टिकाल, वेद उसका अंग विभाग, उसकी प्रशंसा ।

संख्या द्वितीये भगणेत्करस्य कल्पाब्दमास द्युमिति निरुक्ता
नभश्चराणां दिन भुक्ति लिप्तास्तत्साधनं पर्ययघस्त्रकृप्ति । ६८ ।

द्वितीय प्रकाश में ये विषय हैं । ग्रह उच्च, और पात आदि की भगण संख्या, कल्प में वर्ष, मास और दिन की संख्या, ग्रह उच्च और पात आदि की दैनिक मध्यमगति कला और उसे निकालने की विधि, भगण का दिन परिमाण ।

उक्त स्तृतीये कुदिनौघ इष्टे दिनाब्द मासाधिप मध्य खेटा
जैवास्तथाब्दा द्विविधा ग्रहादि ध्रुवा द्युषत्पात मृदूच्चहाराः । ६९ ।

तृतीय प्रकाश के विषय हैं-इष्ट अहर्गण निकालने की विधि, दिन, मास, वर्ष आदि के अधिपति निकालने की विधि, मध्यम ग्रह, बार्हस्पत्य वर्ष, ग्रह उच्च और पात का ध्रुव तथा उच्च पात का हार ।

तुर्ये महीवेष्टन देश नाड़ी वार प्रवृत्तीष्ट धनर्ण लिप्ताः
भुजान्तराख्या वदयान्तराख्या श्चरोद् भवा सत्पदकं ध्रुवादौ । ७० ।

चतुर्थ प्रकाश में भू परिधि, देशान्तर दण्ड, वार प्रवृत्ति और योग वियोग कला, भुजान्तर कला, उदयान्तर कला, चर कला और द्वापरान्त ध्रुवपदक हैं ।

इत्थं चतुर्भिर्गदित प्रकाशैर्मध्याधिकारः सुरवर्त्मगानाम्
अथ प्रकाश द्वितीयेन तेषा मुद्दिष्यते विस्फुटताधिकारः । ७१ ।

इस प्रकार प्रथम चार प्रकाशों में आकाश चारी ग्रहों का मध्यमाधिकार पूरा हुआ । इसके बाद २ प्रकाशों में ग्रह स्फुट करने के बारे में जो कहा गया है उसके बारे में संक्षेप में कहूँगा ।

पश्चात् पुरः खेट गतिः प्रमाणं तदुच्च पातोत्थ पृथगगति त्वम्
ज्या पञ्चमे दोः फल भुक्ति खण्डाः परिध्युपात्तास्तिथि भादि सर्वः । ७२ ।

पंचम प्रकाश में ग्रहों की पूर्व और पश्चिम गति का मान, उच्च और पात के कारण ग्रहों का गति भेद, क्रम और उत्क्रम ज्या साधन, भुजफल निकालने के लिये गति खण्ड,. परिधि और उसकी मन्द और शीघ्र परिधि, तिथि और नक्षत्र आदि पंचांग कहा गया है ।

षष्टेऽर्क चन्द्रर्क्षज सूक्ष्मपंजी तिथ्यादिसन्धिः प्रतिमण्डलाद्या
चलांशकाः क्रान्तिमही द्युजीवाश्चराणि लग्ना विविधाश्चदेशैः । ७३ ।

षष्ठ प्रकाश में रवि, चन्द्र और नक्षत्र की सूक्ष्म पञ्जिका, तिथि, नक्षत्र और राशि की सन्धि, वृत्त और प्रतिवृत्त, अयनांश, शीघ्र फल, क्रान्ति ज्या, द्युज्या और भूज्या, चर और स्थान विशेष का लग्न कहा गया है ।

दिग्भूमि शुद्धिर्भुजकोटिकर्ण लम्बाक्ष काग्राः सममण्डलाद्याः
दिग् देश काल स्फुट सूर्य बोधो ना सप्तमे कोण भवः करण्याः । ७४ ।

७ म प्रकाश में दिग् और भूमि शुद्धि, भुज कोटि और कर्ण, लम्बज्या, अक्षज्या और अग्रा, सममण्डल आदि वृत्त, दिग और देश समय और स्फुट रवि निकालना, करणी, कोण शंकु आदि कहा गया है ।

अथाष्टमे सूर्य विधूक्ष माभा मानश्रुतीषुस्थिति मर्द्दकालै
चन्द्रग्रहोक्ति र्वलने सयुक्तो चान्द्रंदिनं ग्रास ज वर्णभेदाः । ७५ ।

अष्टम प्रकाश में, सूर्य, चन्द्र, भूछाया बिम्ब परिमाण, रविचन्द्र मन्दकर्ण, शर स्थिति, मर्द्दकाल और इन सबके द्वारा चन्द्रग्रहण, युक्ति सहित आयन औरर आक्ष वलन चान्द्र दिन तथा विभिन्न ग्रास के बारे में कहा गया है ।

युक्ति र्नते वित्रिभ लग्न शंकोर्द्विधोदितं लम्बन मिन्दु भान्वोः
नतिस्तमो मानभिदा नरोत्थाग्रहः स्वराशोर्नवमेकिलेति । ७६ ।

नवम प्रकाश में नति, वित्रिभ लग्न का शंकु, रवि और चन्द्र का दो प्रकार का लम्बन, शंकु के अनुसार छाया मान में भेद तथा सूर्य ग्रहण के बारे में कहा गया है ।

कालोन्नतेर्मान भिदाथ वृत्त त्रयं सरण्या सवशात् समक्षः
लेखस्थलेच्छेदक नामधेया ग्रहस्य सिद्धो दशम प्रकाशे । ७७ ।

दशम प्रकाश में उदय आदि, उन्नत काल भेद से दृश्य बिम्ब मान में भेद, शर के अनुसार तीन वृत्तों के विषय में तथा ग्रहण का परिलेख दिया गया है ।

एकादशेखेचर तुल्यतादौ दृक् कर्मयुग्म स्फुट दिक् कलम्बैः
द्युष द्युति बिम्बमितेर्भिदोक्ता युद्धप्रभेदानलकादि सिद्धिः । ७८ ।

एकादश प्रकाश में स्फुट ग्रहों की समानता, ग्रह स्फुट करना और उससे आयन और आक्ष दृक् कर्म निकालना, ग्रह युति (योग), ग्रह बिम्ब के भेद, ग्रह युद्ध के भेद, ग्रहयुद्ध देखने के लिये नलिंका के व्यवहार के बारे में कहा गया है ।

भानां युति द्वादश के खगेन्द्रे र्ध्रुवाः शराश्चाकृतयो भ संख्याः
तद् बिम्बमानानि च योग ताराः सप्तर्ष्यगस्त्य प्रमुखाः प्रदिष्टाः । ७९ ।

बारहवें प्रकाश में नक्षत्र और ग्रह योग, ग्रह नक्षत्र का ध्रुव, दक्षिण और उत्तर शर, ग्रह नक्षत्र का आकार, तारा संख्या, नक्षत्र बिम्ब परिमाण, योगतारा, सप्तर्षि, अगस्त्य, लुब्धक आदि तारों के बारे में विशेष रूप से कहा गया है ।

त्रयोदशे प्राक् परदिग् गृहार्क्ष समुद् गमा स्तं गमने निरुक्ते ।
क्षेत्रांश कालांशक चक्र भागे र्भास्वन्निशेषा स्फुजितां प्रकाशाः । ८० ।

१३ वें प्रकाश में पूर्व और पश्चिम में ग्रह नक्षत्र का उदय और अस्त, क्षेत्रांश कालांश और मानांश तथा सूर्य चन्द्र और शुक्र के प्रकाश के बारे में विशेष वर्णन है ।

चतुर्दशे सूक्ष्म रवीन्दु मध्य कालां शतश्चन्द्रसमुद् गमास्तौ
चन्द्रक्षयो द्वौः परिलेख इन्दोः श्रृंगोन्नतिः साबुध शुक्रयोश्च । ८१ ।

१४ वें प्रकाश में स्पष्ट सूर्य और चन्द्र का कालांश से चन्द्र का उदय और अस्त, चन्द्र की क्षय और वृद्धि का परिलेख, चन्द्र श्रृंगोन्नति और बुध तथा शुक्र की श्रृंगोन्नति भी कहा गया है ।

पातो महान् पञ्चदशे निरुक्तो द्विरूप इत्थं नवभिः प्रकाशैः
त्रिप्रश्नमाधिकृतिभिः समाप्ता पूर्वे नभः सद् गणितारूय मर्द्धम् । ८२ ।

पन्द्रहवें प्रकाश में वैधृति तथा व्यतीपात इन महापातों की कथा है । इस प्रकार ९ प्रकाशों में त्रिप्रश्नाधिकार समाप्त हुआ है । यहां ग्रन्थ का पूर्वाद्ध समाप्त हुआ ।

अथोदिताः षोड़ शकेऽनुयोगाः स्थिराचला का क्षितिरित्यनेकैः
मतैः स्वसन्देह मुदस्तुमन्य कार्याण्यवैतुं सह वासिनाभिः । ८३ ।

सोलहवें प्रकाश में बहुत मतों का उल्लेख कर पृथ्वी की गति शीलता, सृष्टि रचना आदि के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये गये हैं ।

प्रत्युक्तयः सप्तदशे निरुक्ता बौद्धादि नानामत खण्डनोत्थाः
भ्रान्तिर्विधोः स ग्रह भास्वतश्च खान्तर्भुवः स्थानमवादि युक्त्या । ८४ ।

सत्रहवें प्रकाश में उक्त प्रश्नों के उत्तर, बौद्ध मत आदि का खण्डन, चन्द्र और अन्य ग्रहों के साथ सूर्य का भ्रमण तथा आकाश शून्य में पृथ्वी की स्थिति के बारे में कहा गया है ।

अष्टादशे सृष्टि रथस्वरूपाण्यकादिकानां गिरितुंगतोक्तिः
संस्थान मानानि भुवः सहाब्धेः सयुक्तिकक्षेत्र फल व्रजोक्तिः । ८५ ।

अठाहरवें प्रकाश में सृष्टि चर्चा सूर्य आदि ग्रहों का स्वरूप, पर्वत आदि की उच्चता, समुद्र सहित पृथ्वी का परिणाम और स्थिति, युक्ति के साथ वृत्त क्षेत्र तथा पृथ्वी पृष्ठ आदि का फल निकालने का वर्णन हुआ है ।

एकोन विंशे ग्रह भास्वकक्षा युक्तिः प्रमाणं श्रुति मण्डलानाम्
वर्षेश मासेशदिनेश होराधिपक्रमो दृष्टि कर प्रसाराः । ८६ ।

उन्नीसवें प्रकाश में ग्रह नक्षत्र और आकाश कक्षा का प्रमाण और उसकी युक्ति, ग्रह नक्षत्रों का कर्ण परिमाण, वर्ष, मास, दिन और होरा के अधिपतियों का क्रम, शंकु की दृष्टि सीमा और सूर्य किरण की प्रसार सीमा कही गयी है ।

विंशे द्विधा गोलक यन्त्र कृप्ति गोलार्द्ध चक्र प्रभृति प्रभेदैः
कालस्य राश्यादि मितेश्च सिद्धिः स्वयं वहत्यौ पयिक प्रकारः । ८७ ।

वीसवें प्रकाश में दो प्रकार के गोल यन्त्रों की कल्पना, गोलार्द्ध, चक्र आदि यन्त्रों द्वारा समय और ग्रह राशि आदि निकालना तथा स्वयं वह यन्त्र बनाने की विधि कही गयी है ।

गोलेऽनुमुक्तिर्गदितेक विंशे देवादिमानस्यतनोः स्फुटादेः ।
विकल्प चक्राण्युततोऽक्षि सिद्धाः स्ववासना भर्घन मूलकर्म । ८८ ।

इक्कीसवें प्रकाश में युक्ति के साथ गोल में देव और दानवों की अहोरात्रि का मान, मेष आदि लग्नों की स्फुटता और उसकी अनुभूति, विकल्प ग्रह भगण, प्रत्यक्ष होते वसन्त आदि ऋतु और घन मूल निकालने की विधि कही गयी है ।

षड् भिः प्रकाशै रिति संगृहीतो गोलाधिकार स्त्रिभिरुच्यतेऽथ
कालः संहार्थाः किल वत्सराद्या द्वाविंश के मानभिदार्क चाराः । ८९ ।

इस प्रकार ६ प्रकाशों में गोलाधिकार समाप्त हुआ । अब अन्तिम तीन प्रकाशों के बारे में कहा जाता है । बाइस वें प्रकाश में अर्थ के साथ संवत्सर, मास, तिथि, सौर सावन और चान्द्र, नाक्षत्र वर्ष आदि का परिमाण भेद तथा सौर संक्रान्ति आदि के बारे में कहा गया है ।

प्रोक्ता त्रयोविंशतमेस्तवालिः कालात्मनः कालनगेन्द्र भर्तुः
सवेश्मनः सावरणस्य पारावारादि साम्येन च दोष हत्यैः । ९० ।

२३ वें प्रकाश में पाप नष्ट करने के लिए काल रूपी नीलाद्रि नाथ मन्दिर सहित आवरण (आकाश) और समुद्र आदि सहित उनकी समानता दिखा कर स्तोत्र वर्णन किया गया है । इसमें पुरी श्री जगन्नाथ मन्दिर का विशेष वर्णन है ।

अन्त्ये चतुर्विंश इह स्फुटीऽभूदनुक्रमः कौतुक पञ्जिकादिः
कालाधिकारोऽयमगात् परार्द्धं गोलादिशब्दं गणितं यदाहुः । ९१ ।

अन्तिम २४ वें प्रकाश में कौतुक पञ्चिका और ग्रन्थ के विषयों का संक्षेप में वर्णन है । इस प्रकार तीन प्रकाशों में कालाधिकार समाप्त हुआ । इस प्रकार गोल अर्थात् गोलार्द्ध समाप्त हुआ । गणित और गोल इन दो प्रधान खण्डों का यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

केचित्पठिष्यन्त्युप संहृतिं तदुद्देशतो भूरिपदार्थ जातम्
मयोदितं राजकुमार कादेर्वेदांगपाठोत्थ फलाय सौख्यात् । ९२ ।

कोई कोई पूरा ग्रन्थ न पढ़कर केवल उपसंहार ही पढ़ते हैं । सुकुमार मति राजकुमार आदि धनाढ्य लोग सहज से ही वेद की आंख रुपी ज्योतिष तथा उसका फल जान पायें इसके लिये उपसंहार में सभी विषय संक्षेप में कहा गया है ।

दिग् देश कालावगतिः प्रकाशात् स्यात् सप्तमादेव तथापि धीरा
न लोक सिद्ध स्थल बोध हीना ग्रहादि संदर्शयितुं यदीशाः । ९३ ।

सप्तम प्रकाश में दिग्, स्थान और काल आदि के विषयों में विस्तार से कहा गया है । तथापि संसार में प्रसिद्ध सभी स्थानों को पण्डित लोग भी नहीं जान पाते हैं । अतः कहां पर कब ग्रहण आदि होगा यह बताने में वे असमर्थ हो जाते हैं ।

प्रधान नगरेष्वतो धरणि मध्य रेखा पुरः
परान्त रवि नाड़िकाः पल कलाश्च वच्मि क्रमात्
यतोविविध देशजां वदितुमेक देश स्थितः
प्रभूर्भवति पंजिकां चतुरिमाश्रयः साधकः । ९४ ।

अतः कल्पित भूमध्य रेखा (भारतीय ज्योतिष में उज्जैन से गुजरती देशान्तर रेखा को प्रधान या ०° माना जाता है। आजकल ग्रीनविचको ०° देशान्तर मानने से उज्जैन ७७° ५०' पूर्व देशान्तर पर होगा । भारतीय समय ८२° ३०' देशान्तर का मा॑ना जाता है जो ग्रीन विच (लण्डन) से ५ घंटा ३० मिनट अधिक है) से पूर्व और पश्चिम में स्थित प्रधान नगरों की देशान्तर कला और निरक्ष देश या विषुव वृत्त से उत्तर या दक्षिण अक्षांश कला क्रमशः कही जा रही है । इनके द्वारा चतुर गणक एक देश की पंजिका बनाकर उसमें थोड़ा अन्तर से दूसरे देश की पंजिका भी बना सकते हैं ।

भूमध्य रेखानुभव प्रसिद्धा अक्षांश लिप्ताः किल जिन दुर्गे (१)
तदुत्तरे मोर पुरे (२) ऽथ भोल्लपुरे (३) ततो रामगढ़े (४) ततश्च । ९५ ।

भूमध्य रेखा से अनुभव सिद्ध अक्षांश कला दूरी इन नगरों के बारे में कही जा रही है । (१) जिन दुर्ग या जूनागढ़ (२) उससे उत्तर में मोर पुर (३) भोलपुर (४) रामगढ

सौम्ये जलाबाद पुरे (५) क्रमेण
कृतांग सूर्याः (१२९४) कुनगाग्नि चन्द्राः (१३७१)
नागेक्षणेन्द्रा (१४२८) त्रिकृतांगचन्द्राः (१६४३)
शिलोच्चयांगाम्बर बाहवश्च (२०६७) । ९६ ।

तथा (५) जलालाबाद का उत्तर अक्षकला क्रमशः (१-१२९४), (२-१३७१), (३-१४२८), (४-१६४३), तथा (५-२०६७) है।

आकेन्द्रमेतत् समसूत्र निष्ठ भूमौ न देशान्तर संस्कृति स्यात्
प्राग् भूविभागे खलु गुर्जराष्ट्रे (६) देशान्तरं बाण मिता विनाड्यः। ९७।

ये ५ स्थान पृथ्वी के केन्द्र से एक ही उत्तर दक्षिण वृत्त या देशान्तर रेखा पर स्थित है। अतः इन स्थानों का देशान्तर संस्कार नहीं किया जाता है। यहां पर उज्जैन के बदले जूनागढ आदि से गुजरती देशान्तर रेखा से दूरी कही गयी है)। इस रेखा के पूर्व भाग में गुजरात (६) का देशान्तर ५ कला है।

तत्राक्षलिप्ता शरदन्त चन्द्राः (१३२५)
ऊनापुरे (७) ऽश्वाः (७) शरबाण सूर्याः (१२५५)
श्रीनर्मदा तोयधि संगमे (८) ऽक्षि
पक्षाः (२२) खशून्यज्वलनौषधीशाः (१३००)। ९८।

(६) गुजरात की अक्षकला उत्तर (१३२५) है। (७) उनापुर का देशान्तर (७) पूर्व तथा अक्षकला (१२५५) उत्तर है। (८) नर्मदा सागर संगम का देशान्तर (२२ कला पूर्व) तथा अक्षकला (१३०० उत्तर) है।

बोम्बायिपुर्यां (९) त्रिभुजा (२३) नगाग्नी
शा (११३७) श्चोदया स्र्यानपुरे (१०) खरामाः (३०)
खाद्रयब्धि चन्द्रा (१४७०) अथ षट्क् रामा (३६)
लाहोर के (११) पूर्ण खनन्द चन्द्राः (१९००)। ९९।

(९) बम्बई का (२३ कलापूर्व) तथा ११३७ कला उत्तर है। (१०) उदयपुर का ३० कलापूर्व तथा १४७० कला उत्तर है (११) लाहौर का (३६ कला पूर्व) तथा १९०० कला उत्तर है।

काश्मीरज श्रीनगरे (१२) त्रिवेदा (४३)
रामाशुगव्योम विलोचनानि (२०५३)
जम्बां (१३) त्रिवेदो (४३) द्विशरांकचन्द्रा (१९५२)
वस्वब्धयः (४८) खाक्षिनृंपा (१६२०) जयादौ। १००।

(१२) काश्मीर के श्रीनगर का ४३ कला पूर्व तथा २०५३ कला उत्तर है। (१३) जम्मू का ४३ कला पूर्व तथा १९५२ कला उत्तर है। (१४) जयपुर का ४८ कला पूर्व तथा १६२० कला उत्तर है।

पुर्यु (१४) जयिन्यां (१५) खशरा (५०) खनन्द
विश्वे (१३९०) ऽथ विन्ध्याचल मध्य देशे (१६)
द्युर्थाः (५२) खबाणाग्नि भुवः (१३५०) कुरुणां
क्षेत्रे (१७) रसार्थां (५६) खनवाद्रि चन्द्राः (१७९०)। १०१।

(१५) उज्जयिनी का ५० कलापूर्व तथा १३९० कला उत्तर है। (१६) मध्यदेश में विन्ध्याचल का ५२ कला पूर्व तथा १३५० कला उत्तर है। (१७) कुरुक्षेत्र का ५६ कला पूर्व तथा १७९० कला उत्तर है।

श्रीरंग के (१८) द्व्यंगमिता (६२) द्विवेदा
द्रयो (७४२)ऽर्थषट्का (६५) नगरामशैलाः (७३७)
कर्णाटके (१९) ऽथो गजसाह्वये (२०) ऽङ्ग
षट्का (६६) नगक्ष्माद्रि भुवः (१७१७) प्रदिष्टाः । १०२ ।

(१८) श्रीरंग (पट्टन) का ६२ कला पूर्व तथा ७४२ कला उत्तर है। (१९) कर्णाटक का ६५ कलापूर्व तथा ७३७ कला उत्तर है। (२०) गाजियाबाद का ६६ कला पूर्व तथा १७१७ कला उत्तर है। (दिल्ली के पास उत्तर प्रदेश में)

कुमारिका नामनि चान्तरीपे (२१)
गजर्त्तवो (६८) नाग भुजाब्धि (४२८) संख्याः
भूपालके (२२) नन्दशराः (६९) खखेन्द्राः (१४००)
ब्रजे (२३) खशैलाः (७०) खरसांग चन्द्राः (१६६०) । १०३ ।

(२१) कन्याकुमारी अन्तरीप का ६८ कला पूर्व तथा ४२८ कला उत्तर है। (२२) भोपाल का ६९ कला पूर्व तथा १४०० कला उत्तर है। (२३) ब्रज का ७० कला पूर्व तथा १६६० कला उत्तर है।

आग्रापुरे (२४) वेदनगः (७४) कुराम
भूपाश्च (१६३१) काञ्च्या (२५) त्रिगजाः (८३) खषट् षट् (६६०)
श्री वेंकटे (२६) खाष्ट (८०) नभोऽष्टशैला (७८०)
रामेश्वरे (२७)ऽगोष्ट (८७) रसार्थ बाणाः (५५६) । १०४ ।

(२४) आगरा का ७४ कला पूर्व तथा १६३१ कला उत्तर है। (२५) काञ्ची पुरी का ८३ कला पूर्व तथा ६६० कला उत्तर है। (२६) श्रीवेंकट (तिरुपति) का ८० कला पूर्व तथा ७८० कला उत्तर है। (२७) रामेश्वरम् का ८७ कला पूर्व तथा ५५६ कला उत्तर है।

तद्द्राविड़े (२८)ऽद्र्यष्ट (८७) खषट्क षट्काः (६६०)
बुन्देल के (२९)ऽगोष्ठ (८७) खखार्थ चन्द्राः (१५००)
श्रीनर्मदा सौम्यतटे जबल्लपुरे (३०) तथा भारतवर्ष मध्ये । १०५ ।

(२८) द्राविड़ मध्य का ८७ कला पूर्व तथा ६६० कला उत्तर है। (२९) बुन्देलखण्ड का ८७ कला पूर्व तथा १५०० कला उत्तर है। (३०) भारत वर्ष के मध्य में तथा श्रीनर्मदा के उत्तरी तट पर स्थित जबलपुर का

त्र्यंका (९३) शरांगाग्नि भुवो (१३९५)ऽथ चेन्न
(३१) पुर्यां नगांकाः (९७) कृतनागशैलाः (७८४)

कृष्णाब्धि संगे (३२) द्विदिशः (१०२) खबाण
नन्दा (९५०) अथो राय पुरे नवाशाः (१०९) । १०६ ।

(३०) जबलपुर का ९३ कला पूर्व तथा १३९५ कला उत्तर है । (३१) चेन्नपुर या चन्द्र पुर का ९७ कला पूर्व और ७८४ कला उत्तर है । (३२) कृष्णा सागर संगम का १०२ कला पूर्व तथा ९५० कला उत्तर है । (३३) रायपुर का १०९ कला पूर्व तथा

गोऽगारुणा (१२६९) राजमहेन्द्र पूर्यां (३४)
रुद्रेन्दवो (१११) द्विद्विदशः (१०२२) प्रयागे (३५)
चन्द्रेश्वराः (१११) खाक्षिशरेन्दव (१५२०) श्चा
योध्यापुरे (३६) रत्नपुरे (३७) ऽर्थ रुद्राः (११५) । १०७ ।

१२६९ कला उत्तर है । (३४) राजमहेन्द्री का १११ कला पूर्व तथा १०२२ कला उत्तर है । (३५) प्रयाग १११ कला पूर्व तथा १५२० कला उत्तर है । (३६) अयोध्या का ११५ कलापूर्व तथा तथा (३७) रत्नपुर का भी ११५ कला पूर्व –

शराभ्रभूपा (१६०५) क्षकलाः षडंग
विश्वे (१३६६)ऽथ गोदावरी सिन्धुसंगे (३८)
घनेन्दवो (११७)ऽङ्काभ्र दिशो (१००६)ऽथ काश्यां (३९)
सिद्धेन्दवो (१२४)ऽद्रीन्दुशरेन्दु (१५१७)संख्याः । १०८ ।

(३६) अयोध्या का अक्षकला १६०५ उत्तर तथा (३७) रत्नपुर का १३६६ कला उत्तर है । (३८) गोदावरी सागर संगम का ११७ कला पूर्व तथा १००६ कला उत्तर है । (३९) काशी का १२४ कला पूर्व तथा १५१७ कला उत्तर है ।

अथोदिता रायगढ़े (४०)ऽद्रिसूर्या (१२७)
नागाभ्रविश्वे (१३०८)ऽथविशाख पुर्याम् । (४१)
नागारुणा (१२७) द्व्यंगदिशः (१०६२) समल्ल-
पुरे (४२) खविश्वे (१३०) त्रिगजाक्षि चन्द्राः (१२८३) । १०९ ।

(४०) रायगढ़ का १२७ कला पूर्व तथा १३०८ कला उत्तर है । (४१) विशाखापत्तन का १२७ कला पूर्व तथा १०६२ कला उत्तर है । (४२) सम्वलपुर का १३० कला पूर्व तथा १२८३ कला उत्तर है ।

श्रीकाकुले (४३) रामगुणौ षधीशाः (१३३)
समुद्रनन्दाम्बर शीतभासः (१०९४)
नेपालमध्ये (४४) कृतरामरूपा (१३४)
स्यष्टाष्टभूपा (१६८८) श्च महेन्द्रशैले (४५) । ११० ।

(४३) श्रीकाकुलम का १३३ कला पूर्व तथा १०९४ कला उत्तर (४४) नेपाल मध्य का १३४ कलापूर्व तथा १६८८ कला उत्तर है । (४५) महेन्द्र गिरिका

गोविश्व के (१३९) खेन्द्रभुवो (११४०) गयायां (४६)
गुणाब्धि चन्द्रा (१४३) वसु अष्ट इन्द्राः (१४८८)
वरम्पुरे (४७) ऽयब्धि भुवो (१४३) ऽब्धिबाण
रुद्राश्च (११५४) गञ्जाम (४८) इषुश्रुतिक्ष्माः (१४५) । १११ ।

१३९ कला पूर्व तथा ११४० कला उत्तर है । (४६) गया का १४३ कला पूर्व तथा १४८८ कला उत्तर है । (४७) ब्रह्मपुर का १४३ कला पूर्व तथा ११५४ कला उत्तर है । (४८) गंजाम का १४५ कला पूर्व तथा

वेदांगरुद्रा (११६४) ऽथमाधवस्य
क्षेत्रे (४९) रसेन्द्रा (१४६) द्विभुजा...
नीलाचले (५०) दृग् तिथयो (१५२)ऽष्ट नाग
रुद्र (११८८) स्तथैकाम्रवने (५१) द्वितिथ्याः (१५२) । ११२ ।

११६४ कला उत्तर है । (४९) माधव क्षेत्र का १४६ कला पूर्व तथा १२२२ कला उत्तर है (५०) नीलाचल (पुरी) का १५२ कलापूर्व तथा ११८८ कला उत्तर है ।

(५१) एकाम्रवन भुवनेश्वर का १५२ कला पूर्व तथा

इन्द्रार्क लिप्ताः (१२१४) कटके (५२) तुसार्द्ध
दृग् बाण चन्द्रा (१५२ १/२) वसुदिग् द्विचन्द्राः (१२२८)
महानदी सागर संगमे (५३) भू
रसेन्दवो (१६१) विश्व भुजेन्दवश्च (१२१३) । ११३ ।

१२१४ कला उत्तर है । (५२) कटक का १५२ । ३० कला पूर्व तथा १२२८ कला उत्तर है । (५३) महानदी सागर संगम का १६१ कला पूर्व तथा १२१३ कला उत्तर है ।

बाले श्वरे (५४) रूपनृपा (१६१) द्विनन्द
पक्षेन्दव (१२९२) श्चैव जलेश्वरे (५५) तु ।
शरांगरुपाणि (१६५) च विश्वविश्वे (१३१३)
स्युमेदिनी (५६) तुर्यगषड्धरण्यः (१६७) । ११४ ।

(५४) बालेश्वर का १६१ कला पूर्व तथा १२९२ कला उत्तर है । (५५) चलेश्वर का १६५ कला पूर्व तथा १३१३ कला उत्तर है । (५६) मेदिनीपुर का १६७ कला पूर्व तथा

खार्थाग्निचन्द्रा (१३५०) अथवर्द्धमाने (५७)
द्र्व्यंगेन्दवः (१७२) खांकगुणेन्दवश्च (१३९०)
गंगाब्धि संगे (५८)ऽर्थघनाः (१७५) शराक्षि
विश्वे (१३२५) नवद्वीप पुरे (५९) द्र्यगक्ष्मा (१७७) । ११५ ।

१३५० कला उत्तर है। (५७) वर्द्धमान का १७२ कला पूर्व तथा १३९० कला उत्तर है। (५८) गंगा सागर संगम का १७५ कला पूर्व तथा १३२५ कला उत्तर है। (५९) नवद्वीप पुर (नदिया) का १७७ कला पूर्व तथा

कृताम्बरेन्द्राश्च (१४०४) कलिकतायां (६०)
कुभृद्घना (१७७) वेदशराग्नि चन्द्राः (१३४५)
बंगस्थ रंगाद्युपुरे (६१)ऽगनागः
चन्द्रा (१८६) रसाम्भोधि शरेन्दु संख्या (१५४६)। ११६।

१४४० कला उत्तर है। (६०) कलकत्ता का १७७ कलापूर्व तथा १३५४ कला उत्तर है। (६१) बंगाल के रंगपुर का १८६ कला पूर्व तथा १५४६ कला उत्तर है।

ढाकापुरे (६२) नन्द नवेन्दवश्च (१९९)
शरेक्षणाम्भः पति रात्रिनाथाः (१४२५)
श्रीहट्टके (६३) विश्वभुजाः (२१३ शरांक
वेदेन्दवो (१४९५) लोहित नाम नद्याम् (६४)। ११७।

(६२) ढाका का १९९ कलापूर्व तथा १४२५ कला उत्तर है। (६३) श्रीहट्ट (सिलहट) का २१३ कलापूर्व तथा १४९५ कला उत्तर है। (६४) लोहित नदी (अरुणाचल)

द्व्यब्धीक्षणा (२४२) न्यब्धिशरांग चन्द्रा (१६५४) इतीरिताभारतपूर्वभागे
कथ्यन्त एतत् पर भाग देशा भूमध्यरेखान्तिकतः क्रमेण। ११८।

का २४२ कलापूर्व तथा १६५४ कला उत्तर है। ये सब भारत के पूर्व क्षेत्र के स्थान हैं। अव भूमध्य रेखा (रामगढ़, जूनागढ़ आदि की देशान्तर रेखा) से पश्चिम के देशों का क्रम से अक्षांश देशान्तर कहा जाता है।

रणे (६५) भुजौ (२) खाम्बुधि वेद चन्द्राः (१४४०)
कच्चै (६६)ऽद्रयः (७) सर्पगजाग्नि चन्द्राः (१३८८)
सिन्धौ (६७) किलेन्द्राः (१४) खरसार्थ चन्द्राः (१५६०)
श्रीद्वारका (६८) काबुलयोः (६९) शरक्षमाः (१५)। ११९।

(६५) रण (कच्छ प्रान्त में) का २ कला पश्चिम तथा १४४० कला उत्तर है। (६६) कच्छ का ७ कला पश्चिमम तथा (१३८८) कला उत्तर है। (६७) सिन्धु का १४ कला पश्चिम तथा १५६० कला उत्तर है। (६८) द्वारका तथा (६९) काबुल दोनों का १५ कला पश्चिम

गजामरक्ष्मा (१३३८) श्वरसानखाश्च (२०६७)
स्थानाफ गान्यां (७०) नवभूमयः (१९) स्युः।
शरोमहीभृद् वसु भूमयश्च (१८७५)
नद्यब्धि संगे (७१)ऽब्धि भुजा (२४) घनेन्द्राः (१४१७)। १२०।

तथा अक्षांश क्रमशः १३३८ (द्वारका) तथा २०६७ (काबुल) कला उत्तर है। (७०) अफगानिस्थान का १९ कला पश्चिम तथा १८७५ कला उत्तर है। (७१) सिन्धु और सागर संगम का २४ कलापश्चिम तथा १४१७ कलाउत्तर है।

स देह यज्ञस्य (७२) नगाग्न्य (३७) श्च
भुजंगमातंग नभो भुजाश्च (२०८८)
प्राग् भारतस्याप्यथ ब्रह्म देश
मध्ये (७३)ऽद्रितत्त्वानि (२५७) गुणाभ्ररुद्राः (११०३)। १२१।

(७२) देह यज्ञ का ३७ कला पश्चिम तथा २०८८ कला उत्तर है। (७३) भारत के पूर्व में ब्रह्मदेश (बर्मा या म्याम्मार) के मध्य का २५७ कला पूर्व तथा ११०३ कला उत्तर है।

(७४) इरावती सागर संगमेऽस्या याम्येऽष्टवेदांक
(९४८) मिताक्षलिप्ते पारस्यके (७५) भारत पश्चिमस्थे
नगार्थ चन्द्रा (१५७) नखनन्द चन्द्राः (१९२०)। १२२।

(७४) इरावती और सागर का संगम ब्रह्मदेश के दक्षिण अर्थात् उतना ही २५७ कला पूर्व और ९४८ कला उत्तर है। (७५) भारत के पश्चिम में स्थित पारस्य (ईरान) का १५७ कला पश्चिम तथा १९२० कला उत्तर है।

आरब्यमध्ये (७५)ऽद्रिगुणे क्षणानि (२३७)
दिग् वासवा (१४१०) श्चाथ तुरुष्क भूमौ (७७)
नगाग्नि रामाः (३३७) खनगेन्दु पक्षा (२१९०)
याम्यस्थ लंकापुरी (७८) खाभ्रचन्द्राः (१००)। १२३।

(७६) अरब मध्य का २३७ कला पश्चिम तथा १४१० कला उत्तर है। (७७) तुरुष्क भूमि (तुर्की) का ३३७ कला पश्चिम तथा २१९० कला उत्तर है। (७८) दक्षिण में स्थित लंकापुरी (श्रीलंका) का (१००) कला पूर्व

प्राच्या विषष्योऽष्ट गजाब्धि (४८८) लिप्ता
वर्षोत्तरे हिन्दुकुशाद्रि मध्यो (७९)
नृपाः (१६) शरार्काक्षिमिता (२१२५) हिमाद्रोः (८०)
परेऽष्टरामाः (३८) कृतदिग् दृशों (२१०४)ऽशे। १२४।

तथा ४८८ कला उत्तर हैं। (७९) हिन्दुकुश पर्वत का मध्य १६ कला पूर्व तथा २१२५ कला उत्तर है। (८०) हिमालय का पश्चिमी भाग ३८ कला पूर्व तथा २१०४ कला उत्तर है।

पूर्वे (८१)ऽग्निसिद्धा (२४३) नगनाग भूपा (१६८७)
मध्ये (८२) शशीन्द्रा (१४१) स्त्रिगुणाद्रि चन्द्राः (१७३३)

श्रृंगस्य गौर्यादिकं शंकरस्या (८३)
ष्टाब्ध्यग्नि गोचन्द्र (१९३४८) करोच्चयस्य । १२५ ।

(८१) हिमालय का पूर्व भाग २४३ कला पूर्व तथा १६८७ कला उत्तर है। (८२) हिमालय का मध्य भाग १४१ कला पूर्व तथा १७३३ कला उत्तर है। (८३) इसकी चोटी गौरीशंकर (एवरेस्ट) की ऊंचाई (१९३४८) हाथ है।

खार्थेन्दवः (१५०) भ्राभ्रघना (१७००) नगेश
सौम्येह्रदे मानस नामधेये (८३)
षट्खेन्दवः (१०६) खाब्धि नाग चन्द्राः (१८४०)
सप्तांग षड् जिष्णु (१४६६७) करोन्नतेस्तु । १२६ ।

तथा स्थिति १५० कला पूर्व और १७०० कला उत्तर है। (८४) पर्वतराज के उत्तर में मानस नामक सरोवर १०६ कला पूर्व तथा १८४० कला उत्तर में स्थित है। इसकी ऊंचाई (१४,६६७) हाथ है।

कैलाश शैलस्य (८५) दिगिन्दवो (११०)ऽर्थ
शैलाष्ट चन्द्रा (१८७५) श्चतदुत्तरस्थे ।
देशे पुर स्तिब्बत नाम्नि (८६) राम
गोब्ज्याः (१९३) खबाणां क भुवो (१९५०)ऽथ चीने (८७) । १२७ ।

(८५) कैलाश चोटी का ११० कला पूर्व तथा १८७ कला उत्तर है। (८६) इसके पूर्व तिब्बत देश १९३ कला पूर्व तथा १९५० कला उत्तर है। (८७) चीन का मध्यभाग

त्रिनन्दरामाः (३९३) खरसाष्ट चन्द्रा (१८६०)
सौम्ये स्थितः तस्य चराजधानी (८८)
शून्याभ्रसिद्धा (२४००) अथ रूष मध्ये (८९)
त्र्यंकाब्धयः (४९३) पूर्णनवांकरामाः (३९९०) । १२८ ।

३९३ कला पूर्व तथा १८६० कला उत्तर है। (८८) इसकी राजधानी और उत्तर में अर्थात् ३९३ कला पूर्व तथा २४०० कला उत्तर है। (८९) रूस का मध्य भाग ४९३ कला पूर्व तथा ३९९, कला उत्तर है।

इत्येशियानाम महीमहांश
स्थानानि पश्चादि यूरोप नाम्नः
भागस्य मध्य (९०) परदिग् विभध्यः
सप्ताभ्र बाणाः (५०७) खधृतित्रि (३१८०) लिप्ताः । १२९ ।

ये सब एशिया महादेश के स्थानों का वर्णन है। इसके पश्चिम में यूरोप है। (९०) यूरोप के मध्य भाग की स्थिति ५०७ कलापश्चिम तथा ३१८० कला उत्तर है।

तत् पश्चिमे द्वीप मुदन्वदन्तरीं लडनामास्ति तदन्तरस्थे

पुरोत्तमे लण्डन नाम्न्य (९१) गाभ्र
शैलाः (७०७) खनन्दाभ्रगुणः (३०९०) प्रदिष्टाः । १३० ।

उसके पश्चिम में अति प्रसिद्ध इंगलैण्ड द्वीप है जिसमें लण्डन नाम का श्रेष्ठ नगर है । (९१) लण्डन ७०७ कला पश्चिम कथा ३०९० कला उत्तर है ।

तद् याम्यगेखण्ड इहीफ्रि काख्ये (९२)
सप्ताभ्रबाणाश्च (५०७) निरक्ष मन्ता ।
त्रयः कुभागा उदिताहि जम्बू
द्वीपस्य याम्यांशतयाः प्रसिद्धं । १३१ ।

उसके दक्षिण के खण्ड का नाम अफ्रीका है । (९२) अफ्रीका तट विषुव से ५०७ कला उत्तर है । इस प्रकार तीन महोदेशों के बारे में कहा गया । अफ्रीका जम्बू द्वीप के दक्षिण में प्रसिद्ध है ।

अमेरिका धो द्विविधोत्तरास्य
सौम्यांश (९३) भक्ता परदिग् विधष्यः
तन्मध्य एवाद्रि ख सप्त चन्द्राः (१७०७)
खखाभ्ररामा (३०००) अथदक्षिणस्याः । १३२ ।

पश्चिम दिशा में अमेरिका उत्तर और दक्षिण दो भागों में बंटा हुआ है । (९३) उत्तर अमेरिका का मध्य भाग १७०७ कला पश्चिम तथा ३००० कला उत्तर है । (९४) दक्षिण अमेरिका का

मध्ये (९४)ऽद्रि नागाक्षि भुवो (१२८७)ऽक्षलिप्ताः
सौम्य खदन्तेन्दव (१३२०) आसुराशेः
आष्ट्रेलियान्त (९५) स्त्रिभुजांग संख्याः (६२३)
प्राच्य खखार्थाक्षितयश्च (१५००) याम्याः । १३३ ।

मध्य भाग १२८७ लिप्ता पश्चिम तथा १३२० कला दक्षिण है । (९५) आस्ट्रेलिया ६२३ कला पूर्व तथा १५०० कला दक्षिण है ।

अथार्क सूक्ष्म ग्रहणानुभूत्यै-
रसन्निकृष्टेषु पुरेषु भूयः
लिखामि ताः सप्तगुणौषधीश (१३७)
बौद्धे (९६) खबाणेक्षणशीतभासः (१२५०) । १३४ ।

अब सूर्य ग्रहण का सूक्ष्म विचार करने के लिए निकटवर्ती (उड़ीसा के) प्रमुख स्थानों की भारतीय, रेखा से पूर्व तथा विषुव रेखा से उत्तर की दूरी कला में लिख रहा हूँ ।

(९६) बौद्ध का १३७ कला पूर्व तथा १२५० कला उत्तर है ।

मञ्जूषिकायां (९७) खकृतेन्दवो (१४०)ऽर्थ
विश्वेन्दवो (११३५)ऽथानुगुले (९८) कृतेन्द्रा (१४४)
सप्ताब्धि सूर्या (१२४७) नवदुर्गके (९९)ऽर्थ
शक्रा (१४५) नगाभ्रेक्षण रूप (१२०७) संख्याः । १३५ ।

(९७) मंजूषा (१४०) कला पूर्व तथा ११३५ कला उत्तर है । (९८) अनुगुल १४४ कला पूर्व तथा १२४७ कला उत्तर है । (९९) नयागढ़ (नवदुर्ग) १४५ कला पूर्व तथा १२०७ कला उत्तर है ।

खण्डादिसत्पत्तनके (१००)ऽङ्गशक्रा (१४६)
नृपाक्षिचन्द्रा (१२१६) अथ तालचेरे (१०१)
षड्जिष्णवो (१४६)ऽष्टेषु रुणाश्च (१२५८)
पारि द्वीपे (१०२)ऽद्रिशक्रा (१४७) विधुनागरुद्राः (११८१) । १३६ ।

(१००) खण्डपड़ा १४६ कला पूर्व तथा १२१६ कला उत्तर है । (१०१) तालचेर १४६ कला पूर्व तथा १२५८ कला उत्तर है । (१०२) पारीकुद (१४७) कला पूर्व तथा ११८१ कला उत्तर है ।

पुरेरणाद्ये (१०३)ऽद्रिकृतेन्दवो (१४७)ऽर्थ
पूर्णाक्षि चन्द्राः (१२०५) वृहदम्बिकायाम् । (१०४)
शैलाब्धि चन्द्राः (१४७) कृतनेत्र सूर्या (१२२४)
ढ़ेकादिनाले (१०५) खशरेन्दवः (१५०) स्युः । १३७ ।

(१०३) रणपुर १४७ कलापूर्व तथा १२०५ कला उत्तर है । (१०४) बड़म्बा १४७ कला पूर्व तथा १२२४ कला उत्तर है । (१०५) ढ़ेकानाल (१५०) कला पूर्व

वसुत्रि सूर्याः (१२३८) शरतद् भुवस्तु (१५५)
कोणार्क (१०६) एवाग्नि नवेश्वराश्च (११९३)
सुनिश्चिता याजपुरे (१०७)ऽष्टबाण ।
चन्द्रा (१५८) महीबाण भुजा धरित्रयः (१२५१) । १३८ ।

तथा १२३८ कला उत्तर है । (१०६) कोणार्क का १५५ कला पूर्व तथा ११९३ कला उत्तर है । (१०७) याजपुर का (१५८) कला पूर्व तथा १२५१ कला उत्तर है

मयूर भञ्जे (१०८) ऽष्टशरेन्दवो (१५८)ऽर्क
रामेन्दवो (१३१२) नीलगिरौ (१०९) खभूपाः (१६०)
नगाष्टसूर्य (१२८७) इतिसत्सुखार्थम्
नवाधिकं स्थान शतं मयोक्तम् । १३९ ।

(१०८) मयूर भञ्ज का १५८ कला पूर्व तथा १३१२ कलाउत्तर है। (१०९) नीलगिरि का १६० कला पूर्व तथा १२८७ कला उत्तर है। इस प्रकार सज्जनों की सुविधा के लिए मैंने १०९ स्थानों के बारे में कहा।

अत्रेप्सितस्थल युगान्तर मार्ग मान मानेन्दु
मक्ष कलिका विवरं विनिघ्नम्।
भूवेष्टनेन महता (५०२६) हृत मृक्षचक्र
लिप्ताचयेन (२१६००) फलामात्महतं पृथक् स्तम्। १४०।

दो स्थानों की अक्ष कला के अन्तर को ५०२६ से गुणा कर २१६० से भाग देकर फल को वर्ग करेंगे।

प्राक् प्रत्यगन्तर हत क्षिति वृत्त (५०२६) मभ्र
खांगाग्नि (३६०) हृद् विपद मध्य जयाहतं तत्
लम्बज्यया त्रिगुण (३४३८) हृत् स्वहतं द्विवर्ग
योगात् पदं हि पदयो ऋजुमध्यमार्गः। १४१।

पुनः दोनों स्थानों के पूर्व पश्चिम अन्तर कला को ५०२६ से गुणाकर ३६० से भाग देंगे। फल को दोनों स्थानों की लम्बज्या के योगार्द्ध से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देंगे। फल को वर्ग करेंगे। इस वर्ग को पिछले वर्ग के साथ जोड़कर मूल निकालेगें। वह उन दोनों स्थानों के बीच की सीधी दूरी होगी।

ज्योतिस्तत्वविदो वदन्ति परम क्रान्तेश्वरानेहसा
यत्किञ्चित्तनुतो ऋते परम विक्षेपस्य खेटावलेः
याम्योदग् ध्रुव पश्चिम भ्रमपथस्यात्रानु भूत्यागम
प्राणाण्येन विनाव्यलेखिनमया तत्तत् कलानिर्णयः। १४२।

प्राचीन काल से ज्योतिषियों ने ग्रहों का परमशर, दक्षिण तथा उत्तर ध्रुव का पूर्व पश्चिम मार्ग अर्थात् अयन चलन आदि के बारे में जो कुछ लिखा है, उसमें किसी को भी बिना प्रमाण के मैंने स्वीकार नहीं किया है। सभी बातें प्रत्यक्ष (वेध द्वारा) देखकर ही लिखी हैं।

ऊर्ध्वोद्धर्वाम्बर सूत्रगो दिनमणिः स्याद्यद्दिनार्द्धे तदा
सद् भार्द्धेव स्थिरन्ध्रग क्षिति पतत्तद् भानुनिष्ठाजवलात्
उद् गच्छत् किरणस्य रन्ध्र समतां दृष्ट्वा तदा त्वार्कजा
क्रान्ति स्वाक्षतयो दितैव मखिलं देशेष वेद्यं बुधैः। १४३।

मध्याह्न में खस्वस्तिक में रवि को देखकर (रवि के सबसे ऊपर विन्दु पर) अन्धेरे कमरे में एक छोटा छेद करते हैं। छेद से आती किरण के नीचे एक पानी का बर्तन रखते हैं। किरण दूसरी स्थान पर वापस होगी। सूर्य से आती किरण का भूमि से जो कोण होगा वही कोण लौटती किरण का भी होगा। यह कोण

अपने स्थान से सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति होगी। उसमें उत्तर क्रान्ति जोड़ने या दक्षिण क्रान्ति घटाने से अपने स्थान का अक्षांश आयेगा।

दृष्टा दृष्टि विरुद्ध मन्यगणितं त्राणाय धर्मस्यवा
भ्रान्तिं तथ्यतया भुवः प्रवदतां वाग् भंगिभांगायवा
विद्वत्सं सदिमत् प्रलायज परीहास प्रकाशायवा
येनाहं हदितिष्टता मुखरितः कस्मै चिदस्मै नमः। १४४।

आचार्यों ने कई प्रकार से यह ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा दी है- प्राचीन ग्रह गणित दृक् सिद्ध नहीं होना, धर्म की रक्षा के लिए, पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करने वालों के खण्डन के लिये या मेरे प्रलाप्त का पण्डित सभा में परिहास द्वारा इन प्रेरणाओं के लिए मैं उन्हें नमस्कार करता हूं।

आसीत् पासीन्द्र काशीश्वर मिहिर तनु जन्मराजाधिराज
स्वराट् प्रत्यार्थे पृथ्युधव दहन पक्षत् पत्र मात्रोत्थ गात्रः
प्राप्तशीमर्दराज भ्रमरवर पदः सत्तमात् सार्वभौमा
धीमान् वैरागी नाम स्फुटत महिमा मण्डलः खण्डपुर्याः। १४५।

वरुणा, इन्द्र, रुद्र, यम कुबेर, नैऋति, अग्नि और पवन इन आठ लोक पालों के अंश से उत्पन्न वैरागी नामक एक राजा खण्ड पड़ा में हुए। उनकी उपलब्धियों के कारण स्वयं पुरी राजा ने उन्हें मर्दराज और भ्रमरवर की उपाधि दी थी। वह खण्डपड़ा में चन्द्र के समान शासन करते थे। उनकी बुद्धि और महिमा चारों तरफ फैली हुई थी।

तस्मात् कृष्णाप्त तृष्णा दजनि शुभजनिर्गांग भंगा वगाही
भीष्मानुष्मार कोष्मा ज्मत पर विजयः श्रील नीलाद्रि सिंह
तत्सानुः शुभ्र भानु द्युमणि परिभवोद्दाम कीर्त्ति प्रतापः
प्राप प्राक् श्री नृसिंहः पदमजित पदध्यान नीलत्रिपातः। १४६।

इन कृष्ण भक्त वैरागी की इच्छा भगवान कृष्ण ने पूर्ण की और उनके औरस पुत्र श्री नीलाद्रि सिंह उत्पन्न हुए जो गंगा पुत्र भीष्म के समान भंयकर तेज से शत्रुओं को पराजित करने वाले थे। उनके पुत्र श्री नृसिंह अपने कीर्ति और प्रताप में चन्द्र और सूर्य से भी अधिक थे। उन्होंने अपने वंश की उपाधि (मंर्दराज तथा भ्रमरवर) प्राप्त की तथा अपराजित (विष्णु) के चरणों का ध्यान कर तीन ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट) दूर किये।

क्षत्राधिश्री वघेलान्वय पय उदधि प्रोद्यता पूर्णचन्द्रा
ज्योतिः सन्धान सिन्धुस्तत उदय मगच्छत् बुधः श्यामबन्धुः
स्वान्तोद्य द्दीन बन्धु प्रपद नख महः संहता हस्तमिस्रः
श्रीमान् सिंहान्त नामोत्कल निलय भरद्वाज गोत्राब्ज मित्रः। १४७।

बघेल क्षत्रिय वंश क्षीर समुद्र के समान शुभ्र है जिसमें लक्ष्मी का निवास है। इसी में पूर्ण चन्द्र के समान नृसिंह का उदय हुआ था। उनके औरस पुत्र श्रीश्यामबन्धु अत्यन्त विद्वान, दीनबन्धु के चरण नखों में अपना अज्ञान एवं अंधकार दूर करने वाले थे। उन्होंने उड़ीसा में निवास किया, सिंह उपाधि धारण की तथा भरद्वाज कुल कमल के लिये सूर्य के समान थे।

तज्मः श्रीमधुसूदनाभिध महापात्रोद् गुरोदीक्षितो
विद्यामुद्यत खंगराय सुपदादानन्द मिश्राद् गतः
सोऽहं ब्रह्म गिरीश माधवपदावासः स्वधर्माधमः
सिद्धान्त प्रथनं चकार यदिदं स्यात्कृष्ण पादार्पितम्। १४८।

मैं इन्हीं श्यामबन्धु सिंह का पूत्र हूँ। अपने गुरु की श्री मधुसूदन महापात्र से मैंने दीक्षा ली है। खड़ंगा (खड्गराय) आनन्द मिश्र के पास मैं ने शिक्षा ली है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश का चरण ही मेरा आश्रय है। अपने कालधर्म का पालन करने में मैने बराबर त्रुटि की है। तथापि प्रभु की दया से सिद्धान् पूर्ण कर पाया, यह उन्हीं भगवान के चरणों में अर्पण कर रहा हूँ।

यातांग त्रिनवाब्धि (४९३६) वत्सर कलौ जन्मोभवन्मामकं
वेदोषर्बुध (३४) वर्ष केण च मया गन्थोऽप्यमाविष्कृत
सन्तः सन्ततमत्रसन्त गणिते सन्तोष वन्तो गुणं
गृह्णान्तः परिहृत्य दोष गणका नास्ते न यत् सर्ववित्। १४९।

कलि वर्ष ४९३६ में मेरा जन्म हुआ। ३४ वर्ष की अवधि में मैंने ग्रन्थ रचना समाप्त की। मेरे इस गणित ग्रन्थ के दोषों में छोड़कर केवल गुणों को ही पण्डित ग्रहण करें। क्योकि कोई भी मनुष्य सर्वज्ञ नही होता है।

सिद्धान्तानुदिता अपिह गदिता ये ये विशेषा मया
ते हेया नव कल्पना इति सति मांभूत् प्रभूणां क्वचित्
दृक् सिद्धयै किल लल्ल भास्कर शतानन्दाच भट्टादिभिः
स्वग्रन्थेषु यदीरिता बहुमता ईदृक् विशेषा नवाः। १५०।

विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ की कई नयी बातों को केवल नया होने के कारण तिरस्कार नहीं करें। दृक् सिद्धि के लिये लल्ल, भास्कर, शतानन्द तथा आर्यभट्ट आदि ने भी अपने ग्रन्थों में कई नयी बातें लिखी हैं। और लोग उन्हें मानते हैं। मैंने यदि ऐसा किया उसमें क्या दोष है?

सिद्धान्ताध्ययनं विनापि गगनाभागो न भोगोडुभिः
सार्द्धवासनया यदीयहृदयेऽनत्यत्तदाविष्कृते
सिद्धान्त प्रमुखे प्रकाशनवल स्पष्टाधिकार द्वयो
युक्तं दर्पण केऽत्र गोलगणित रुयात्योत्तरार्द्धं गतम्। १५१।

सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़े बिना (पढ़ने के पहले भी) ही आकाश सीमा, ग्रह, नक्षत्र और उनकी युक्ति ने मेरे हृदय को व्याकुल किया है। अतः मैं उनके आविष्कार में लगा। इस सिद्धान्त दर्पण के नौ प्रकाशों में दो अधिकार (गोलाधिकार तथा कालाधिकार)स्पष्ट रूप से समाप्त हुये। गोल गणित के नाम से विख्यात उत्तारार्द्ध समाप्त हुआ। अपि च

इति श्री सिद्धान्त प्रथम पद युग् दर्पण इति
प्रसिद्धः संशुद्धो वचन नमनै क्याधिगमनात्
प्रकाशैर्द्विः सूर्ये (२४) रिषुभि (५) रधिकारे रुपचितः
समाप्तोऽयं ग्रन्थः स्फुरतु चिरमन्तः क्षितितलम्। १५२।

गणित के अनुसार प्रत्यक्ष ग्रह होने के कारण सिद्धान्त दर्पण विशेष भाव से शुद्ध और प्रसिद्ध है। इसके २४ प्रकाश ५ अधिकारों में है। यह ग्रन्त समाप्त हुआ। बहुत दिन तक उपयोगी रहे यह मेरी इच्छा है।

त्रुट्यादि प्रलयान्त काल कलनात् प्रेतेशितुः शासना
नील द्रव्यचयाधिका सितरुचः कालेसुखादानतः
नीलस्या चलनायकस्य शिरसोऽलंकार भावाद् स्वतः।
स प्रोक्तः किल काल काल इति यः कृष्णाय तस्मै नमः। १५३।

त्रुटि से प्रलय अन्त तक के समय का हिसाब करने वाले, सभी काले पदार्थों से भी अधिक प्रेतराज यम का शासन करने वाले, सभी समय में सुख भोग करने वाले, नीलाचल की चोटी के अंलकार स्वरूप तथा काल के भी काल भगवान् कृष्ण को प्रणाम करता हूँ।

आत्मादेश श्रुति स्मृत्युदित बहुविधा चार वारं प्रजाभिः
काले कालेऽनुतिष्ठन् गगन गणितं सार्थयत्यात्म जाभिः
विश्वं यः पाति मादृक् पतति तति समुद्धारणोन्नद्ध बाहुः
सोऽयं देवः शितिक्ष्मा भृत् जयति तमामिन्द्र नीलोज्वल श्रीः। १५४।

अपने आदेश रूप वेद तथा स्मृति में लिखे वर्णाश्रम धर्म का अपनी प्रजा द्वारा समय पर पालन करने के लिये ग्रह गणित को जो सार्थक करते हैं, जो चर और अचर पूरे विश्व का पालन करते हैं, मेरे जैसे पतितों की रक्षा के लिये अपने दोनों हाथ ऊपर कर अपने गोद में लेने के लिए तैयार रहते हैं, जिनका नील वर्ण इन्द्रनील मणि के समान प्रकाशित है, वह मेरे हृदय के देवता सदा नीलाचल में विराजमान रहें।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्रीचन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे
सिद्दान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
मानक्रमे व्यरचि सिद्ध (२४) मितः प्रकाशः (१०५)

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा छात्रों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण का उपसंहार रूप २४ वां प्रकाश समाप्त हुआ ।

श्लोकाः स्वकृप्ता इह वेद नाग
पक्षाक्षि संख्य (२२८४) अथ भूपपक्षाः (२१६)
ग्रन्थान्त रोत्थाः खख बाण पक्षाः (२५००)
सम्भूय भव्याय भवन्तु दक्षाः । १५६ ।

इस ग्रन्थ में मेरे लिखे २२८४ तथा दूसरे ग्रन्थों के २१६ श्लोक इस प्रकार कुल २५०० श्लोक हैं । यह अति सुन्दर भाव से लिखे शुभ श्लोक सुन्दर फल दें ।

भीमस्यापि पराजयोयुधि भवेद् बुद्धि भ्रमः स्यान्मुनेः
वादाचित् कतयाप्यतोऽल्प विदुषा मा सादृशां का कथा
तस्माद् यद् यद शुद्ध मत्र गणितं यद्वा सहार्थं पदं
तत् सर्व परिशोधयन्तु कृतिनः कृत्वानुकंपां मयि । १५७ ।

कभी कभी युद्ध में भीम भी पराजित होते हैं । तथा मुनियों का भी बुद्धिभ्रम हो जाता है । फिर मेरे जैसे कम बुद्धि वाले पण्डित का क्या कहना है । अतः जहां गणित में अशुद्धि है या जहां पुनरावृत्ति है उसे विद्वान् लोग स्वंय संशोधन कर लें ।

ब्रह्माण्ड खण्ड भण्ड स्थिरतर धरणी मण्डल भ्रान्ति सौण्ड
प्रौदण्डे लण्डदन्ता वल बल दलना कुण्ठ कण्ठीरवः श्रीः
सोऽयं नीलाद्रि सिहान्वय वदन दरी निर्गतः प्राप्त दुर्गः
स्फीत स्वस्यातिरस्तु प्रथम विगणित स्कन्ध सारः प्रबन्धः । १५८ ।

सिद्धान्त दर्पण एक प्रबन्ध या ग्रन्थ हैं । ज्योतिष के तीन स्कन्धों में गणित का यह स्कन्ध सार है । इसका तत्व समझना बहुत कठिन है । नीलाद्रि सिंह के वंश की मुख रूपी गुहा से यह ग्रन्थ सिंह के रूप में बाहर निकला है । अखण्ड ब्रह्माण्ड में पृथ्वी स्थिर है, उसका भ्रमण अस्वीकार करने वाले इंगलैण्ड के पण्डितों के हाथी समान दोतों का बल सिंह के समान दलन करे ।

वेलोद्य दसित गोत्रे सूत्रामादि स्तवावली पात्रे
गात्रंमम सुपवित्रे निपततु पुरुषोत्तम क्षेत्रे । १५९ ।

तीर्थ राज समुः के तट पर नीताचल खड़ा है । इन्द्र और देवताओं का स्तोत्र पात्र के रूप रखकर जगन्नाथ की उससे पूजा होती है । उसी पुरुषोत्तम क्षेत्र में मेरा देहावसान हो ।

मुकुन्द देवस्य चतुर्दशां के कालेवृषाष्टेन्दु (१८१४) समेच शाके
वारेशने मार्ग पुरोनवम्या मिदं मया पुस्तक माप्तपूर्णम् । १६० ।

मुकुन्द देवराजा के वें वर्ष अर्थात् शकाब्द १८१४ के मार्गशीर्ष मास कृष्ण नवमी तिथि शनिवार को इस पुस्तक की रचना समाप्त हुयी ।

परिशिष्ट

पदक तालिकायें (मध्यमाधिकार)

चतुर्थ प्रकाश-५४ श्लोक

(१) प्रथम सूची- १ से आरम्भ कर सौर वर्षों में अहर्गण

वर्ष	दिन	वर्ष	दिन
१	३६५	५.	१८२, ६२९
२.	७३१	६.	२१,९,१,५५
३.	१०९६	७.	२५५,६८१
४.	१४६१	८.	२९२, २०७
५.	१८२६	९.	३२८,७३३
६.	२१९२	१ हजार	३६५,२५९
७.	२५५७	२.	७३०, ५१७
८.	२९२२	३.	१०,९५,७७६
.९	३२८७	४.	१४,६१,०३५
१०.	३६५३	५.	१८,२६,२९४
२०.	७३०५	६.	२१,९१,५५२
३०.	१०,९५८	७.	२५,५६,८११
४०.	१४,६२०	८ हजार	२९,२२, ० ७०
५०.	१८,२६३	९ हजार	३२, ८७, ३२९
६०.	२१,९१६	१ अयुत (दस हजार)	३६, ५२, ५८८
७०.	२५,५६८	२.	७३,०५, १७५
८०.	२९,२२१	३.	१०,९,५७,७६३
९०.	३२,६७३	४.	१४६, १०, ३५०
१ सौ	३६,५२६	५.	१८२,६२,९३८
२.	७३,०५२	६.	२१९, १५, ५२५
३.	१०९, ५७८	७.	२५५,६८, ११३
४.	१४६, १०३	८.	२९२, २०, ७०१

वर्ष	दिन	वर्ष	दिन
९.	३२८,७३,२८८	३	१०,९५,७७,६२,६९४
१ लाख	३६५, २५, ८७६	४	१४,६१,०३,५०,२५९
२	७३०,५१, ७५१	५	१८,२६,२९,३७,८२४
३.	१०,९५,७७,६२७	६	२१,९१,५५,२५,३८९
४.	१४,६१,०३,५०३	७	२५,५६,८१,१२,९५४
५.	१८,२६,२९,३७८	८	२९,२२,०७,००,५१९
६	२१,९१,५५,२५४	९	३२,८७,३२,८८,०८३
७	२५,५६,८१,१३०	१ अर्बुद	३६,५२,५८,७५,६४८
८	२९,२२,०७,००५	२ (१० कोटि)	७३,०५,१७,५१,२९६
९	३२, ८७,३२,८८१	३	१,०९,५७,७६,२६,९४४
१ नियुत (दस लाख)	३६,५२,५८,७५६	४	१,४६,१०,३५,०२,५९३
२	७३,०५,१७,५१३	५	१,८२,६२,९३,७८,२४१
३	१०९,,५७,७६,२६९	६	२,१९,१५,५२,५३,८८९
४	१४६,१०,३५,०२६	७	२,५५,६८,११,२९,५३७
५.	१८२,६२,९३,७८२	८	२,९२,२०,७०,०५,१८५
६.	२१९,१५,५२,५३९	९	३,२८,७३,२८,८०,८३३
७.	२५५,६८,११,२९५	१ पद्म	३,६५,२५,८७,५६,४८१
८.	२९२,२०,७०,०५२	२ (अरब)	७,३०,५१,७५,१२,९६३
९.	३२८,७३,२८,८०८	३	१०,९५,६७,६२,६९,४४४
१ कोटि(करोड़)	३६५,२५,८७,५६५	४	१४,६१,०३,५०,२५,९२६
२	७३०,५१,७५,१३०	५	१८,२६,२९,३७,८२,४०७

करणाब्द मुखगता हर्गणः सृष्ट्यादे (करणाब्द आरम्भ का अहर्गण -सृष्टि आरम्भ से) - ७, १४, ४०, ४१, ११, ९६२

कलि आरम्भ से - १८, १५, ३३५

ग्रहध्रुवाहर्गणः (ग्रह ध्रुव का अहर्गण) १८, १५, ३३५

एकोनाहर्गणाद्ध्रुवा दिनगति युताः पाञ्जि मुखदिने मध्याः स्युः। (करणाब्द १८६८ ई.) की पञ्जिका के प्रथम दिन का मध्यम ग्रह निकालने के लिये अहर्गण से एक दिन कम कर उतने दिनों की मध्यम ग्रह गति निकाल कर उसमें ग्रह का ध्रुव (सृष्टि या कलि आरम्भ की स्थिति) जो देते हैं।

(२) द्वितीय तालिका-मध्यम रवि के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।५९ ।८ ।१०	१हजार	८ ।२५ ।३६ ।९ ।३३
२	० ।१ ।५८ ।१६ ।२०	२	५ ।२१ ।१२ ।१९ ।७
३	० ।२ ।५७ ।२४ ।३१	३	२ ।१६ ।४८ ।२८ ।४०
४	० ।३ ।५६ ।३२ ।४१	४	११ ।१२ ।२४ ।३८ ।१४
५	० ।४ ।५५ ।४० ।५१	५	८ ।८ ।० ।४७ ।४७
६	० ।५ ।५४ ।४९ ।१	६	५ ।३ ।३६ ।५७ ।२०
७	० ।६ ।५३ ।५७ ।११	७	१ ।२९ ।१३ ।६ ।५४
८	० ।७ ।५३ ।५ ।२१	८	१० ।२४ ।४९ ।१६ ।२८
९	० ।८ ।५२ ।१३ ।३२	९	७ ।२० ।२५ ।२६ ।१
१०	० ।९ ।५१ ।२१ ।४२	१ अयुत	४ ।१६ ।१ ।३५ ।३४
२०	० ।१९ ।४२ ।४३ ।२३	२ (दस हजार)	९ ।२ ।३ ।११ ।८
३०	० ।२९ ।३४ ।५ ।५	३	१ ।१८ ।४ ।४६ ।४२
४०	१ ।९ ।२५ ।२६ ।४७	४	६ ।४ ।६ ।२२ ।१६
५०	१ ।१९ ।१६ ।४८ ।२९	५	१० ।२० ।७ ।५७ ।५०
६०	१ ।२९ ।८ ।१० ।१०	६	३ ।६ ।९ ।३३ ।२३
७०	२ ।८ ।५९ ।३१ ।५२	७	७ ।२२ ।११ ।८ ।५७
८०	२ ।१८ ।५१ ।५३ ।३४	८	० ।८ ।१२ ।४४ ।३१
९०	२ ।२८ ।४२ ।१५ ।१६	९	४ ।२६ ।१४ ।२० ।५
१सौ	३ ।८ ।३३ ।३६ ।५७	१लाख	९ ।१० ।१५ ।५५ ।३९
२	६ ।१७ ।७ ।१३ ।५५	२	६ ।२० ।३१ ।५१ ।१८
३	९ ।२५ ।४० ।५० ।५२	३	४ ।० ।४७ ।४६ ।५७
४	१ ।४ ।१४ ।२७ ।४९	४	१ ।११ ।३ ।४२ ।३६
५	४ ।१२ ।४८ ।४ ।४७	५	१० ।२१ ।१९ ।३८ ।१६
६	७ ।२१ ।२१ ।४१ ।४४	६	८ ।१ ।३५ ।३३ ।५५
७	१० ।२९ ।५५ ।१८ ।४१	७	५ ।११ ।५१ ।२९ ।३४
८	२ ।८ ।२८ ।५५ ।३९	८	२ ।२२ ।७ ।२५ ।१३
९	५ ।१७ ।२ ।३२ ।३६	९	० ।२ ।२३ ।२० ।५२

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१ नियुत	९ ।१२ ।३९ ।१६ ।३१	१ करोड	१० ।६ ।३२ ।४५ ।१२
२ (दस लाख)	६ ।२५ ।१८ ।३३ ।२	२	८ ।१३ ।५ ।३० ।२४
३	४ ।७ ।५७ ।४९ ।३४	३	६ ।१९ ।३८ ।१५ ।३६
४	१ ।२० ।३७ ।६ ।५	४	४ ।२६ ।११ ।० ।४८
५	११ ।३ ।१६ ।२२ ।३६	५	३ ।२ ।४३ ।४६ ।०
६	८ ।१५ ।५५ ।३९ ।७	६	१ ।९ ।१६ ।३१ ।१३
७	५ ।२८ ।३४ ।५५ ।३८	७	११ ।१५ ।४९ ।१६ ।२५
८	३ ।११ ।१४ ।१२ ।१०	८	९ ।२२ ।२२ ।१ ।३७
९	० ।२३ ।५३ ।२८ ।४१	९	२ ।२८ ।५४ ।४६ ।४९
		१ अर्बुद	६ ।५ ।२७ ।३२ ।१

रवि के ध्रुव (राशि अदि)

द्वापर के अन्त में ० ।० ।० ।० ।०

करणाब्द आरम्भ में - ११ ।२८ ।१५ ।२० ।४६

गति की लिप्ता आदि - ५९ ।८ ।१० ।१० ।२४ ।१२

द्वापर के अन्त में मन्दोच्च - २ ।१८ ।३९ ।३६

करणाब्द आरम्भ में मन्दोच्च - २ ।१८ ।४७ ।५६

हार - ५९९

भुजफल का छेद - ३६५ ।१६

श्री पुरुषोत्तम पुरी) का देशान्तर लिप्ता आदि २ ।३० ।६

खण्ड क्षेप - ० ।७ ।५३ ।५ ।२१

(३) सारणी ३- मध्यम चन्द्र के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।१३ ।१० ।३४ ।५२	१ हजार	७ ।६ ।२१ ।७ ।४४
२	० ।२६ ।२१ ।९ ।४४	२	२ ।१२ ।४२ ।१५ ।२७
३	१ ।९ ।३१ ।४४ ।३६	३	९ ।१९ ।३ ।२३ ।११
४	१ ।२२ ।४२ ।१९ ।२८	४	४ ।२५ ।२४ ।३० ।५५
५	२ ।५ ।५२ ।५४ ।२०	५	० ।१ ।४५ ।३८ ।३८
६	२ ।१९ ।३ ।२९ ।१२	६	७ ।८ ।६ ।४६ ।२२
७	३ ।२ ।१४ ।४ ।४	७	२ ।१४ ।२७ ।५४ ।६
८	३ ।१५ ।२४ ।३८ ।५७	८	९ ।२० ।४९ ।१ ।४९
९	३ ।२८ ।३५ ।१३ ।४९	९	४ ।२७ ।१० ।९ ।३३
१०	४ ।११ ।४५ ।४८ ।४१	१ अयुत	० ।३ ।३१ ।१७ ।१६
२०	८ ।२३ ।३१ ।३७ ।२१	२ (दस हजार)	० ।७ ।२ ।३४ ।३३
३०	१ ।५ ।१७ ।२६ ।२	३	० ।१० ।३३ ।५१ ।४९
४०	५ ।१७ ।३ ।१४ ।४३	४	० ।१४ ।५ ।९ ।५
५०	९ ।२८ ।४९ ।३ ।२३	५	० ।१७ ।३६ ।२६ ।२२
६०	२ ।१० ।३४ ।५२ ।४	६	० ।२१ ।७ ।४३ ।३९
७०	६ ।२२ ।२० ।४० ।४४	७	० ।२४ ।३९ ।० ।५५
८०	११ ।४ ।६ ।२९ ।२५	८	० ।२८ ।१० ।१८ ।११
९०	३ ।१५ ।५२ ।१८ ।६	९	१ ।१ ।४१ ।३५ ।२८
१ सौ	७ ।२७ ।३८ ।६ ।४६	१ लाख	१ ।५ ।१२ ।५२ ।४५
२	३ ।२५ ।१६ ।१३ ।३३	२	२ ।१० ।२५ ।४५ ।३०
३	११ ।२२ ।५४ ।२० ।१९	३	३ ।१५ ।३८ ।३८ ।१४
४	७ ।२० ।३२ ।२७ ।५	४	४ ।२० ।५१ ।३० ।५९
५	३ ।१८ ।१० ।३३ ।५२	५	५ ।२६ ।४ ।२३ ।४४
६	११ ।१५ ।४८ ।४० ।३८	६	७ ।१ ।१७ ।१६ ।२९
७	७ ।१३ ।२६ ।४७ ।२५	७	८ ।६ ।३० ।९ ।१४
८	३ ।११ ।४ ।५४ ।११	८	९ ।११ ।४३ ।१ ।५९
९	११ ।८ ।४३ ।० ।५६	९	१० ।१६ ।५५ ।५४ ।४३

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१ नियुत	११ ।२२ ।८ ।४७ ।२८	१ कोटि	९ ।११ ।२७ ।५४ ।४३
२ (दस	११ ।१४ ।१७ ।३४ ।५७	२	६ ।२२ ।५५ ।४९ ।२६
३ लाख)	११ ।६ ।२६ ।२२ ।२५	३	४ ।४ ।२३ ।४४ ।१०
४	१० ।२८ ।३५ ।९ ।५३	४	१ ।१५ ।५१ ।३८ ।५३
५	१० ।२० ।४३ ।५७ ।२२	५	१० ।२७ ।१९ ।३३ ।३६
६	१० ।१२ ।५२ ।४४ ।५०	६	८ ।८ ।४७ ।२८ ।१९
७	१० ।५ ।१ ।३२ ।१८	७	५ ।२० ।१५ ।२३ ।३
८	९ ।२७ ।१० ।१९ ।४७	८	३ ।१ ।४३ ।१७ ।४६
९	९ ।१९ ।१९ ।७ ।१५	९	० ।१३ ।११ ।१२ ।२९
		१ अर्बुद	९ ।२४ ।३९ ।७ ।१२

द्वापर अन्त में चन्द्र का ध्रुव ० ।० ।० ।० ।०

करण आरम्भ में ,, ० ।३ ।२० ।२९ ।५३

गति लिप्ता आदि ७९० ।३४ ।५२ ।३ ।४९

भुजछेद २७ ।१९

देशान्तर लिप्ता आदि ३३ ।२६ ।४५

खण्ड क्षेप राशि आदि ३ ।१४ ।३१ ।११ ।३७

(४) चतुर्थ सारणी - चन्द्र मन्दोच्च के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि-आदि
१	० ।० ।६ ।४० ।५५	१ हजार	३ ।११ ।२१ ।४८ ।३७
२	० ।० ।१३ ।२१ ।४९	२	७ ।१२ ।४३ ।३६ ।१४
३	० ।० ।२० ।२ ।४४	३	११ ।४ ।५ ।२५ ।५१
४	० ।० ।२९ ।४३ ।३८	४	२ ।२५ ।२७ ।१४ ।२७
५	० ।० ।३३ ।२४ ।३३	५	६ ।१६ ।४९ ।३ ।४
६	० ।० ।४० ।५ ।२७	६	१० ।८ ।१० ।५१ ।४१
७	० ।० ।४६ ।४६ ।२२	७	१ ।२९ ।३२ ।४० ।१८
८	० ।० ।५३ ।२७ ।१६	८	५ ।२० ।५४ ।२८ ।५५
९	० ।१ ।० ।८ ।११	९	९ ।१२ ।१६ ।१७ ।३२
१०	० ।१ ।६ ।४९ ।५	१ अयुत	१ ।३ ।३८ ।६ ।९
२०	० ।२ ।१३ ।३८ ।१०	२ (दस हजार)	२ ।७ ।१६ ।१२ ।१७
३०	० ।३ ।२० ।२७ ।१६	३	३ ।१० ।५४ ।१८ ।२६
४०	० ।४ ।२७ ।१६ ।२१	४	४ ।१४ ।३२ ।२४ ।३५
५०	० ।५ ।३४ ।५ ।२६	५	५ ।१८ ।१० ।३० ।४४
६०	० ।६ ।४० ।५४ ।३१	६	६ ।२१ ।४८ ।३६ ।५१
७०	० ।७ ।४७ ।४३ ।३६	७	७ ।२५ ।२६ ।४३ ।१
८०	० ।८ ।५४ ।३२ ।४१	८	८ ।२९ ।४ ।४९ ।१०
९०	० ।१० ।१ ।२१ ।४७	९	१० ।२ ।४२ ।५५ ।१८
१ सौ	० ।११ ।८ ।१० ।५२	१ लाख	११ ।६ ।२१ ।१ ।२७
२	० ।२२ ।१६ ।२१ ।४३	२	१० ।१२ ।४२ ।२ ।५४
३	१ ।३ ।२४ ।३२ ।३५	३	९ ।१९ ।३ ।४ ।२१
४	१ ।१४ ।३२ ।४३ ।२७	४	८ ।२५ ।२४ ।५ ।४८
५	१ ।२५ ।४० ।५४ ।१८	५	८ ।१ ।४५ ।७ ।१५
६	२ ।६ ।४९ ।५ ।१०	६	७ ।८ ।६ ।८ ।४२
७	२ ।१७ ।५७ ।१६ ।२	७	६ ।१४ ।२७ ।१० ।१०
८	२ ।२९ ।५ ।२६ ।५३	८	५ ।२० ।४८ ।११ ।३७
९	३ ।१० ।१३ ।३७ ।४५	९	४ ।२७ ।९ ।१३ ।४

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१ नियुत	४ ।३ ।३० ।१४ ।३१	१ करोड़	५ ।५ ।२ ।२५ ।८
२ (दस लाख)	८ ।७ ।० ।२९ ।२	२	१० ।१० ।४ ।५० ।१६
३	३ ।१० ।३० ।१३ ।३२	३	३ ।१५ ।७ ।१५ ।२५
४	४ ।१४ ।० ।५८ ।३	४	८ ।२० ।९ ।४० ।३३
५	८ ।१७ ।३१ ।१२ ।३४	५	१ ।२५ ।१२ ।५ ।४१
६	० ।२१ ।१ ।२७ ।५	६	७ ।० ।१४ ।३० ।४९
७	४ ।२४ ।३१ ।४१ ।३६	७	० ।५ ।१६ ।५५ ।५८
८	८ ।२८ ।१ ।५६ ।७	८	५ ।१० ।१९ ।२१ ।६
९	१ ।१ ।३२ ।१० ।३७	९	१० ।१५ ।२१ ।४६ ।१४
		१० करोड़	३ ।२० ।२३ ।११ ।२२

चन्द्रमन्दोच्च का द्वापर के अन्त में ध्रुव राशि आदि ४ ।० ।३६ ।० ।० करणाब्द का ध्रुव १० ।२२ ।३४ ।५९ ।४ गति लिप्ता ० ।६ ।४० ।५४ ।३१ ।१ छेद ३२ ।३३ देशान्तर लिप्ता ० ।१६ ।५८

(५) मध्यम मंगल के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।३१ ।१६ ।३०	१ हजार	५ ।१४ ।१ ।४१ ।५३
२	० ।१ ।२ ।५३ ।०	२	१० ।२८ ।३ ।२३ ।४७
३	० ।१ ।३४ ।१९ ।३०	३	५ ।१२ ।५ ।५ ।४०
४	० ।२ ।५ ।४७ ।०	४	९ ।२६ ।६ ।४७ ।३३ ।
५	० ।२ ।३७ ।१२ ।३०	५	३ ।१० ।८ ।२९ ।२६
६	० ।३ ।८ ।३९ ।१	६	८ ।२४ ।१० ।११ ।२०
७	० ।३ ।४० ।५ ।३१	७	२ ।८ ।११ ।५३ ।१३
८	० ।४ ।११ ।३२ ।१	८	७ ।२२ ।१३ ।३५ ।६
९	० ।४ ।४२ ।५८ ।३१	९	१ ।६ ।१५ ।१६ ।५९
१०	० ।५ ।१४ ।२५ ।१	१ अयुत	६ ।२० ।१६ ।५८ ।५३
२०	० ।१० ।२८ ।५० ।२	२ (दस हजार)	१ ।१० ।३३ ।५७ ।४५
३०	० ।१५ ।४३ ।१५ ।३	३	८ ।० ।५० ।५६ ।३८
४०	० ।२० ।५७ ।४० ।५	४	२ ।२१ ।७ ।५५ ।३०
५०	० ।२६ ।१२ ।५ ।६	५	९ ।११ ।२४ ।५४ ।२३
६०	१ ।१ ।२६ ।३० ।७	६	४ ।१ ।४१ ।५३ ।१६
७०	१ ।६ ।४० ।५५ ।८	७	१० ।२१ ।५८ ।५२ ।८
८०	१ ।११ ।५५ ।२० ।९	८	५ ।१२ ।१५ ।५१ ।१
९०	१ ।१७ ।९ ।४५ ।१०	९	० ।२ ।३२ ।४९ ।५४
१ सौ	१ ।२२ ।२४ ।१० ।११	१ लाख	६ ।२२ ।४९ ।४८ ।४६
२	३ ।१४ ।४८ ।२० ।२३	२	१ ।१५ ।३९ ।३७ ।३२
३	५ ।७ ।१२ ।३० ।३४	३	८ ।८ ।२९ ।२६ ।१९
४	६ ।२९ ।३६ ।४० ।४५	४	३ ।१ ।१९ ।१५ ।५
५	८ ।२२ ।० ।५० ।५७	५	९ ।२४ ।९ ।३ ।५१
६	१० ।१४ ।२५ ।१ ।८	६	४ ।१६ ।५८ ।५२ ।३७
७	० ।६ ।४९ ।११ ।१९	७	११ ।९ ।४८ ।४१ ।२३
८	१ ।२९ ।१३ ।२१ ।३१	८	६ ।२ ।३८ ।३० ।९
९	३ ।२१ ।३७ ।३१ ।४२	९	० ।२५ ।२८ ।८ ।५६

दिन	राशि आदि
१ नियुत	७ ।१८ ।१८ ।७ ।४२
२ (दस लाख)	३ ।६ ।३६ ।१५ ।१४
३	१० ।२४ ।५४ ।२३ ।५
४	६ ।१३ ।१२ ।३० ।४७
५	२ ।१ ।३० ।३८ ।२९
६	९ ।१९ ।४८ ।४७ ।११
७	५ ।८ ।६ ।५३ ।५३
८	० ।२६ ।२५ ।१ ।३४
९	८ ।१४ ।४३ ।९ ।१६

दिन	राशि आदि
१ करोड़	४ ।३ ।१ ।१६ ।४८
२	८ ।६ ।२ ।३३ ।५६
३	० ।९ ।३ ।५० ।५४
४	४ ।१२ ।५ ।७ ।५२
५	८ ।१५ ।६ ।२४ ।५०
६	० ।१८ ।७ ।४१ ।४७
७	४ ।२१ ।८ ।५८ ।४५
८	८ ।२४ ।१० ।१५ ।४३
९	० ।२७ ।११ ।३२ ।४१
१० करोड़	५ ।० ।१२ ।४९ ।३९

मंगल की ध्रुव राशि आदि-

द्वापर अन्त में - ११ ।१४ ।५२ ।४८ ।०

करणाब्द प्रारम्भ में ५ ।१ ।२४ ।१७ ।२५

मंगल की दैनिक गति लिप्ता आदि में - ३१ ।२६ ।३० ।६ ।४८

द्वापर अन्त में मंगल का मन्दोच्च ४ ।६ ।५४ ।०

द्वापर अन्त में मंगल का पात ० ।२८ ।५८ ।४८

करणाब्द में मंगल का मन्दोच्च - ४ ।७ ।१ ।४२ ।१३ पात

० ।२८ ।५१ ।२३ ।४१

मन्द हार ६४५

भुज छेद ६८७

पातहार ६७१

देशान्तर कला आदि १ ।१९ ।४९

(६) बुध शीघ्र के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।४ ।५ ।३२ ।१६	१ हजार	४ ।२ ।१७ ।४८ ।४१
२	० ।८ ।११ ।४ ।३२	२	८ ।२४ ।३५ ।३७ ।२३
३	० ।१२ ।१६ ।३६ ।४८	३	१ ।६ ।५३ ।२६ ।४
४	० ।१६ ।२२ ।९ ।४	४	५ ।९ ।११ ।१४ ।४६
५	० ।२० ।२७ ।४१ ।२१	५	१० ।१ ।२९ ।३ ।२७
६	० ।२४ ।३३ ।१३ ।३७	६	२ ।१३ ।४६ ।५२ ।९
७	० ।२८ ।३८ ।४५ ।५३	७	६ ।२६ ।४ ।४० ।५०
८	१ ।२ ।४४ ।१८ ।९	८	११ ।८ ।२२ ।२९ ।३२
९	१ ।६ ।४९ ।५० ।२५	९	३ ।२० ।४० ।१८ ।१३
१०	१ ।१० ।५५ ।२२ ।४१	१० हजार	८ ।२ ।५८ ।६ ।५५
२०	२ ।२१ ।५० ।४५ ।२२	२०	४ ।५ ।५६ ।१३ ।४९
३०	४ ।२ ।४६ ।८ ।४	३०	० ।८ ।५४ ।२० ।४४
४०	५ ।१३ ।४१ ।३० ।४५	४०	८ ।११ ।५२ ।२७ ।३९
५०	६ ।२४ ।३६ ।५३ ।२६	५०	४ ।१४ ।५० ।३४ ।३४
६०	८ ।५ ।३२ ।१६ ।७	६०	० ।१७ ।४८ ।४१ ।२८
७०	९ ।१६ ।२७ ।३८ ।४८	७०	८ ।२० ।४६ ।४८ ।२३
८०	१० ।२७ ।२३ ।१ ।३०	८०	४ ।२३ ।४४ ।५५ ।१८
९०	० ।८ ।१८ ।२४ ।११	९०	० ।२६ ।४३ ।२ ।१२
१ सौ	१ ।१९ ।१३ ।४६ ।५२	१ लाख	८ ।२९ ।४१ ।९ ।७
२	३ ।८ ।२७ ।३३ ।४४	२	५ ।२९ ।२२ ।१८ ।१४
३	४ ।२७ ।४१ ।२० ।३६	३	२ ।२९ ।३ ।२७ ।२२
४	६ ।१६ ।५५ ।७ ।२९	४	११ ।२८ ।४४ ।३६ ।२९
५	८ ।६ ।८ ।५४ ।२१	५	८ ।२८ ।२५ ।४५ ।३६
६	९ ।२५ ।२२ ।४१ ।१३	६	५ ।२८ ।६ ।५४ ।४३
७	११ ।१४ ।३६ ।२८ ।५	७	२ ।२७ ।४८ ।३ ।५१
८	१ ।३ ।५० ।१४ ।५७	८	११ ।२७ ।२९ ।१२ ।५८
९	२ ।२३ ।४ ।१ ।४९	९	८ ।२७ ।१० ।२२ ।५

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	५ ।२६ ।५१ ।३१ ।१२	१ करोड़	१० ।२८ ।३५ ।१२ ।२
२०	११ ।२३ ।४३ ।२ ।२४	२	९ ।२७ ।१० ।२४ ।४
३०	५ ।२० ।३४ ।३३ ।३७	३	८ ।२५ ।४५ ।३६ ।६
४०	११ ।१७ ।२६ ।४ ।४९	४	७ ।२४ ।२० ।४८ ।८
५०	५ ।१४ ।१७ ।३६ ।१	५	६ ।२२ ।५६ ।० ।१०
६०	११ ।११ ।९ ।७ ।१३	६	५ ।२१ ।३१ ।१२ ।१२
७०	५ ।८ ।० ।३८ ।२५	७	४ ।२० ।६ ।२४ ।१४
८०	११ ।४ ।५२ ।९ ।३८	८	३ ।३ ।१८ ।४१ ।३६ ।१६
९०	५ ।१ ।४३ ।४० ।५०	९	१ ।१७ ।१६ ।४८ ।१८
		१०	१ ।१५ ।५२ ।० ।२०

बुध शीघ्र का द्वापर के अन्त में ध्रुव - १ ।१ ।३५ ।२४ ।०

,, करणाब्द का ध्रुव १० ।१८ ।१४ ।११ ।२१

शीघ्र बुध की दैनिक गति लिप्ता आदि में - २४५ ।३२ ।१६ ।७ ।१७

द्वापर के अन्त में मन्द ७ ।१५ ।५४ ।० द्वापर अन्त में पात ० ।२९ ।३१ ।१२ ।०

करणाब्द का मन्द ७ ।१६ ।४ ।१० ।१६ करणाब्द का पात

० ।२९ ।१७ ।२८ ।५८

मन्दहार ४८८ पात हार ३६२ छेद ८८

देशान्तर कला आदि - १० ।२३ ।१५

(७) मध्यम गुरू के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।४ ।५९ ।६	१ हजार	२ ।२३ ।४ ।५३ ।३७
२	० ।० ।९ ।५८ ।११	२	५ ।६ ।१६ ।९ ।४७ ।१४
३	० ।० ।१४ ।५७ ।१६	३	८ ।९ ।१४ ।४० ।५१
४	० ।० ।१९ ।५६ ।२२	४	११ ।२ ।१९ ।३४ ।२७
५	० ।० ।२४ ।५५ ।२८	५	१ ।२५ ।२४ ।२८ ।४
६	० ।० ।२९ ।५४ ।३४	६	४ ।१८ ।२९ ।२१ ।४१
७	० ।० ।३४ ।५३ ।३९	७	७ ।११ ।३४ ।१५ ।१८
८	० ।० ।३९ ।५२ ।४५	८	१० ।४ ।३९ ।८ ।५५
९	० ।० ।४४ ।५१ ।५१	९	० ।२७ ।४४ ।२ ।३२
१०	० ।० ।४९ ।५० ।५६	१०	३ ।२० ।४८ ।५६ ।८
२०	० ।१ ।३९ ।४१ ।५२	२०	७ ।११ ।३७ ।५२ ।१७
३०	० ।२ ।२९ ॥३२ ।४९	३०	११ ।२ ।२६ ।४८ ।२५
४०	० ।३ ।१९ ।२३ ।४५	४०	२ ।२३ ।१५ ।४४ ।३३
५०	० ।४ ।९ ।१४ ।४१	५०	६ ।१४ ।४ ।४० ।४२
६०	० ।४ ।५९ ।५ ।३७	६०	१० ।४ ।५३ ।३६ ।५०
७०	० ।५ ।४८ ॥५६ ।३३	७०	१ ।२५ ।४२ ।३२ ।५९
८०	० ।६ ।३८ ।४७ ।२९	८०	५ ।१६ ।३१ ।२९ ।७
९०	० ।७ ।२८ ।३८ ।२६	९०	९ ।७ ।२० ।२५ ।१५
१ सौ	० ।८ ।१८ ।२९ ।२२	१ लाख	० ।२८ ।९ ।२१ ।२४
२	० ।१६ ।३६ ।५८ ।४३	२	१ ।२६ ।१८ ।४२ ।४७
३	० ।२४ ।५५ ।२८ ।५	३	२ ।२४ ।२८ ।४ ।११
४	१ ।३ ।१३ ।५७ ।२७	४	३ ।२२ ।३७ ।२५ ।३५
५	१ ।११ ।३२ ।२६ ।४८	५	४ ।२० ।४६ ।४६ ।५८
६	१ ।१९ ।५० ।५६ ।०	६	५ ।१८ ।५६ ।८ ।२२
७	१ ।२८ ।९ ।२५ ।३२	७	६ ।१७ ।५ ।२९ ।४६
८	२ ।६ ।२६ ।५४ ।५३	८	७ ।१५ ।१४ ।५१ ।९
९	२ ।१४ ।४६ ।२४ ।१५	९	८ ।१३ ।१४ ।१२ ।३३

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	९ ।११ ।३३ ।३३ ।५७	१ करोड़	९ ।२५ ।३५ ।३९ ।२५
२०	६ ।२३ ।७ ।७ ।५३	२	७ ।२१ ।११ ।१८ ।५०
३०	४ ।४ ।४० ।४१ ।४९	३	५ ।१६ ।४६ ।५८ ।१६
४०	१ ।१६ ।१४ ।१५ ।४६	४	३ ।१२ ।२२ ।३७ ।४१
५०	१० ।२७ ।४७ ।४९ ।४३	५	१ ।७ ।५८ ।१७ ।६
६०	८ ।९ ।२१ ।२३ ।३९	६	११ ।३ ।३३ ।५६ ।३१
७०	५ ।२० ।५४ ।५७ ।३६	७	८ ।२९ ।९ ।३५ ।५६
८०	३ ।२ ।२८ ।३१ ।३२	८	६ ।२४ ।४५ ।१५ ।२२
९०	० ।१४ ।२ ।५ ।२९	९	४ ।२० ।२० ।५४ ।४७
		१०	२ ।१५ ।५६ ।३४ ।१२

द्वापर अन्त में गुरु का ध्रुव ० ।२२ ।५७ ।० ।०

करणाब्द में गुरु का ध्रुव ० ।३ ।४५ ।१ ।२१

गुरु की दैनिक मध्य गति लिप्ता आदि ४ ।५९ ।५ ।३७ ।१

द्वापर अन्त में गुरू का मन्द ५ ।१६ ।५७ पात २ ।११ ।६

करणाब्द में गुरु का मन्द ५ ।१७ ।१७ ।० ।१५ पात २ ।११ ।३ ।१५ ।९

मन्दहार २४८ पात हार १८१८

छेद ४३३३ देशान्तर कला आदि ० ।१२ ।३९

(८) गुरु मध्य के वैकल्पिक पदक
(२१ वां प्रकाश ७८ वां श्लोक)

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।४ ।५९ ।६	९	२ ।१४ ।४६ ।२६ ।१२
२	० ।० ।९ ।५८ ।११	१ हजार	२ ।२३ ।४ ।५५ ।४७
३	० ।० ।१४ ।५७ ।१७	२	५ ।१६ ।९ ।५१ ।३३
४	० ।० ।१९ ।५६ ।२३	३	८ ।९ ।१४ ।४७ ।२०
५	० ।० ।२४ ।५५ ।२९	४	११ ।२ ।१९ ।४३ ।७
६	० ।० ।२९ ।५४ ।३४	५	१ ।२५ ।२४ ।३८ ।५३
७	० ।० ।३४ ।५३ ।४०	६	४ ।१८ ।२९ ।३४ ।४०
८	० ।० ।३९ ।५२ ।४६	७	७ ।११ ।३४ ।३० ।२७
९	० ।० ।४४ ।५१ ।५२	८	१० ।४ ।३९ ।२६ ।१४
१०	० ।० ।४९ ।५० ।५७	९	० ।२७ ।४४ ।२२ ।०
२०	० ।१ ।३९ ।४१ ।५५	१०	३ ।२० ।४९ ।१७ ।४७
३०	० ।२ ।२९ ।३२ ।५२	२०	७ ।११ ।३८ ।३५ ।३४
४०	० ।३ ।१९ ।२३ ।५०	३०	११ ।२ ।२७ ।५३ ।२१
५०	० ।४ ।९ ।१४ ।४७	४०	२ ।२३ ।१७ ।११ ।८
६०	० ।४ ।५९ ।५ ।४५	५०	६ ।२४ ।६ ।२८ ।५४
७०	० ।५ ।४८ ।५६ ।४२	६०	१० ।४ ।५५ ।४६ ।४१
८०	० ।६ ।३८ ।४७ ।४०	७०	१ ।२५ ।४५ ।४ ।२८
९०	० ।७ ।२८ ।३८ ।३७	८०	५ ।१६ ।३४ ।२२ ।१५
१ सौ	० ।८ ।१८ ।२९ ।३५	९०	९ ।७ ।२३ ।४० ।२०
२	० ।१६ ।३६ ।५९ ।९	१ लाख	० ।२८ ।१२ ।५७ ।४९
३	० ।२४ ।५५ ।२८ ।४४	२	१ ।२६ ।२५ ।५५ ।३८
४	१ ।३ ।१३ ।५८ ।१९	३	२ ।२४ ।३८ ।५३ ।२७
५	१ ।११ ।३२ ।२७ ।५३	४	३ ।२२ ।५१ ।५१ ।१६
६	१ ।१९ ।५० ।५७ ।२८	५	४ ।२१ ।४ ।४९ ।५
७	१ ।२८ ।९ ।२७ ।३	६	५ ।१९ ।१७ ।४६ ।१७
८	२ ।६ ।२७ ।५६ ।३७	७	६ ।१७ ।३० ।४४ ।४३

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
८	७ ।१५ ।४३ ।४२ ।३२	९०	० ।१९ ।२६ ।४३ ।२७
९	८ ।१३ ।५६ ।४० ।२१	१ करोड़	१० ।१ ।३६ ।२१ ।३७
१०	९ ।१२ ।९ ।३८ ।१०	२	८ ।३ ।१२ ।४३ ।१३
२०	६ ।२४ ।१९ ।१६ ।१९	३	६ ।४ ।४९ ।४ ।५०
३०	४ ।६ ।२८ ।५४ ।२९	४	४ ।६ ।२५ ।२६ ।२७
४०	१ ।१८ ।३८ ।३२ ।३९	५	२ ।८ ।१ ।४८ ।३
५०	११ ।० ।४८ ।१० ।४८	६	० ।९ ।३८ ।९ ।४०
६०	८ ।१२ ।५७ ।४८ ।५८	७	१० ।११ ।१४ ।३१ ।१७
७०	५ ।२५ ।७ ।२७ ।४९	८	८ ।१२ ।५० ।५२ ।५३
८०	३ ।७ ।१७ ।५ ।१७	९	६ ।१४ ।२७ ।२४ ।३०
		१० करोड़	४ ।१६ ।३ ।३६ ।७

द्वापर अन्त में गुरु का ध्रुव ० ।२१ ।३६

करणाब्द आरम्भ में गुरू का ध्रुव ० ।३ ।२९ ।३० ।७

गुरु की दैनिक गति लिप्ता आदि ४ ।५९ ।५ ।४४ ।४८

द्वापर के अन्त में मन्द का ध्रुव ५ ।१९ ।२८ ।१२

करणाब्द में गुरु मन्दोच्च का ध्रुव ५ ।१९ ।५१ ।५२ ।५५

हार २१० छेद ४३३३

देशान्तर कला आदि ० ।११ ।४१

(९) शुक्र शीघ्रोच्च के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।१ ।३६ ।७ ।३८	१ हजार	५ ।१२ ।७ ।९ ।५९
२	० ।३ ।२ ।१५ ।१६	२	१० ।२४ ।१४ ।१९ ।५९
३	० ।४ ।४८ ।२२ ।५३	३	४ ।६ ।२१ ।२९ ।५८
४	० ।६ ।२४ ।३० ।३१	४	९ ।१८ ।२८ ।३९ ।५८
५	० ।८ ।० ।३८ ।९	५	३ ।० ।३५ ।४९ ।५७
६	० ।९ ।३६ ।४५ ।४७	६	८ ।१२ ।४२ ।५९ ।५६
७	० ।११ ।१२ ।५३ ।२५	७	१ ।२४ ।५० ।९ ।५६
८	० ।१२ ।४९ ।१ ।२	८	७ ।६ ।५७ ।१९ ।५५
९	० ।१४ ।२५ ।८ ।४०	९	० ।१९ ।४ ।२९ ।५५
१०	० ।१६ ।१ ।१६ ।१८	१०	६ ।१ ।११ ।३९ ।५४
२०	१ ।२ ।२ ।३२ ।३६	२०	० ।२ ।२३ ।१९ ।४८
३०	१ ।१८ ।३ ।४८ ।५४	३०	६ ।३ ।३४ ।५९ ।४२
४०	२ ।४ ।५ ।५ ।१२	४०	० ।४ ।४६ ।३९ ।३६
५०	२ ।२० ।६ ।२१ ।३०	५०	६ ।५ ।५८ ।१९ ।३०
६०	३ ।६ ।७ ।३७ ।४८	६०	० ।७ ।९ ।५९ ।२४
७०	३ ।२२ ।८ ।५४ ।६	७०	६ ।८ ।२१ ।३९ ।१८
८०	४ ।८ ।१० ।१० ।२४	८०	० ।९ ।३३ ।१९ ।१२
९०	४ ।२४ ।११ ।२६ ।४२	९०	६ ।१० ।४४ ।५९ ।६
१ सौ	५ ।१० ।१२ ।४३ ।०	१ लाख	० ।११ ।५६ ।३९ ।०
२	१० ।२० ।२५ ।२६ ।०	२	० ।२३ ।५३ ।१८ ।०
३	४ ।० ।३८ ।९ ।०	३	१ ।५ ।४९ ।५७ ।०
४	९ ।१० ।५० ।५२ ।०	४	१ ।१७ ।४६ ।३७ ।०
५	२ ।२१ ।३ ।३५ ।०	५	५ ।२९ ।४३ ।१५ ।१
६	८ ।१ ।१६ ।१८ ।०	६	२ ।११ ।३९ ।५४ ।१
७	१ ।११ ।२९ ।१ ।०	७	२ ।२३ ।३६ ।३३ ।१
८	६ ।२१ ।४१ ।४४ ।०	८	३ ।५ ।३३ ।१२ ।१
९	१ ।० ।५४ ।२६ ।५९	९	३ ।१७ ।२९ ।५१ ।१

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	३ ।२९ ।३६ ।३० ।१	१ करोड	३ ।२४ ।२५ ।० ।१२
२०	७ ।२८ ।५३ ।० ।२	२	७ ।१८ ।५० ।० ।२४
३०	११ ।२८ ।१९ ।३० ।४	३	११ ।१३ ।१५ ।० ।३६
४०	३ ।२७ ।१२ ।३० ।६	४	३ ।७ ।४० ।० ।४
५०	७ ।२७ ।१२ ।३० ।६	५	७ ।२ ।५ ।१ ।०
६०	११ ।२६ ।३९ ।० ।७	६	१० ।२६ ।३० ।१ ।१२
७०	३ ।२६ ।५ ।३० ।८	७	२ ।२० ।५५ ।१ ।२४
८०	७ ।२५ ।३२ ।० ।१०	८	६ ।१५ ।२० ।१ ।३६
९०	११ ।२४ ।५८ ।३० ।११	९	१० ।९ ।४५ ।१ ।४८
		१०	२ ।४ ।१० ।२ ।०

द्वापर के अन्त में शुक्र शीघ्र का ध्रुव १ ।११ ।२४ ।० ।० ।

करणाब्द आरम्भ में शुक्र शीघ्र का ध्रुव ११ ।१३ ।४१ ।४२ ।१२

शुक्र की दैनिक गति लिप्ता आदि ९६ ।७ ।३७ ।४७ ।५८

द्वापरान्त में शुक्र का मन्द २ ।५ ।२५ ।४८ पात १ ।२४ ।२७ ।०

करणाब्द में शुक्र का मन्द २ ।५ ।३९ ।३८ ।२९ पात १ ।२४ ।३ ।३१ ।०

मन्द हार ३५९ पात हार २१२

छेद २२५ देशान्तर कला आदि ४ ।४ ।०

(१०) मध्यम शनि के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।२ ।० ।२७	१ हजार	१ ।३ ।२७ ।२८ ।३७
२	० ।० ।४ ।० ।५४	२	२ ।६ ।५४ ।५७ ।१५
३	० ।० ।६ ।१ ।२१	३	३ ।१० ।२२ ।२५ ।५२
४	० ।० ।८ ।१ ।४८	४	४ ।१३ ।४९ ।५४ ।३०
५	० ।० ।१० ।२ ।१५	५	५ ।१७ ।१७ ।२३ ।७
६	० ।० ।१२ ।२ ।४२	६	६ ।२० ।४४ ।५१ ।४५
७	० ।० ।१४ ।३ ।८	७	७ ।२४ ।१२ ।२० ।२२
८	० ।० ।१६ ।३ ।३५	८	८ ।२७ ।३९ ।४९ ।०
९	० ।० ।१८ ।४ ।२	९	१० ।१ ।७ ।१७ ।३७
१०	० ।० ।२० ।४ ।२९	१०	११ ।४ ।३४ ।४६ ।१५
२०	० ।० ।४० ।८ ।५८	२०	१० ।९ ।९ ।३२ ।२९
३०	० ।१ ।० ।१३ ।२८	३०	९ ।१३ ।४४ ।१८ ।४४
४०	० ।१ ।२० ।१७ ।५७	४०	८ ।१८ ।१९ ।४ ।५९
५५	० ।१ ।४० ।२२ ।२६	५०	७ ।२२ ।५३ ।५१ ।१३
६०	० ।२ ।० ।२६ ।५५	६०	७ ।२७ ।२८ ।३७ ।२८
७०	० ।२ ।२० ।३२ ।२४	७०	६ ।२ ।३ ।२३ ।४३
८०	० ।२ ।४० ।३५ ।५३	८०	५ ।६ ।३८ ।९ ।५८
९०	० ।३ ।० ।४० ।२३	९०	४ ।११ ।१२ ।५६ ।१२
१ सौ	० ।३ ।२० ।४४ ।५२	१ लाख	३ ।१५ ।४७ ।४२ ।२७
२	० ।६ ।४१ ।२९ ।४३	२	७ ।१ ।३५ ।२४ ।५४
३	० ।१० ।२ ।१४ ।३५	३	१० ।१७ ।२३ ।७ ।२१
४	० ।१३ ।२२ ।५९ ।२७	४	२ ।३ ।१० ।४९ ।४८
५	० ।१६ ।४३ ।४४ ।१९	५	५ ।१८ ।५८ ।३२ ।१५
६	० ।२० ।४ ।२९ ।१०	६	९ ।४ ।४६ ।१४ ।४२
७	० ।२३ ।२५ ।१४ ।२	७	० ।२० ।३३ ।५७ ।८
८	० ।२६ ।४५ ।५८ ।५४	८	४ ।६ ।२१ ।३९ ।३७
९	१ ।० ।६ ।४३ ।४६	९	६ ।२२ ।९ ।२२ ।२

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	११ ।७ ।५७ ।४ ।२९	१ करोड़	४ ।१९ ।३० ।४४ ।५२
२०	१० ।१५ ।५४ ।८ ।५८	२	९ ।९ ।० ।२९ ।४४
३०	९ ।२३ ।५१ ।१३ ।२८	३	१ ।२८ ।३२ ।१४ ।३६
४०	९ ।१ ।४८ ।१७ ।५७	४	६ ।१८ ।२ ।५९ ।२९
५०	८ ।९ ।४५ ।२२ ।२६	५	११ ।७ ।३३ ।४४ ।२१
६०	७ ।१७ ।४२ ।२६ ।५५	६	३ ।२७ ।४ ।२९ ।१३
७०	६ ।२५ ।३९ ।३१ ।२५	७	८ ।१६ ।३५ ।१४ ।५
८०	६ ।३ ।३६ ।३५ ।५४	८	१ ।६ ।५ ।५८ ।५७
९०	५ ।११ ।३३ ।४० ।२३	९	५ ।२५ ।३६ ।४३ ।४९
		१०	१० ।१५ ।७ ।२८ ।४२

द्वापर के अन्त में शनि का ध्रुव ११ ।० ।५० ।२४ ।०
करणाब्द में शनि का ध्रुव ७ ।१८ ।१२ ।१७ ।२४
शनि की दैनिक गति लिप्ता आदि २ ।० ।२६ ।५५ ।३
द्वापर के अन्त में शनि का मन्द ८ ।९ ।१८ ।० ।०
करणाब्द में शनि का मन्द ८ ।९ ।१९ ।४४ ।१०
द्वापर के अन्त में शनि का पात ३० ।० ।२७ ।० ।०
करणाब्द ३ ।० ।१३ ।२७ ।२४
मन्द हार २८५७ पात हार ३६७
छेद १०७६० देशान्तर कला आदि० ।५ ।६

(११) चन्द्र पात (राहु) के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।३ ।१० ।४८	१ हजार	१ ।२२ ।५९ ।५४ ।३८
२	० ।० ।६ ।२१ ।३५	२	३ ।१५ ।५९ ।४९ ।१६
३	० ।० ।९ ।३२ ।३२	३	५ ।८ ।५९ ।४३ ।५४
४	० ।० ।१२ ।४३ ।११	४	७ ।१ ।५९ ।३८ ।३२
५	० ।० ।१५ ।५३ ।५८	५	८ ।२४ ।५९ ।३३ ।९
६	० ।० ।१९ ।४ ।४६	६	१० ।१७ ।५९ ।२७ ।४७
७	० ।० ।२२ ।१५ ।३४	७	० ।१० ।५९ ।२२ ।२५
८	० ।० ।२५ ।२६ ।२१	८	२ ।३ ।५९ ।१७ ।३
९	० ।० ।२८ ।३७ ।९	९	३ ।२६ ।५९ ।११ ।४१
१०	० ।० ।३१ ।४७ ।५७	१०	५ ।१९ ।५९ ।५४ ।३८
२०	० ।१ ।३ ।३५ ।५४	२०	११ ।९ ।५८ ।१२ ।३८
३०	० ।१ ।३५ ।२३ ।५०	३०	४ ।२९ ।५७ ।१८ ।५७
४०	० ।२ ।७ ।११ ।४७	४०	१० ।१९ ।५६ ।२५ ।१६
५०	० ।२ ।३८ ।५९ ।४४	५०	४ ।९ ।५५ ।३१ ।३५
६०	० ।३ ।१० ।४७ ।४१	६०	९ ।२९ ।५४ ।३७ ।५४
७०	० ।३ ।४२ ।३५ ।३७	७०	३ ।१९ ।५३ ।४४ ।१३
८०	० ।४ ।१४ ।२३ ।३४	८०	९ ।९ ।५२ ।५० ।३१
९०	० ।४ ।४६ ।११ ।३१	९०	२ ।२९ ।५१ ।५६ ।५१
१ सौ	० ।५ ।१७ ।५९ ।२८	१ लाख	८ ।१९ ।५१ ।३ ।१०
२	० ।१० ।३५ ।५८ ।५६	२	५ ।९ ।४२ ।६ ।२०
३	० ।१५ ।५३ ।५८ ।२३	३	१ ।२९ ।३३ ।९ ।३०
४	० ।२१ ।११ ।५७ ।५१	४	१० ।१९ ।२४ ।१२ ।४०
५	० ।२६ ।२९ ।५९ ।१९	५	७ ।९ ।१५ ।१५ ।४९
६	१ ।१ ।४७ ।५६ ।४८	६	३ ।२९ ।६ ।१८ ।५९
७	१ ।७ ।५ ।५६ ।१५	७	० ।१८ ।५७ ।२२ ।९
८	१ ।१२ ।२३ ।५५ ।४२	८	९ ।८ ।४८ ।२५ ।१९
९	१ ।१७ ।४१ ।५५ ।१०	९	५ ।२८ ।३९ ।२८ ।२९

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	२ ।१८ ।३० ।३१ ।३९	१ करोड़	२ ।५ ।५ ।१६ ।३०
२०	५ ।७ ।१ ।३ ।१८	२	५ ।१० ।१० ।३३ ।१
३०	७ ।२५ ।३१ ।३४ ।५७	३	६ ।१५ ।१५ ।४९ ।३१
४०	१० ।१४ ।२ ।६ ।३६	४	८ ।२० ।२१ ।६ ।१
५०	१ ।२ ।३२ ।३८ ।१५	५	१० ।२५ ।२६ ।२२ ।३
६०	३ ।.२१ ।३ ।९ ।५४	६	१ ।१० ।३१ ।३९ ।२
७०	६ ।९ ।३३ ।४१ ।३३	७	३ ।५ ।३६ ।५५ ।३२
८०	८ ।२८ ।४ ।१३ ।१२	८	५ ।१० ।४२ ।१२ ।२
९०	११ ।१६ ।३४ ।४४ ।५१	९	७ ।१५ ।५७ ।२८ ।३३
		१०	९ ।२० ।५२ ।४५ ।३

विशेष द्रष्टव्य - इसी प्रकार अरब वर्ष तक मंगल, गुरु और शनि का मध्य तथा बुध शुक्र के शीघ्र की गणना हो सकती है।

द्वापर के अन्त में राहु का ध्रुव ६ ।२१ ।१९ ।४८ ।०

करणाब्द में राहु का ध्रुव ३ ।२१ ।१९ ।१८ ।२८

गति लिप्ता आदि (राहु की दैनिक गति) ३ ।१० ।४७ ।४० ।४०

छेद ६७९३ देशान्तर कला आदि ० ।८ ।४

स्फुटाधिकार के पदक

ग्रह स्फुट करने के लिये खण्डफलों की सारणी प्रथम मन्द के चल केन्द्र गति, उदयास्त केन्द्र, क्षेत्रांश आदि)

(१२) रति के बढ़ते हुए स्थूल मन्द खण्ड

(पञ्चम प्रकाश १९४ श्लोक)

खण्ड	स्थूल फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	ऋण गतिफल लिप्ता
०	० ।० ।०	८ ।१६	२ ।१०
१	० ।८ ।१६	८ ।१४	२ ।१०
२	० ।१६ ।३०	८ ।९	२ ।९
३	० ।२४ ।३९	८ ।३	२ ।८
४	० ।३२ ।४२	७ ।५४	२ ।६
५	० ।४० ।३६	७ ।४४	२ ।३
६	० ।४८ ।२०	७ ।३३	२ ।०
७	० ।५५ ।५३	७ ।२०	१ ।५७
८	१ ।३ ।१३	७ ।३	१ ।५३
९	१ ।१० ।१६	६ ।४६	१ ।४९
१०	१ ।१७ ।२	६ ।२७	१ ।४४
११	१ ।२३ ।२९	६ ।५	१ ।३८
१२	१ ।२९ ।३४	५ ।४४	१ ।३२
१३	१ ।३५ ।१८	५ ।२१	१ ।२६
१४	१ ।४० ।३९	४ ।५५	१ ।२०
१५	१ ।४५ ।३४	४ ।३०	१ ।१३
१६	१ ।५० ।४	४ ।२	१ ।६
१७	१ ।५४ ।६	३ ।३४	० ।५८
१८	१ ।५७ ।४०	३ ।४	० ।५०
१९	२ ।० ।४४	२ ।३४	० ।४२
२०	२ ।३ ।१८	२ ।४	० ।३४
२१	२ ।५ ।२२	१ ।३३	० ।२६
२२	२ ।६ ।५५	१ ।१	० ।१७
२३	२ ।७ ।५६	० ।२८	० ।९
२४	२ ।८ ।२४ (ह्रास क्रम)	० ।३	० ।०

खण्ड *	स्थूल फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	ऋण गतिफल लिप्ता
२५	२ ।८ ।२१	० ।३७ (बढ़ना)	० ।९
२६	२ ।७ ।४४	१ ।९	० ।१७
२७	२ ।६ ।३५	१ ।४२	० ।२६
२८	२ ।४ ।५३	२ ।१३	० ।३५
२९	२ ।२ ।४०	२ ।४५	० ।४३
३०	१ ।५९ ।५५	३ ।१८	० ।५१
३१	१ ।५६ ।३७	३ ।४८	० ।५९
३२	१ ।५२ ।४९	४ ।१८	१ ।७
३३	१ ।४८ ।३१	४ ।४७	१ ।१५
३४	१ ।४३ ।४४	५ ।१६	१ ।२२
३५	१ ।३८ ।२८	५ ।४३	१ ।२९
३६	१ ।३२ ।५५	६ ।७	१ ।३६
३७	१ ।२६ ।३८	६ ।३२	१ ।४२
३८	१ ।२० ।६	६ ।५३	१ ।४८
३९	१ ।१३ ।१३	७ ।१५	१ ।५३
४०	१ ।५ ।४८	७ ।३४	१ ।५८
४१	० ।५८ ।२४	७ ।४९	२ ।२
४२	० ।५० ।३५	८ ।२	२ ।६
४३	० ।४२ ।३३	८ ।१६	२ ।९
४४	० ।३४ ।१७	८ ।२५	२ ।१२
४५	० ।२५ ।५२	८ ।३३	२ ।१४
४६	० ।१७ ।१९	८ ।३८	२ ।१६
४७	० ।८ ।४१	८ ।४१	२ ।१७
४८	० ।० ।०	० ।०	२ ।१७

(१३) रवि के सूक्ष्म मन्दफल खण्ड

खण्ड	सूक्ष्म फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋणगति फल लिप्ता
०	० ।० ।०	७ ।२६	१ ।५७
१	० ।७ ।२६	७ ।२५	१ ।५७
२	० ।१४ ।५१	७ ।२०	१ ।५६
३	० ।२२ ।११	७ ।१५	१ ।५५
४	० ।२९ ।२६	७ ।७	१ ।५३
५	० ।३६ ।३३	६ ।५७	१ ।५१

खण्ड	सूक्ष्म फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋणगति फल लिप्ता
६	० ।४३ ।३०	६ ।४८	१ ।४८
७	० ।५० ।१८	६ ।३६	१ ।४५
८	० ।५६ ।५४	६ ।२०	१ ।४२
९	१ ।३ ।१४	६ ।६	१ ।३८
१०	१ ।९ ।२०	५ ।४८	१ ।३३
११	१ ।१५ ।८	५ ।२९	१ ।२८
१२	१ ।२० ।३७	५ ।१०	१ ।२३
१३	१ ।२५ ।४७	४ ।४८	१ ।१८
१४	१ ।३० ।३५	४ ।२६	१ ।१२
१५	१ ।३५ ।१	४ ।३	१ ।६
१६	१ ।३९ ।४	३ ।३७	० ।५९
१७	१ ।४२ ।४१	३ ।१३	० ।५२
१८	१ ।४५ ।५४	२ ।४६	० ।४५
१९	१ ।४८ ।४०	२ ।१८	० ।३८
२०	१ ।५० ।२८	१ ।५१	० ।३१
२१	१ ।५२ ।४९	१ ।२४	० ।२३
२२	१ ।५४ ।१३	० ।५५	० ।१६
२३	१ ।५५ ।८	० ।२५	० ।८
२४	१ ।५५ ।३३ (घटता हुआ)	० ।२	० ।०
२५	१ ।५५ ।३ १	० ।३३ (धन)	० ।८
२६	१ ।५४ ।५८	१ ।३	० ।१६
२७	१ ।५३ ।५५	१ ।३१	० ।२३
२८	१ ।५२ ।२४	२ ।०	० ।३१
२९	१ ।५० ।२४	२ ।२९	० ।३९
३०	१ ।४७ ।५५	२ ।५७	० ।४६
३१	१ ।४४ ।५८	३ ।२६	० ।५३
३२	१ ।४१ ।३२	३ ।५२	१ ।०
३३	१ ।३७ ।४०	४ ।१९	१ ।७
३४	१ ।३३ ।२१	४ ।४४	१ ।१४
३५	१ ।२८ ।३७	५ ।८	१ ।२०
३६	१ ।२३ ।२९	५ ।३१	१ ।२६
३७	१ ।१७ ।५८	५ ।५२	१ ।३२

खण्ड	सूक्ष्म फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋणगति फल लिप्ता
३८	१ ।१२ ।६	६ ।१३	१ ।३७
३९	१ ।५ ।३५	६ ।३०	१ ।४२
४०	० ।५९ ।२३	६ ।५९	१ ।४५
४१	० ।५२ ।३४	७ ।३	१ ।५०
४२	० ।४५ ।३१	७ ।१४	१ ।५३
४३	० ।३८ ।१७	७ ।२५	१ ।५६
४४	० ।३० ।५२	७ ।५३	१ ।५९
४५	० ।२३ ।१७	७ ।४२	२ ।१
४६	० ।१५ ।५३	७ ।४६	२ ।२
४७	० ।७ ।४९	७ ।४९	२ ।३
४८	० ।० ।०	० ।०	२ ।३

रवि की मन्द केन्द्र गति ५९ ।८ ।१०

खण्ड क्षेप राशि आदि ० ।७ ।५३ ।५ ।२१

(१४) चन्द्र के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
०	० ।० ।०	१९ ।२३	६७ ।३०
१	० ।१९ ।२३	१९ ।१७	६७ ।२२
२	० ।३८ ।४०	१९ ।८	६६ ।५७
३	० ।५७ ।४८	१८ ।५३	६६ ।१४
४	१ ।१६ ।४१	१८ ।३३	६५ ।१४
५	१ ।३५ ।१४	१८ ।९	६३ ।५९
६	१ ।५३ ।२३	१७ ।४३	६२ ।२७
७	२ ।२२ ।६	१७ ।१५	६० ।३९
८	२ ।२८ ।२१	१६ ।३४	५८ ।३६
९	२ ।४४ ।५५	१५ ।५५	५६ ।१७
१०	३ ।० ।५०	१५ ।१०	५३ ।४४
११	३ ।१६ ।०	१४ ।१९	५० ।५७
१२	३ ।३० ।१९	१३ ।३०	४७ ।५७
१३	३ ।४३ ।४९	१२ ।३८	४४ ।४५
१४	३ ।५६ ।२७	११ ।३७	४१ ।२१
१५	४ ।८ ।४	१० ।३५	३७ ।४६
१६	४ ।१८ ।३९	९ ।३०	३४ ।१

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
१७	४ ।२८ ।१९	८ ।२३	३० ।७
१८	४ ।३६ ।३२	७ ।१०	२६ ।५
१९	४ ।४३ ।४२	५ ।५९	२१ ।५६
२०	४ ।४९ ।४१	४ ।४६	१७ ।४१
२१	४ ।५४ ।२७	३ ।३३	१३ ।२१
२२	४ ।५८ ।०	२ ।१४	८ ।५६
२३	५ ।० ।१४	० ।५६	४ ।२९
२४	५ ।१ ।१० (घटना शुरू)	० ।१८	० ।०
२५	५ ।० ।५२	१ ।३८ (बढ़ना)	४ ।३०
२६	४ ।५९ ।१४	२ ।५७	८ ।५९
२७	४ ।५६ ।१७	४ ।१२	१३ ।२६
२८	४ ।५२ ।५	५ ।२७	१७ ।५०
२९	४ ।४६ ।३८	६ ।४३	२२ ।१०
३०	४ ।३९ ।५५	७ ।५५	२६ ।२४
३१	४ ।३२ ।०	९ ।११	३० ।३२
३२	४ ।२२ ।४९	१० ।२०	३४ ।३४
३३	४ ।१२ ।२९	११ ।२४	३८ ।२७
३४	४ ।१ ।५	१२ ।३२	४२ ।१०
३५	३ ।४८ ।३४	१३ ।२८	४५ ।४२
३६	३ ।३५ ।६	१४ ।२२	४९ ।१
३७	३ ।२० ।४४	१५ ।१७	५२ ।११
३८	३ ।५ ।१७	१६ ।७	५५ ।७
३९	२ ।४९ ।२०	१६ ।५१	५७ ।४८
४०	२ ।३२ ।२९	१७ ।३५	६० ।१४
४१	२ ।१४ ।५४	१८ ।९	६२ ।२४
४२	१ ।५६ ।४५	१८ ।१७	६४ ।१९
४३	१ ।३८ ।८	१९ ।४	६५ ।५६
४४	१ ।१९ ।४	१९ ।२६	६७ ।१६
४५	० ।५९ ।३८	१९ ।४४	६८ ।१९
४६	० ।३९ ।५४	१९ ।५४	६९ ।५

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
४७	० ।२० ।०	२० ।०	६९ ।३२
४८	० ।० ।०	० ।०	६९ ।४१

चन्द्र की मन्द केन्द्र गति ७८३ ।५४

खण्ड क्षेप ३ ।१४ ।३१ ।११ ।३७

सूर्य से पश्चिम उदयांश ११

पूर्व में अस्त अंश ३४९

(१५) मंगल के परोच्च खण्ड कर्क से आरम्भ कर ३ राशि में)

खण्ड	फल लिप्ता आदि	अन्तर लिप्ता आदि
०	० ।०	२९ ।२७
१	२९ ।२७	२९ ।१९
२	४८ ।४६	२९ ।४
३	८७ ।५०	२८ ।४०
४	११६ ।३०	२८ ।८
५	१४४ ।३८	२७ ।२९
६	१७२ ।७	२६ ।५०
७	१९८ ।५७	२६ ।३
८	२२५ ।०	२५ ।०
९	२५० ।०	२३ ।५७
१०	२७३ ।५७	२२ ।४७
११	२९६ ।४४	२१ ।२८
१२	३१८ ।१२	२० ।९
१३	३३८ ।२१	१८ ।४३
१४	३५७ ।४	१७ ।९
१५	३७४ ।१३	१५ ।३४
१६	३९८ ।४७	१३ ।५३
१७	४०३ ।४०	१२ ।१०
१८	४१५ ।५०	१० ।२१
१९	४२६ ।११	८ ।३०
२०	४४३ ।४१	६ ।४१
२१	४४१ ।२२	४ ।५०
२२	४४६ ।१२	२ ।५३

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
२३		४४९ ।५	० ।५५
२४		४५० ।०	० ।०

(१६) मंगल के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
०	० ।० ।०	४३ ।२१	६५८ ।५७
१	० ।४३ ।२१	४३ ।३७	६५८ ।५७
२	२ ।२६ ।५८	४३ ।४२	६५८ ।५७
३	२ ।१० ।४०	४३ ।३३	६५६ ।३३
४	२ ।५४ ।१३	४३ ।९	६५० ।३
५	३ ।३७ ।२२	४२ ।४५	६४० ।३०
६	४ ।२० ।७	४२ ।७	६२८ ।३
७	५ ।२ ।१४	४१ ।१८	६ ।१२ ।३१
८	५ ।४३ ।३२	३९ ।५८	५९४ ।१३
९	६ ।२३ ।३०	३८ ।३६	५७२ ।५९
१०	७ ।२ ।६	३७ ।२	५४९ ।१
११	७ ।३९ ।८	३५ ।२५	५२२ ।१६
१२	८ ।१४ ।३३	२९ ।४२	४९२ ।५७
१३	८ ।४४ ।१५	२७ ।७	४५८ ।१
१४	९ ।११ ।२२	२४ ।१८	४२१ ।१३
१५	९ ।३५ ।४०	२१ ।३१	३८२ ।४८
१६	९ ।५७ ।११	१८ ।३३.	३४३ ।०
१७	१० ।१५ ।४४	१५ ।४४	३०१ ।५३
१८	१० ।३१ ।२८	१२ ।३७	२५९ ।५८
१९	१० ।४४ ।५	९ ।४१	२१७ ।२२
२०	१० ।५३ ।४६	६ ।३९	१७४ ।१३
२१	११ ।० ।२५	२ ।२२	१३० ।४०
२२	११ ।२ ।४७	० ।०	८६ ।५८
२३	११ ।२ ।४७	० ।०	४३ ।२१
२४	११ ।२ ।४७	० ।०	० ।०
२५	११ ।२ ।४७	० ।०	४३ ।३५
२६	११ ।२ ।४७	० ।०	८७ ।२५
२७	११ ।२ ।४७	० ।०	१३२ ।४७

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
२८	११ ।२ ।४७ (ह्रास)	२ ।.३	१७७ ।५०
२९	११ ।० ।४४	९ ।५३	२२२ ।५७
३०	१० ।५० ।५१	१३ ।२५	२६७ ।५२
३१	१० ।३७ ।२६	१६ ।३८	३१२ ।२७
३२	१० ।२० ।४८	१९ ।५६	३५६ ।२७
३३	१० ।० ।५२	२३ ।८	३९९ ।२५
३४	९ ।३७ ।४४	२६ ।१८	४४१ ।२१
३५	९ ।११ ।२६	२९ ।३१	४८१ ।३२
३६	८ ।४१ ।५५	३८ ।५७	५१९ ।५८
३७	८ ।२ ।५८	४० ।४९	५४९ ।४
३८	७ ।२२ ।९	४१ ।५७	५७५ ।२
३९	६ ।४० ।१२	४३ ।१०	५९७ ।५१
४०	५ ।५७ ।२	४४ ।१२	६१७ ।३१
४१	४ ।१२ ।५०	४४ ।४६	६३३ ।५६
४२	४ ।२८ ।४	४५ ।७	६४७ ।१०
४३	३ ।४२ ।५७	४५ ।७	६५६ ।५६
४४	२ ।५७ ।५०	४५ ।७	६५८ ।५७
४५	२ ।१२ ।४३	४४ ।४८	६५८ ।५७
४६	१ ।२७ ।५५	४४ ।२०	६५८ ।५७
४७	० ।४३ ।३५	४३ ।३५	६५८ ।५७
४८	० ।० ।०	० ।०	६५८ ।५७

मन्दभुक्ति ० ।०

मन्द केन्द्र भुक्ति ३१ ।२६

शीघ्र भुक्ति (रवि मध्य भुक्ति) ५९ ।८ शीघ्रकेन्द्र भुक्ति २७ ।४२

(१७) मंगल के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण
०	० ।० ।०	८९ ।४६	५७१० ।५४
१	१ ।२९ ।४६	८९ ।३१	५७०८ ।५०
२	२ ।५९ ।७	८९ ।३०	५७०० ।३४
३	४ ।२८ ।३७	८९ ।१९	५६८६ ।२०
४	५ ।५७ ।५६	८९ ।०	५६६६ ।२१
५	७ ।२६ ।४७	८८ ।५०	५६४० ।५४

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण
६	८ ।५५ ।४७	८८ ।४९	५६०९ ।३४
७	१० ।२४ ।२८	८८ ।.४०	५५७२ ।१७
८	११ ।५३ ।८	८८ ।१२	५५२९ ।२८
९	१३ ।२१ ।२०	८७ ।३८	५४८० ।४६
१०	१४ ।४८ ।५८	८७ ।२४	५४२४ ।४९
११	१६ ।१६ ।२२	८६ ।३५	५३६६ ।५७
१२	१७ ।४२ ।५७	८५ ।५१	५३०१ ।४५
१३	१९ ।८ ।४८	८६ ।२२	५२३१ ।२२
१४	२० ।३५ ।१०	८३ ।५४	५१५४ ।६
१५	२१ ।५९ ।४	८४ ।२४	५०७४ ।४७
१६	२३ ।२३ ।२८	८२ ।१६	४९८७ ।२
१७	२४ ।५४ ।४४	८० ।४७	४८९७ ।३१
१८	२६ ।६ ।३१	८० ।२४	४८०१ ।४२
१९	२७ ।२६ ।५५	७८ ।०	४७०१ ।२२
२०	२८ ।४४ ।५५	७६ ।.२२	४५९६ ।५१
२१	३० ।१ ।.१७	७६ ।३६	४४८६ ।३६
२२	३१ ।१७ ।५३	७३ ।३७	४३७२ ।४२
२३	३२ ।३१ ।३०	७० ।५	४२५४ ।११
२४	३३ ।४१ ।३५	६८ ।१९	४१३१ ।५८
२५	३४ ।४९ ।५४	६४ ।६	४००४ ।३१
२६	३५ ।५४ ।०	५९ ।४५	३८७४ ।१
२७	३६ ।५३ ।४५	५६ ।१९	३७३९ ।५३
२८	३७ ।५० ।४	५३ ।५	३६०२ ।५९
२९	३८ ।४३ ।९	४७ ।१०	३४६३ ।३२
३०	३९ ।३० ।१९	४० ।५१	३३२१ ।४४
३१	४० ।११ ।१०	३४ ।४	३१७२ ।१५
३२	४० ।४५ ।१४	२५ ।४७	३०३० ।४४
३३	४१ ।११ ।१	१७ ।२४	२८८३ ।०
३४	४१ ।२८ ।२५	६ ।०	२७३४ ।१७
३५	४१ ।३४ ।२५ (ह्रास)	६ ।५०	२५८४ ।५१
३६	४१ ।२७ ।३५	२१ ।७	२४३५ ।४१
३७	४१ ।६ ।.२८	४० ।४७	२२८६ ।२२

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण
३८	४० ।२५ ।४१	६४ ।३९	२१४० ।१
३९	३९ ।२१ ।२	८९ ।८	१९९६ ।१
४०	३७ ।५१ ।५४	१२२ ।८	१८५५ ।३९
४१	३५ ।४९ ।४६	१६१ ।३६	१७२० ।४०
४२	३३ ।८ ।१०	२०६ ।१४	१५९३ ।२१
४३	२९ ।४१ ।५६	२५६ ।३७	२४६७ ।३७
४४	२५ ।२५ ।१९	३१२ ।४० वक्री आरम्भ)	१३७३ ।२
४५	२० ।१२ ।३९	३६७ ।६	१२८६ ।४
४६	१४ ।५ ।३३	४१० ।३४	१२१९ ।५२
४७	७ ।१४ ।५९	४३४ ।५९	११७८ ।३२
४८	० ।० ।०	० ।०	११६५ ।६

वक्र केन्द्र अंश १६३, वक्री के बाद ऋतु केन्द्र १९७ पश्चिम में अस्त केन्द्र ३३२,
पूर्व में उदय केन्द्र २८, सूर्य से अस्त या उदय अंश १६

(१८) बुध के मन्द शीघ्र के परस्पर परोच्च खण्ड

खण्ड	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	गति लिप्ता
०	० ।०	४४ ।३०	४८ ।३४
१	४४ ।३०	४८ ।१८	४८ ।२८
२	८८ ।४८	४३ ।५५	४८ ।९
३	१३२ ।४३	४३ ।१९	४७ ।३८
४	१७६ ।२	४२ ।२८	४६ ।५५
५	२१८ ।३०	४१ ।३६	४६ ।०
६	२६० ।६	४० ।३२	४४ ।५३
७	३०० ।३८	३९ ।२२	४३ ।३४
८	३४० ।०	३७ ।४७	४२ ।४
९	३७७ ।४७	३६ ।११	४० ।३०
१०	४१३ ।५८	३४ ।२५	३८ ।३२
११	४४८ ।२३	३२ ।२७	३६ ।३१
१२	४८० ।५०	३० ।२७	३४ ।२०
१३	५११ ।१७	२८ ।१७	३२ ।१
१४	५३९ ।३४	२५ ।५५	२९ ।३४
१५	५६५ ।२९	२३ ।३२	२६ ।५९
१६	५८९ ।१	२० ।५८	२४ ।१७

खण्ड	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	गति लिप्ता
१७	६०९ ।५९	१८ ।२४	२१ ।२८
१८	६२८ ।२३	१५ ।३७	१८ ।३६
१९	६४४ ।०	१२ ।५२	१५ ।३७
२०	६५६ ।५२	१० ।५	१२ ।३४
२१	६६६ ।५७	७ ।१९	९ ।२९
२२	६७४ ।१६	४ ।२१	६ ।२१
२३	६७८ ।३७	१ ।२३	३ ।११
२४	६८० ।०	० ।०	० ।०

(१९) बुध के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
०	० ।० ।०	१६ ।३७	२५७ ।५१
१	० ।१६ ।३७	१६ ।१	२५३ ।२१
२	० ।३२ ।३८	१५ ।२२	२४७ ।४७
३	० ।४८ ।०	१४ ।४०	२४१ ।११
४	१ ।२ ।४०	१३ ।५५	२३३ ।५१
५	१ ।१६ ।३५	१३ ।९	२२५ ।४०
६	१ ।२५ ।४४	१२ ।२२	२१६ ।४८
७	१ ।४२ ।६	११ ।३७	२०७ ।१०
८	१ ।५३ ।४३	१० ।४७	१९७ ।१
९	२ ।४ ।३०	१० ।०	१८६ ।२२
१०	२ ।१४ ।३०	९ ।५	१५७ ।१८
११	२ ।२३ ।३५	८ ।२१	१६३ ।४३
१२	२ ।३१ ।५६	११ ।४७	१५१ ।५६
१३	२ ।४३ ।४३	११ ।३५	१४३ ।४५
१४	२ ।५५ ।१८	११ ।४४	१३४ ।३०
१५	३ ।६ ।२२	१० ।३९	१२४ ।३०
१६	३ ।१७ ।१	१० ।९	११३ ।४३
१७	३ ।२७ ।१०	९ ।३८	१०२ ।६
१८	३ ।३६ ।४८	८ ।५२	८९ ।४४
१९	३ ।४५ ।४०	८ ।१४	७६ ।३५
२०	३ ।५३ ।५४	७ ।२२	६२ ।४०
२१	४ ।१ ।१६	६ ।३७	४८ ।०

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
२२	४ ।७ ।५३	५ ।३६	३२ ।३८
२३	४ ।१३ ।२९	४ ।३१	१६ ।१७
२४	४ ।१८ ।०	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ० ।० ।०, शीघ्र भुक्ति २४५ ।३२

मन्द केन्द्र भुक्ति (मध्यम रवि) ५९ ।८, शीघ्र केन्द्र भुक्ति १८६ ।२४

(२०) बुध के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	६२ ।४३	४७६५ ।२७
१	१ ।२ ।४३	६२ ।३९	४७६४ ।११
२	२ ।५ ।२२	६२ ।२८	४७५८ ।४२
३	३ ।७ ।५०	६२ ।१५	४७४८ ।५६
४	४ ।१० ।५	६१ ।५७	४७३५ ।१६
५	४ ।१२ ।२	६१ ।२३	४७१७ ।२८
६	६ ।१३ ।२५	६० ।५९	४६९५ ।४४
७	७ ।१४ ।२४	६० ।४५	४६६९ ।५३
८	८ ।१५ ।९	५९ ।५२	४६४० ।२
९	९ ।१५ ।१	५९ ।०	४६०६ ।१०
१०	१० ।१४ ।१	५७ ।५२	४५६८ ।४०
११	११ ।११ ।५३	५७ ।१३	४५२७ ।८
१२	१२ ।९ ।६	५६ ।४	४४८१ ।४७
१३	१३ ।५ ।१०	५४ ।३७	४४३३ ।६
१४	१३ ।५९ ।४७	५२ ।४८	४३८० ।४६
१५	१४ ।५२ ।३५	५१ ।५३	४३२४ ।५४
१६	१५ ।४४ ।२८	५० ।२	४२६५ ।४६
१७	१६ ।३४ ।३०	४७ ।४९	४२०० ।१०
१८	१७ ।२२ ।१९	४५ ।२३	४१३७ ।३७
१९	१८ ।७ ।४२	४२ ।५७	४०६९ ।२६
२०	१८ ।५० ।३९	४१ ।८	३९९८ ।१६
२१	१९ ।३१ ।४२	३८ ।१५	३९२४ ।२६
२२	२० ।१० ।२	३४ ।५३	३८४८ ।९
२३	२० ।४४ ।५५	३१ ।१५	३७६९ ।३३
२४	२१ ।१६ ।१०	२७ ।४४	३६८८ ।४९

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
२५	२१ ।४३ ।५४	२३ ।२९	३६०६ ।२४
२६	२२ ।७ ।२३	१८ ।५६	३५२२ ।२३
२७	२२ ।२६ ।१९	१४ ।२५	३४३७ ।१
२८	२२ ।४० ।४४	९ ।२२	३३५० ।५२
२९	२२ ।५० ।६	३ ।१८	३२६३ ।५०
३०	२२ ।५३ ।२४ (ह्रास)	२ ।४८	३१७६ ।४३
३१	२२ ।५० ।३६	९ ।३६	३०८९ ।१६
३२	२२ ।४१ ।०	१७ ।१	३००२ ।३
३३	२२ ।२३ ।५९	२४ ।२९	२९१५ ।५१
३४	२१ ।५९ ।३०	३३ ।११	२८३० ।५६
३५	२१ ।२६ ।१९	४२ ।१९	२७५७ ।४५
३६	२० ।४४ ।०	५१ ।५७	२६६७ ।३
३७	१९ ।५२ ।२३	६२ ।१६	२५८९ ।५
३८	१८ ।५० ।७	७१ ।४९	२५१४ ।३८
३९	१७ ।३८ ।१८	८२ ।२२	२४४४ ।३३
४०	१६ ।१५ ।५६	९३ ।३९	२३७९ ।११
४१	१४ ।४२ ।१७	१०३ ।०	२३१९ ।२२
४२	१२ ।५९ ।१७	११३ ।२	२२६५ ।५३
४३	११ ।६ ।१२	१२१ ।९	२२ ।१९ ।३२
४४	९ ।५ ।६	१२९ ।२१	२१८० ।३७
४५	६ ।५५ ।४५	१३५ ।५	२१४९ ।५३
४६	४ ।४० ।४०	१३९ ।२०	२१२७ ।३४
४७	२ ।२१ ।२०	१४१ ।२०	२११४ ।२४
४८	० ।० ।०	० ।०	२११० ।३३

चल केन्द्र १४६, ऋजुकेन्द्र २१४

पूर्व में अस्त होने का केन्द्र ३१० पश्चिम उदय का केन्द्र ५० पश्चिम में अस्त का केन्द्र १५९ पूर्व उदय का केन्द्र २०१ सूर्य से अस्त का केन्द्र-१२

(२१) बुध शीघ्र खण्ड के वैकल्पिक मान

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	६१ ।४	४७१७ ।४२
१	१ ।१ ।४	६१ ।१	४७१६ ।२८
२	२ ।२ ।५	६० ।४९	४७११ ।८

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
३	३ ।२ ।५४	६० ।३५	४७०१ ।४०
४	४ ।३ ।२९	६० ।१९	४६८८ ।२३
५	५ ।३ ।४८	५९ ।४५	४६७१ ।३
६	६ ।३ ।३३	५९ ।२०	४६४९ ।५५
७	७ ।२ ।५३	५८ ।५९	४६२४ ।४५
८	८ ।१ ।५२	५८ ।१४	४५९५ ।४३
९	९ ।० ।६	५७ ।२१	४५६२ ।४४
१०	९ ।५७ ।२७	५६ ।१२	४५२६ ।१७
११	१० ।५३ ।३९	५५ ।१८	४४८५ ।५२
१२	११ ।४८ ।५७	५४ ।२४	४४४१ ।४४
१३	१२ ।४३ ।२१	५३ ।०	४३९४ ।२४
१४	१३ ।३६ ।२१	५१ ।५	४३४३ ।१३
१५	१४ ।२७ ।२६	४९ ।४४	४२८९ ।११
१६	१५ ।१७ ।१०	४८ ।२०	४२३१ ।४२
१७	१६ ।५ ।३०	४६ ।७	४१७० ।५३
१८	१६ ।५१ ।३७	४३ ।४३	४१०७ ।११
१९	१७ ।३५ ।२०	४१ ।७	४०४० ।५७
२०	१८ ।१६ ।२७	३८ ।४६	३९७१ ।५२
२१	१८ ।५५ ।१३	३५ ।३५	३९०० ।१३
२२	१९ ।३० ।४८	३४ ।६	३८२८ ।४७
२३	२० ।४ ।५४	२९ ।३४	३७५० ।०
२४	२० ।३४ ।२८	२६ ।२	३६७१ ।४७
२५	२१ ।० ।३०	२१ ।४६	३५९१ ।५८
२६	२१ ।२२ ।१६	१७ ।२४	३५१० ।३७
२७	२१ ।३९ ।४०	१२ ।३६	३४२८ ।५
२८	२१ ।५२ ।१६	७ ।३५	३३४४ ।४३
२९	२१ ।५९ ।५१	१ ।४९	३२६० ।५०
३०	२२ ।१ ।४० (ह्रास)	४ ।३	३१७६ ।४५
३१	२१ ।५७ ।३७	१० ।३४	३०९२ ।२
३२	२१ ।४७ ।३	१७ ।४६	३००८ ।३१
३३	२१ ।२९ ।१७	२५ ।१२	२९२५ ।३८
३४	२१ ।४ ।५	३३ ।४०	२८४४ ।३

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
३५	२० ।३० ।२५	४२ ।२४	२७६४ ।१९
३६	१९ ।४८ ।१	५१ ।१४	२६८७ ।२
३७	१८ ।५६ ।४७	६० ।१०	२६१२ ।२९
३८	१७ ।५६ ।३७	७० ।७	२५४१ ।२५
३९	१६ ।४६ ।३०	८० ।५	२४७४ ।३९
४०	१५ ।२६ ।२५	८९ ।३६	२४१२ ।२६
४१	१३ ।५६ ।४९	९७ ।२९	२३५५ ।३८
४२	१२ ।१९ ।२०	१०९ ।७	२३०४ ।५६
४३	१० ।३० ।१७	११५ ।२२	२२६१ ।५
४४	८ ।३४ ।५५	१२२ ।२६	२२२४ ।१७
४५	६ ।३२ ।२९	१२७ ।४६	२१९५ ।१८
४६	४ ।२४ ।४३	१३१ ।२८	२१७४ ।१७
४७	२ ।१३ ।१५	१३३ ।१५	२१६१ ।४९
४८	० ।० ।०	० ।०	२१५८ ।१८

(२२) गुरु के मन्द खण्ड

	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	कोटिफल लिप्ता
०	० ।० ।०	२१ ।३३	३२९ ।२९
१	१ ।२१ ।३३	२१ ।२८	३२८ ।४८
२	० ।४३ ।१	२१ ।१७	३२४ ।४१
३	१ ।४ ।१८	२१ ।०	३२३ ।९
४	१ ।२५ ।१८	२० ।३५	३१८ ।१६
५	१ ।४५ ।५३	२० ।८	३१२ ।२
६	२ ।६ ।१	१९ ।३९	३०४ ।२७
७	२ ।२५ ।४०	१९ ।४	२९५ ।३३
८	२ ।४४ ।४४	१८ ।१९	२८५ ।२४
९	३ ।३ ।३	१७ ।३१	२७३ ।५९
१०	३ ।२० ।३४	१६ ।४१	२६१ ।२६
११	३ ।३७ ।१५	१५ ।४५	२४७ ।४३
१२	३ ।५३ ।०	१४ ।४९	२३२ ।५८
१३	४ ।७ ।४९	१३ ।४७	२१७ ।१५
१४	४ ।२१ ।३६	१२ ।३६	२०० ।३४
१५	४ ।३४ ।१२	११ ।२८	१८३ ।३

	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	कोटिफल लिप्ता
१६	४ ।४५ ।४०	१० ।१२	१६४ ।४४
१७	४ ।५५ ।५२	८ ।५६	१४५ ।४४
१८	५ ।४ ।४८	७ ।३७	१२६ ।१
१९	५ ।१२ ।२५	६ ।१५	१०५ ।५३
२०	५ ।१८ ।४०	४ ।५५	८५ ।१८
२१	५ ।२३ ।३५	३ ।३३	६४ ।१८
२२	५ ।२७ ।८	२ ।८	४३ ।१
२३	५ ।२९ ।१६	० ।४०	२१ ।३३
२४	५ ।२९ ।५६	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ।० ।, शीघ्र भुक्ति (मध्य रवि) ५९ ।८,
मन्द केन्द्र भुक्ति ४ ।५९, शीघ्र केन्द्र भुक्ति ५४ ।९

(२३) गुरु के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	३६ ।३७	४१०६ ।३०
१	० ।३६ ।३७	३६ ।२६	४१०४ ।४४
२	१ ।१३ ।३	३६ ।१२	४१०० ।३२
३	१ ।४९ ।१५	३५ ।५१	४०९३ ।५१
४	२ ।२५ ।६	३५ ।२४	४०८४ ।५५
५	३ ।० ।३०	३४ ।४९	४०७३ ।५२
६	३ ।३५ ।१९	३४ ।२५	४०६० ।२०
७	४ ।० ।४४	३३ ।५३	४०४४ ।२९
८	४ ।४३ ।३७	३२ ।५८	४०२६ ।३७
९	५ ।१६ ।३५	३२ ।३	४००६ ।३२
१०	५ ।४८ ।३८	३१ ।६	३९८४ ।१४
११	६ ।१९ ।४४	३० ।४	३९६० ।०
१२	६ ।४९ ।४८	२८ ।५०	३९३३ ।५४
१३	७ ।१८ ।३८	२७ ।४३	३९०५ ।५२
१४	७ ।४६ ।२१	२६ ।२७	३८७५ ।५७
१५	८ ।१२ ।४८	२४ ।५९	३८४४ ।२५
१६	८ ।३७ ।४७	२३ ।२०	३८११ ।१६
१७	९ ।१ ।७	२१ ।४६	३७७६ ।२६
१८	९ ।२२ ।५३	१९ ।५२	३७४० ।२२

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
१९	९ ।४२ ।४५	१७ ।४४	३७०३ ।०
२०	१० ।० ।२९	१५ ।५३	३६६४ ।२४
२१	१० ।१६ ।२२	१३ ।५६	३६२४ ।४५
२२	१० ।३० ।१८	११ ।२६	३५८४ ।१०
२३	१० ।४१ ।४४	९ ।७	३५४२ ।४२
२४	१० ।५० ।५१	६ ।४४	३५०० ।३५
२५	१० ।५७ ।३५	४ ।११	३४५७ ।५८
२६	११ ।१ ।४६	१ ।११	३४१५ ।२
२७	११ ।२ ।५७ (ह्रास)	१ ।१५	३३७१ ।५५
२८	११ ।१ ।३२	४ ।२१	३३२८ ।४९
२९	१० ।५७ ।११	७ ।१७	३२८५ ।५७
३०	१० ।४९ ।५४	१० ।४१	३२४३ ।२८
३१	१० ।३९ ।१३	१३ ।४२	३२०१ ।२१
३२	१० ।२५ ।३१	१७ ।४	३१६० ।४०
३३	१० ।८ ।२८	२० ।२४	३११९ ।४६
३४	९ ।४८ ।३	२३ ।४२	३०८० ।३८
३५	९ ।२४ ।२१	२७ ।५	३०४२ ।४९
३६	८ ।५७ ।१६	३० ।३१	३००६ ।४०
३७	८ ।२६ ।४५	३३ ।४५	२९७२ ।२३
३८	७ ।५३ ।०	३६ ।४३	२९४० ।२
३९	७ ।१६ ।१७	३९ ।४०	२९०९ ।५२
४०	६ ।३६ ।३७	४२ ।४३	२८८२ ।१५
४१	५ ।५३ ।५४	४५ ।९	२८५७ ।१९
४२	५ ।८ ।४५	४७ ।२७	२८३५ ।४
४३	४ ।२१ ।१८	४९ ।३७	२८१५ ।५३
४४	३ ।३१ ।४१	५१ ।२२	२८०० ।२
४५	२ ।४० ।२९	५२ ।३८	२७८६ ।१४
४६	१ ।४७ ।५१	५३ ।३८	२७७७ ।४६
४७	० ।५४ ।१३	५४ ।१३	२७७२ ।२
४८	० ।० ।०	० ।०	२७६९ ।३०

वक्र केन्द्र १२६, वक्र गति के बाद ऋजु केन्द्र २३४ , पश्चिम में अस्त केन्द्र ३४६, पूर्व में उदय केन्द्र १४, सूर्य द्वारा अस्त केन्द्र १०

(२४) शुक्र के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
०	० ।० ।०	७ ।२५	११४ ।३६
१	० ।७ ।२५	७ ।१३	११३ ।६
२	० ।१४ ।३८	७ ।१	१११ ।६
३	० ।२१ ।३९	६ ।४४	१०८ ।४९
४	० ।२८ ।२३	६ ।२७	१०५ ।५६
५	० ।३४ ।५०	६ ।१२	१०२ ।३९
६	० ।४१ ।२	५ ।५४	९९ ।८
७	० ।४६ ।५६	५ ।३५	९५ ।१४
८	० ।५२ ।३१	५ ।१४	९१ ।०
९	० ।५७ ।५४	४ ।५७	८६ ।२६
१०	१ ।२ ।४२	४ ।३५	८१ ।४३
११	१ ।७ ।१७	४ ।११	७६ ।४३
१२	१ ।११ ।२८	३ ।५६	७१ ।२८
१३	१ ।१५ ।२४	३ ।३२	६६ ।७
१४	१ ।१८ ।५६	३ ।८	६० ।३४
१५	१ ।२१ ।२४	२ ।५२	५४ ।४९
१६	१ ।२४ ।५६	२ ।२७	४९ ।१
१७	१ ।२७ ।२३	२ ।११	४३ ।४
१८	१ ।२९ ।३४	१ ।४७	३५ ।५
१९	१ ।३१ ।२१	१ ।३१	३१ ।०
२०	१ ।३२ ।५२	१ ।७	२४ ।५३
२१	१ ।३३ ।५९	० ।५२	१८ ।४२
२२	१ ।३४ ।५१	० ।२७	१२ ।३०
२३	१ ।३५ ।१८	० ।१२	६ ।१५
२४	१ ।३५ ।३०	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ० ।० मन्द केन्द्र भुक्ति (मध्य रवि)
५९ ।८ शीघ्र भुक्ति ९६ ।८ शीघ्र केन्द्र भुक्ति ३७ ।०

(२५) शुक्र के वैकल्पिक मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
०	० ।० ।०	६ ।५६	१०७ ।२६
१	० ।६ ।५६	६ ।४३	१०५ ।४७
२	० ।१३ ।३९	६ ।३१	१०३ ।४१
३	० ।२० ।१०	६ ।१२	१०१ ।१९
४	० ।२६ ।२२	५ ।५८	९८ ।२४
५	० ।३२ ।२०	५ ।३६	९५ ।१६
६	० ।३७ ।५६	५ ।२१	९१ ।३८
७	० ।४३ ।१७	५ ।१	८७ ।४८
८	० ।४८ ।१८	४ ।४५	८३ ।४१
९	० ।५३ ।३	४ ।२५	७९ ।२५
१०	० ।५७ ।२८	४ ।२	७४ ।२४
११	१ ।१ ।३०	३ ।४७	७० ।८
१२	१ ।५ ।१७	३ ।२५	६५ ।१७
१३	१ ।८ ।४२	३ ।२	६० ।१५
१४	१ ।११ ।४४	२ ।४७	५५ ।२
१५	१ ।१४ ।३१	२ ।२५	४९ ।४७
१६	१ ।१६ ।५६	२ ।१०	४४ ।२४
१७	१ ।१९ ।६	१ ।४८	३८ ।५९
१८	१ ।२० ।५४	१ ।३३	३३ ।२९
१९	१ ।२२ ।२७	१ ।२१	२७ ।५९
२०	१ ।२३ ।४८	० ।५८	२२ ।२७
२१	१ ।२४ ।४६	० ।३७	१६ ।५२
२२	१ ।२५ ।२३	० ।२३	११ ।१५
२३	१ ।२५ ।४६	० ।११	५ ।३७
२४	१ ।२५ ।५७	० ।०	० ।०

(२६) शुक्र के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	९४ ।३७	५९३० ।३३
१	१ ।३४ ।३७	९४ ।३२	५९२८ ।२२
२	३ ।९ ।९	९४ ।३५	५९१९ ।४६
३	४ ।४३ ।४४	९४ ।१३	५९०४ ।३८

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
४	६ ।१७ ।५७	९४ ।१२	५८८३ ।४६
५	७ ।५२ ।१	९४ ।४	५८५६ ।३८
६	९ ।२६ ।१३	९३ ।४४	५८८३ ।३०
७	१० ।५९ ।५७	९४ ।१४	५७८४ ।३
८	१२ ।३४ ।११	९३ ।२१	५७३८ ।४१
९	१४ ।७ ।३२	९३ ।६	५६८७ ।३
१०	१५ ।५० ।३८	९३ ।०	५६२९ ।५८
११	१७ ।१३ ।३८	९१ ।३९	५५६६ ।२८
१२	१८ ।४५ ।१७	९२ ।३५	५४९६ ।५९
१३	२० ।१७ ।५२	९१ ।५	५४२२ ।२४
१४	२१ ।४८ ।५७	९० ।३७	५३४२ ।२४
१५	२३ ।१९ ।३४	८९ ।५१	५२५५ ।५९
१६	२४ ।४९ ।२५	८८ ।१	५१६४ ।३७
१७	२६ ।१७ ।१६	८८ ।२७	५०६७ ।३३
१८	२७ ।४५ ।५३	८५ ।५७	४९६५ ।२९
१९	२९ ।११ ।५०	८५ ।२१	४८५८ ।४८
२०	३० ।३७ ।११	८४ ।१९	४७४६ ।८
२१	३२ ।१ ।३०	८२ ।१४	६४३० ।४
२२	३३ ।२३ ।४४	८१ ।१६	४५०८ ।०
२३	३४ ।४५ ।०	७९ ।०	४३८२ ।३७
२४	३६ ।४ ।०	७६ ।५६	४२५२ ।६
२५	३७ ।१९ ।५६	७५ ।१२	४११७ ।४४
२६	३८ ।३५ ।८	७१ ।३९	३९७९ ।१८
२७	३९ ।४६ ।४७	६७ ।२०	३८३६ ।५६
२८	४० ।५४ ।७	६५ ।१	३६९१ ।१४
२९	४१ ।५९ ।८	६० ।४४	३५४२ ।४३
३०	४२ ।५९ ।५२	५४ ।५२	३३९१ ।२
३१	४३ ।५४ ।४४	४८ ।५५	३२३६ ।१९
३२	४४ ।४३ ।३९	४२ ।३६	३०७८ ।३८
३३	४५ ।२६ ।१५	३५ ।२०	२९१९ ।११
३४	४६ ।१ ।३५	२४ ।२०	२७५७ ।५४
३५	४६ ।२५ ।५५	१२ ।२०	२५९५ ।१८

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
३६	४६ ।३८ ।१५ (ह्रास)	१ ।३	२४३१ ।५९
३७	४६ ।३७ ।१२	१९ ।३३	२२६८ ।१५
३८	४६ ।१७ ।३९	४३ ।१७	२१०५ ।३
३९	४५ ।३४ ।२२	६८ ।५८	१९४३ ।४१
४०	४४ ।२५ ।२४	१०५ ।२६	१७८४ ।२५
४१	४२ ।३९ ।५८	१४७ ।४७	१६२९ ।२५
४२	४० ।१२ ।११	२०६ ।५६	१४७९ ।३९
४३	३६ ।४५ ।१५	२७५ ।१४	१३४० ।५२
४४	३२ ।१० ।१	३६० ।१	१२१३ ।५२
४५	२६ ।१० ।०	४५१ ।४	११०४ ।२९
४६	१८ ।३८ ।५६	४३४ ।५	१०१८ ।३९
४७	९ ।४४ ।५१	५८४ ।५१	९६३ ।४७
४८	० ।० ।०	० ।०	९४५ ।२७

वक्र केन्द्र १६७ वक्र के बाद ऋजु केन्द्र १९३ पूर्व में अस्त का केन्द्र ३३६ पश्चिम में उदय का केन्द्र २४ पश्चिम अस्त केन्द्र १७६ पूर्व उदय का केन्द्र १८३ सूर्य के कारण पूर्व अस्त या पश्चिम उदय का केन्द्र ९ सूर्य के कारण पश्चिम अस्त या पूर्व उदय का केन्द्र ७

(२७) शुक्र के वैकल्पिक शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	९४ ।२५	५९२१ ।०
१	१ ।३४ ।२५	९४ ।१९	५९१८ ।४९
२	३ ।८ ।४४	९४ ।२२	५९१० ।१४
३	४ ।४३ ।६	९४ ।९	५८९५ ।११
४	६ ।१७ ।१५	९३ ।५०	५८७४ ।१९
५	७ ।५१ ।५	९३ ।५१	५८४७ ।१६
६	९ ।२४ ।५६	९३ ।२२	५८१४ ।२२
७	१० ।५८ ।२८	९३ ।५९	५७७४ ।५१
८	१२ ।३२ ।२७	९३ ।६	५७२९ ।३४
९	१४ ।५ ।३३	९२ ।५५	५६७८ ।३
१०	१५ ।३८ ।२८	९२ ।३८	५६२० ।५८
११	१७ ।११ ।१६	९१ ।२३	५५५७ ।४०

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
१२	१८ ।४२ ।३९	९१ ।१८	५४८८ ।२७
१३	२० ।१४ ।५७	९० ।५६	५४१४ ।४
१४	२१ ।४५ ।५३	९० ।१४	५३३३ ।५४
१५	२३ ।१६ ।७	८९ ।३७	५२४७ ।५९
१६	२४ ।४५ ।४४	८७ ।४४	५१५६ ।५१
१७	२६ ।१३ ।२८	८८ ।९	५०५९ ।५८
१८	२७ ।४१ ।३७	८५ ।४४	४९५८ ।१०
१९	२९ ।७ ।२१	८४ ।३६	४९५१ ।४३
२०	३० ।३१ ।५७	८४ ।२४	४७४० ।२
२१	३१ ।५६ ।१९	८१ ।४७	४६२३ ।३२
२२	३३ ।१८ ।६	८० ।५७	४५०२ ।२७
२३	३४ ।३९ ।३	७८ ।४४	४३७६ ।४२
२४	३५ ।५७ ।४७	७५ ।३८	४२४६ ।२९
२५	३७ ।१३ ।२५	७४ ।४०	४११२ ।२८
२६	३८ ।२८ ।५	७१ ।११	३९७४ ।२२
२७	३९ ।३९ ।२६	६६ ।५४	३८३२ ।२५
२८	४० ।४६ ।१०	६४ ।१५	३६८७ ।१३
२९	४१ ।५० ।२५	६० ।१७	३५३८ ।५८
३०	४२ ।५० ।४२	५४ ।३५	३३८७ ।४८
३१	४३ ।४५ ।१७	४८ ।१६	३२३३ ।१९
३२	४४ ।३३ ।३३	४२ ।२७	३०७६ ।१४
३३	४५ ।१५ ।५६	३३ ।२८	२९१६ ।३४
३४	४५ ।४९ ।२४	२३ ।३७	२७५६ ।३५
३५	४६ ।१३ ।१	११ ।३८	२५९४ ।२८
३६	४६ ।२८ ।३९ (ह्रास)	२ ।१९	२४३१ ।४४
३७	४६ ।२२ ।२०	२० ।४२	२२६८ ।५१
३८	४६ ।१ ।३८	४४ ।८	२१०६ ।१८
३९	४५ ।१७ ।३०	७० ।५८	१९४५ ।२५
४०	४४ ।६ ।३२	१०४ ।५४	१७८७ ।३
४१	४२ ।२१ ।३८	१५० ।१४	१६३२ ।४२
४२	३९ ।५२ ।२४	२०६ ।३	१४८४ ।४४
४३	३६ ।२५ ।२१	२७५ ।७	१३४६ ।२०

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
४४	३१ ।५० ।१४	३५७ ।५९	१२२० ।२६
४५	२५ ।५२ ।१५	४४७ ।१७	१११२ ।७
४६	१८ ।२४ ।५८	५२८ ।२	१०२७ ।१६
४७	९ ।२६ ।५६	५७६ ।५६	९७३ ।५
४८	० ।० ।०	० ।०	९५५ ।०

(२८) शनि के परोच्च खण्ड

खण्ड	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	गति लिप्ता
०	० ।०	१९ ।३८	० ।१०
१	१९ ।३८	१९ ।३३	० ।१०
२	३९ ।११	१९ ।२२	० ।१०
३	५८ ।३३	१९ ।७	० ।१०
४	७७ ।४०	१८ ।४५	० ।१०
५	९७ ।२५	१८ ।२०	० ।१०
६	११४ ।४५	१७ ।५३	० ।१०
७	१३२ ।३८	१७ ।२२	० ।९
८	१५० ।०	१६ ।४०	० ।९
९	१६६ ।४०	१५ ।५८	० ।९
१०	१८२ ।३८	१५ ।११	० ।८
११	१९७ ।४९	१४ ।१९	० ।८
१२	२१२ ।८	१३ ।२६	० ।७
१३	२२५ ।३५	१२ ।२९	० ।७
१४	२३८ ।३	११ ।२६	० ।६
१५	२४९ ।२९	१० ।२३	० ।६
१६	२५९ ।५२	९ ।१५	० ।५
१७	२६९ ।७	८ ।७	० ।४
१८	२७७ ।१४	६ ।५३	० ।४
१९	२८४ ।७	५ ।४०	० ।४
२०	२८९ ।४७	४ ।२७	० ।२
२१	२९४ ।१४	३ ।१४	० ।२
२२	२९७ ।२८	१ ।५५	० ।१२
२३	२९९ ।२३	० ।३७	० ।०
२४	३०० ।०	० ।०	० ।०

(२९) शनि का मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
०	० ।० ।०	२४ ।२२	३७२ ।२७
१	० ।२४ ।२२	२४ ।१६	३७१ ।४१
२	० ।४८ ।३८	२४ ।३	३६९ ।१८
३	१ ।१२ ।४१	२३ ।४४	३६५ ।१८
४	१ ।३६ ।२५	२३ ।१७	३५९ ।४६
५	१ ।५९ ।४२	२२ ।४५	३५२ ।४४
६	२ ।२२ ।२७	२२ ।१३	३४४ ।१०
७	२ ।४४ ।४०	२१ ।३३	३३४ ।६
८	३ ।६ ।१३	२० ।४२	३२० ।७
९	३ ।२६ ।५५	१९ ।५०	३०९ ।४३
१०	३ ।४६ ।४५	१८ ।५६	२९५ ।३२
११	४ ।५ ।४१	१७ ।५१	२८० ।२
१२	४ ।३३ ।३२	१६ ।४५	२६३ ।२२
१३	४ ।४० ।१७	१५ ।३४	२४५ ।३५
१४	४ ।५५ ।५१	१४ ।१५	२२६ ।४४
१५	५ ।१० ।६	१२ ।५७	२०६ ।५५
१६	५ ।२३ ।३	११ ।३२	१८६ ।१३
१७	५ ।३४ ।३५	१० ।७	१६४ ।४०
१८	५ ।४४ ।४२	८ ।३६	१४२ ।२७
१९	५ ।५३ ।१८	७ ।५	११९ ।४२
२०	६ ।० ।२३	५ ।३३	९६ ।२५
२१	६ ।५ ।५६	४ ।१	७२ ।४१
२२	६ ।९ ।५७	२ ।२४	४८ ।३८
२३	६ ।१२ ।२१	० ।४५	२४ ।२२
२४	६ ।१३ ।६	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ० ।० ।० मन्द केन्द्र भुक्ति २ ।०

शीघ्र भुक्ति ५९ ।८ शीघ्र केन्द्र भुक्ति ५७ ।८

(रवि मध्य भुक्ति)

(३०) शनि के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलंश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	२१ ।५८	३८१० ।२७
१	० ।२१ ।५८	२१ ।४८	३८०९ ।८
२	० ।४३ ।४७	२१ ।३६	३८०६ ।२२
३	१ ।५ ।२३	२१ ।१९	३८०२ ।७
४	१ ।२६ ।४२	२१ ।१	३७९६ ।३१
५	१ ।४७ ।४३	२० ।३२	३७८९ ।४४
६	२ ।८ ।१५	२० ।७	३७८१ ।२०
७	२ ।२८ ।२२	१९ ।४१	३७७१ ।४६
८	२ ।४८ ।३	१९ ।२	३७६० ।५९
९	३ ।७ ।५	१८ ।१८	३७४९ ।५४
१०	३ ।२५ ।२३	१७ ।३९	३७३५ ।३२
११	३ ।४३ ।२	१६ ।५९	३७२१ ।५
१२	४ ।० ।१	१६ ।५	३७०५ ।४०
१३	४ ।१६ ।६	१५ ।१०	३६८९ ।६
१४	४ ।३१ ।१६	१४ ।१५	३६७१ ।३१
१५	४ ।४५ ।३१	१३ ।१६	३६५३ ।८
१६	४ ।५८ ।४७	१२ ।७	३६३३ ।४८
१७	५ ।१० ।५४	११ ।८	३६१३ ।३८
१८	५ ।२२ ।२	९ ।४३	३५९२ ।५२
१९	५ ।३१ ।४५	८ ।३६	३५७० ।२५
२०	५ ।४० ।२१	७ ।१८	३५४९ ।२५
२१	५ ।४७ ।३९	६ ।९	३५२६ ।५३
२२	५ ।५३ ।४८	४ ।३१	३५०३ ।५८
२३	५ ।५८ ।१९	३ ।११	३४८० ।३९
२४	६ ।१ ।३०	१ ।४६	३४५७ ।६
२५	६ ।३ ।१६	० ।२१	३४३३ ।३४
२६	६ ।३ ।३७ (ह्रास)	१ ।२७	३४०९ ।३८
२७	६ ।२ ।१०	२ ।४९	३३८५ ।५५
२८	५ ।५९ ।२१	४ ।२६	३३६२ ।१९

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
२९	५ ।५४ ।५५	५ ।५५	३३३८ ।५९
३०	५ ।४९ ।०	७ ।४६	३३१५ ।५८
३१	५ ।४१ ।१४	९ ।१३	३२९३ ।२१
३२	५ ।३२ ।१	१० ।५५	३२७१ ।१०
३३	५ ।२१ ।६	१२ ।३१	३२४९ ।४०
३४	५ ।८ ।३५	१४ ।१	३२२८ ।५५
३५	४ ।५४ ।३४	१५ ।३१	३२०८ ।५५
३६	४ ।३९ ।३	१७ ।१४	३१८९ ।१५
३७	४ ।२१ ।४९	१८ ।३४	३१७१ ।५७
३८	४ ।७ ।१५	१९ ।५०	३१५५ ।२
३९	३ ।४३ ।२५	२१ ।१०	३१३९ ।१७
४०	३ ।२२ ।१५	२२ ।२६	३१२४ ।५६
४१	२ ।५९ ।४९	२३ ।२४	३११२ ।१
४२	२ ।३६ ।२५	२४ ।२०	३१०० ।२५
४३	२ ।१२ ।५	२५ ।१७	३०९० ।२५
४४	१ ।४६ ।४८	२५ ।५७	३०८१ ।१०
४५	१ ।२० ।५१	२६ ।३४	३०७५ ।२५
४६	० ।५४ ।१७	२७ ।०	३०७० ।२०
४७	० ।२७ ।१७	२७ ।७७	३०६७ ।३
४८	० ।० ।०	० ।०	३०६५ ।३३

वक्र केन्द्र ११५ ऋजु केन्द्र (वक्र गति के बाद) २४५ पश्चिम में अस्त का केन्द्र ३४३ पूर्व में उदय का केन्द्र १७ सूर्य से अस्त या उदय का अंश-१४

(३१) नक्षत्र ध्रुव षष्ठ प्रकाश १५७ श्लोक

नक्षत्र संख्या	स्थूल ध्रुव कला	सूक्ष्म ध्रुव राशि आदि
१	८००	० ।१३ ।१० ।३४ ।५२
२	१६००	० ।१९ ।४५ ।५२ ।१८
३	२४००	१ ।२ ।५६ ।२७ ।१०
४	३२००	१ ।२२ ।४२ ।१९ ।२८
५	४०००	२ ।५ ।५२ ।५४ ।२०
६	४८००	२ ।१२ ।२८ ।११ ।४६

नक्षत्र संख्या	स्थूल ध्रुव कला	सूक्ष्म ध्रुव राशि आदि
७	५६००	३ ।२ ।२४ ।४ ।४
८	६४००	३ ।१५ ।२४ ।३८ ।५७
९	७२००	३ ।२१ ।५९ ।५६ ।२३
१०	८०००	४ ।५ ।१० ।३१ ।१५
११	८८००	४ ।१८ ।२२ ।६ ।७
१२	९६००	५ ।८ ।६ ।५८ ।२५
१३	१०४००	५ ।२१ ।१७ ।३३ ।१७
१४	११२००	६ ।४ ।२८ ।८ ।९
१५	१२०००	६ ।११ ।३ ।२५ ।३५
१६	१२८००	७ ।० ।४९ ।१७ ।५३
१७	१३६००	७ ।१३ ।५९ ।५२ ।४५
१८	१४४००	७ ।२० ।३५ ।१० ।११
१९	१५२००	८ ।३ ।४५ ।४५ ।३
२०	१६०००	८ ।१६ ।५६ ।१० ।५५
२१	१६८००	९ ।६ ।४२ ।१२ ।१३
२२	१६८०४	९ ।१० ।५६ ।३० ।४८
२३	१७६००	९ ।२४ ।७ ।५ ।४०
२४	१८४००	१० ।७ ।१७ ।४० ।३२
२५	१९२००	१० ।१३ ।५२ ।५७ ।५८
२६	२००००	१० ।२७ ।३ ।३२ ।५०
२७	२०८००	११ ।१६ ।४९ ।२५ ।८
२८	२१६००	११ ।० ।० ।०

(३२) क्रान्ति पात के पदक षष्ठ प्रकाश १७८ श्लोक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।० ।० ।३२	१ हजार	० ।० ।८ ।४५ ।४८
२	० ।० ।० ।१ ।३	२	० ।० ।१७ ।३१ ।३५
३	० ।० ।० ।१ ।३५	३	० ।० ।२६ ।१७ ।२३
४	० ।० ।० ।२ ।६	४	० ।० ।३५ ।३ ।११
५	० ।० ।० ।२ ।३८	५	० ।० ।४३ ।४८ ।५८
६	० ।० ।० ।३ ।९	६	० ।० ।५२ ।३४ ।५६
७	० ।० ।० ।३ ।४१	७	० ।१ ।१ ।२० ।३४
८	० ।० ।० ।४ ।१२	८	० ।१ ।१० ।६ ।२१
९	० ।० ।० ।४ ।४४	९	० ।१ ।१८ ।५२ ।९
१०	० ।० ।० ।५ ।१५	१०	० ।१ ।२७ ।३६ ।५७
११	० ।० ।० ।१७ ।२०	२०	० ।२ ।५५ ।१५ ।५३
३०	० ।० ।० ।२५ ।४६	३०	० ।४ ।२२ ।५३ ।५०
४०	० ।० ।० ।२१ ।४२	४०	० ।५ ।५० ।३१ ।४७
५०	० ।० ।० ।२६ ।१७	५०	० ।७ ।१८ ।९ ।४३
६०	० ।० ।० ।३१ ।३३	६०	० ।८ ।४५ ।४७ ।४०
७०	० ।० ।० ।३६ ।४८	७०	० ।१० ।१३ ।२५ ।३६
८०	० ।० ।० ।४२ ।४	८०	० ।११ ।४१ ।३ ।३३
९०	० ।० ।० ।४७ ।१९	९०	० ।१३ ।८ ।४१ ।३०
१ सौ	० ।० ।० ।५२ ।३५	१ लाख	० ।१४ ।३६ ।१९ ।२६
२	० ।० ।१ ।४५ ।१०	२	० ।२९ ।१२ ।३८ ।५३
३	० ।० ।२ ।३७ ।४४	३	१ ।३३ ।४८ ।५८ ।१९
४	० ।० ।३ ।३० ।१९	४	१ ।२८ ।२५ ।१७ ।४५
५	० ।० ।४ ।२२ ।५४	५	२ ।१३ ।१ ।३७ ।११
६	० ।० ।५ ।१५ ।२९	६	२ ।२७ ।३७ ।५६ ।३८
७	० ।० ।६ ।८ ।३	७	३ ।१२ ।१४ ।१६ ।४
८	० ।० ।७ ।० ।३८	८	३ ।२६ ।५० ।३५ ।३०
९	० ।० ।७ ।५३ ।१३	९	४ ।११ ।२६ ।५४ ।५६

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	४ ।२६ ।३ ।१४ ।२३	१ करोड़	० ।२० ।३२ ।३३ ।४६
२०	९ ।२२ ।६ ।२८ ।४१	२	१ ।११ ।४ ।४७ ।३१
३०	२ ।१८ ।९ ।४३ ।८	३	२ ।१ ।३७ ।११ ।१७
४०	७ ।१४ ।१२ ।५७ ।३०	४	२ ।२२ ।९ ।३५ ।३
५०	० ।१० ।१६ ।११ ।५३	५	३ ।१२ ।४१ ।५८ ।४८
६०	५ ।६ ।१९ ।२६ ।१५	६	४ ।३ ।१४ ।२२ ।३४
७०	१० ।२ ।२२ ।४० ।४८	७	४ ।२३ ।४६ ।४६ ।२०
८०	२ ।२८ ।२५ ।५५ ।१	८	५ ।१४ ।१९ ।१० ।६
९०	७ ।२४ ।२९ ।९ ।२३	९	६ ।४ ।५१ ।३३ ।५१
		१०	६ ।२५ ।२३ ।५७ ।३७

क्रान्ति पात का चन्द्र शुद्ध द्वापर के अन्त में ध्रुव ० ।११ ।४२ करणाब्द ध्रुव राशि आदि ३ ।१६ ।३३ ।४७ ।२७ ।४० गति लिप्ताआदि ० ।० ।३१ ।३२ ।५१ ।३५ चलांश ध्रुव २२ ।१ ।५१ ।४५ ।४२ दैनिक गति (परा में) ९ ।२८

(३३) सायन सूर्य क्रान्ति आदि के पदक षष्ठ प्रकाश १६० श्लोक

सायन सूर्य के भुज खण्ड	क्रान्ति कला	अपने अहो रात्र का अर्धकर्ण	उतकल मध्य के चरप्राण	श्री पुरु-षोत्तम के चर प्राण	निरक्षोदय के प्राण	उदयान्तर के प्राण
१	८९ ।३८	३४३८	३३ ।१५	३२ ।१५	२०६ ।२७	१८ ।३३
२	१७८ ।५३	३४३३	६६ ।२६	६४ ।२४	४१३ ।१६	३६ ।४४
३	२६७ ।३०	३४२८	९९ ।२५	९६ ।२२	६२० ।३१	५४ ।२९
४	३५५ ।१०	३४२०	१३२ ।१२	१२८ ।९	८२८ ।४३	७१ ।१७
५	४४१ ।११	३४१५	१६४ ।३५	१५९ ।३३	१०३९ ।१४	८५ ।४६
६	५२५ ।५४	३३९८	१९६ ।३४	१९० ।३३	१२४८ ।२५	१०१ ।३५
७	६०८ ।४०	३३८४	२२८ ।९	२२१ ।९	१४६१ ।६	११३ ।५४
८	६८९ ।१३	३३६९	२५९ ।१९	२५१ ।२३	१६७५ ।२३	१२४ ।३७
९	७६७ ।२३	३३५३	२८९ ।३६	२८० ।४३	१८९० ।४७	१३४ ।१३
१०	८४२ ।१७	३३३५	३१९ ।२५	३०९ ।२५	२१०९ ।३४	१४० ।२६
११	९१३ ।४८	३३१७	३४७ ।४२	३३७ ।३	२३३० ।४	१४४ ।५६
१२	९८२ ।९	३२९९	३७५ ।५७	३६३ ।२८	२५५२ ।२४	१४७ ।३६
१३	१०४६ ।२०	३२८०	४०१ ।२	३८८ ।४५	२७७८ ।३७	१४६ ।१४
१४	११०५ ।५८	३२६२	४२५ ।४१	४१२ ।३९	३००७ ।३५	१४३ ।२५
१५	११६१ ।२६	३२४४	४४८ ।३८	४३४ ।५३	३२३७ ।१५	१३७ ।४५
१६	१२१२ ।१४	३२२७	४७० ।०	४५५ ।३६	३४७० ।५४	१२९ ।६
१७	१२५७ ।२८	३२११	४८९ ।२१	४७४ ।२१	३७०६ ।४६	११८ ।१४
१८	१२९७ ।१३	३१९७	५०६ ।३६	४९१ ।५	३९४५ ।२४	१०४ ।३६
१९	१३३० ।५४	३१८४	५२१ ।२१	५०५ ।२३	४१८४ ।४३	९० ।१७
२०	१३५८ ।५०	३१७३	५३३ ।४४	५१७ ।२३	४४२३ ।१३	७६ ।४७
२१	१३८१ ।९	३१६५	५४३ ।२३	५२६ ।४४	४६६८ ।३६	५६ ।२४
२२	१३९७ ।१९	३१५८	५५० ।३७	५३३ ।४५	४९१३ ।२३	३६ ।३७
२३	१४०६ ।५८	३१५४	५५४ ।५९	५३७ ।५९	५१६१ ।४२	१३ ।१८
२४	१४१० ।०	३१५३	५५६ ।१५	५३९ ।१३	५४००	० ।०

(३४) प्राचीन तथा ग्रन्थकार द्वारा दृक् सिद्ध मान

पूर्व आचार्यों के मत से	उतकल मध्य का मान	दृक् सिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में
पलभा	४ ।२७	४ ।१९
अक्षकर्ण	१२ ।४७ ।५४ ।४४	१२ ।४५ ।१०
अक्षज्या	११९५ ।२३	११६३ ।४४
अक्षांश	२० ।२१ ।५०	१९ ।४८
लम्बज्या	३२२३ ।३०	३२३५ ।४
लम्बांश	६९ ।३८ ।१०	७० ।१२
प्राग् देशान्तर	१८४	२००
पूर्व आचार्यों के मत से	उतकल मध्य का मान	दृक् सिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में
उत्तर देशान्तर	२८४	२७६ ।३०
स्फुट भू परिधि	४७१२ ।३५	४७२९ ।२९
देशान्तर नाड़ी	२ ।२० ।३४	२ ।३२ ।१४

(३५) चन्द्र का विक्षेप खण्ड आठवां प्रकाश ३७ वां श्लोक

चन्द्र पात अन्तर का भुज खण्ड	विक्षेप अंश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
०	० ।० ।०	१९ ।१५	२९४ ।२
१	० ।१९ ।१५	१९ ।९	२९३ ।२६
२	० ।३८ ।२४	१९ ।५	२९१ ।३४
३	० ।५७ ।२९	१८ ।४९	२८८ ।२४
४	१ ।१६ ।१८	१८ ।३८	२८४ ।२
५	१ ।३४ ।५६	१८ ।१३	२७८ ।२८
६	१ ।५३ ।९	१८ ।१	२७१ ।४३
७	२ ।११ ।१०	१७ ।२९	२६३ ।४६
८	२ ।२८ ।३९	१७ ।४	२५४ ।४२
९	२ ।४५ ।४३	१६ ।२३	२४४ ।३१
१०	३ ।२ ।६	१५ ।४९	२३३ ।१९
११	३ ।१७ ।५५	१५ ।२	२२१ ।५
१२	३ ।३२ ।५७	१४ ।९	२०७ ।५५
१३	३ ।४७ ।६	१३ ।२६	१९३ ।५३
१४	४ ।० ।३२	१२ ।१८	१७९ ।०

चन्द्र पात अन्तर का भुज खण्ड	विक्षेप अंश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
१५	४ ।१२ ।५०	११ ।१३	१६३ ।२१
१६	४ ।२४ ।३	१० ।१४	१४७ ।१
१७	४ ।३४ ।१७	९ ।०	१३० ।०
१८	४ ।४३ ।१७	७ ।३९	११२ ।२८
१९	४ ।५० ।५६	६ ।१७	९४ ।३०
२०	४ ।५७ ।१३	५ ।१	७६ ।७
२१	५ ।२ ।१४	३ ।४४	५७ ।२३
२२	५ ।५ ।५८	२ ।१३	३८ ।२४
२३	५ ।८ ।११	० ।४२	१९ ।१५
२४	५ ।८ ।५३	० ।०	० ।०